हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज

सुलभ साहित्य माला

शरत्-प्रतिभा

[सम्पूर्ण शरत-साहित्यकी आलोचना]

३७-३८

मूल लेखक

डॉ० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त

अनुवादकर्त्ता

पं० रूपनारायण पाण्डेय

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी मैनेजिंग डायरेक्टर
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड
हीराबाग, बम्बई ४

[illegible]

प्रथमावृत्ति
मई, १९५७

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केलेवाडी, गिरगाँव, बम्बई ४

निवेदन

आधुनिक युगके सर्वश्रेष्ठ लेखक स्व॰ शरत्चन्द्र चट्टोपाध्यायसे हिन्दी-संसार खूब परिचित है। हम अबतक उनके छोटे-बड़े २४ उपन्यास, २२ कहानियाँ, १ बचपनकी कहानियाँ, १ नाटक, २१ निबन्ध-लेख, १ शरत् निबन्ध, ३ अधूरे उपन्यास, २ अपूर्ण कहानियाँ और १ स ऊपर साहित्यिक चिट्ठियाँ प्रकाशित कर चुके हैं। इस तरह बँगलामें उनका लिखा हुआ जो कुछ था लगभग वह सबका सब हमारी 'शरत्-साहित्य पुस्तक माला' द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इस बातका भी पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया है कि अनुवाद मूलके अनुरूप ज्योंका त्यों हो ऐसा मालूम हो कि उसे शरत् बाबूने स्वयं ही अपनी तरफसे लिखा है। और इसके लिए हमें बँगलाके मर्मज्ञ और हिन्दीके मँजे हुए लेखक पं॰ रूपनारायण पाण्डेय, बाबू रामचन्द्र वर्मा, बाबू धन्यकुमार जैन, डॉ॰ महादेव साहा आदि सुयोग्य मित्रोंका सहयोग प्राप्त हुआ है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि हमें इस कार्यमें हिन्दी-जगत्ने निरन्तर उत्साहित किया है और उसीका यह फल है कि आज हम शरत्-साहित्यको सम्पूर्ण कर सके और इस बीच इसके अनेक भागोंकी ५–६, ६–८ आवृत्तियाँ निकल चुकीं।

अब हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित है कि हम केवल मनोरंजनसे ऊपर उठकर शरत्-साहित्यपर विविध दृष्टिपात गहराईके साथ विचार भी करें।

इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए अब हम 'शरत् प्रतिभा'को प्रकाशित कर रहे हैं। इसके लेखक प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ताके प्राध्यापक डॉ॰ सुबोधचन्द्र सेनगुप्त आलोचनाके क्षेत्रमें बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अंगरेजीमें भी कई आलोचना-ग्रन्थ लिखे हैं। शरत्चन्द्र : मैन एण्ड आर्टिस्ट, ग्रेट सेंटिनल : स्टडी ऑफ् रवीन्द्रनाथ टैगोर, आर्ट आफ् बनार्ड शा, आदि।

इनके सिवाय उन्होंने बंकिमचन्द्रके 'रजनी' उपन्यास और मधुसूदन दत्तके 'मेघनाथ-वध' महाकाव्यको विस्तृत भूमिका टीका-टिप्पणियोंके सहित सम्पादित किया है। इस तरह वे बंग… अंग्रेजी दोनोंके साहित्यकी आलोचनाके अधिकारी हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें गुणोंके साथ साहित्यिक दोषों और त्रुटियोंपर भी प्रकाश डाला गया है और प्रत्येक रचनाके प्रत्येक पुरुष स्त्री-बालक पात्रोंके चरित्रका विश्लेषण किया गया है।

अध्ययनशील सहृदय पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि इस ग्रन्थको पढ़ते समय समग्र शरत्-साहित्यको अपने सामने रखें और फिर आलोचककी बातोंपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

—प्रकाशक

शरत् साहित्यकी सूची

नोट—प्रत्येक भागका मूल्य डेढ़ रुपया है और प्रत्येक भागमें लगभग १५ पृष्ठ हैं।

सूची

शरत्-प्रतिभा

१—बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र

उपन्यासमें मानव-जीवनकी एक लम्बी कहानीका चित्रण हुआ करता है। उपन्यास गद्यमें लिखा जाता है। इसमें छोटी कहानीकी तरह वास्तव जीवनकी कुछ घटनाओंको भी छोड़ देनेकी ज़रूरत नहीं होती और कहानीके आरम्भसे अन्त तक सभी छोटी-मोटी घटनाओंका वर्णन किया जा सकता है।

इस बारेमें मतभेद है कि उपन्यासमें कौन-सा उपादान श्रेष्ठ है। किसीके मतसे आख्यानभाग या प्लॉट ही मुख्य है, चरित्रोंकी सृष्टि और अन्यान्य उपादान अपेक्षाकृत गौण हैं। प्राचीन कालके समालोचक और कहानीलेखक कहानीको ही प्रधान मानते थे। किन्तु आधुनिक समयमें चरित्र-सृष्टि ही मुख्य मानी जाती है। एक आधुनिक श्रेष्ठ अंगरेज उपन्यास-लेखक उपन्यासका लक्षण बतलाते हुए कहते हैं कि उपन्यास है चरित्रकी सृष्टि। उन्होंने उपन्यासके अन्यान्य उपादानोंको अस्वीकार किया है। योरपके और एक श्रेष्ठ समालोचक और उपन्यासकारका मत है कि उपन्यास (और नाटक भी) सामाजिक जीवनका यथार्थ चित्रण करना और सामाजिक समस्याका विशद वर्णन करना। एक और आधुनिक श्रेष्ठ उपन्यासकार कहते हैं कि उपन्यासका उद्देश्य न कहानी कहना है, न चरित्रकी सृष्टि और न किसी मतवादका प्रचार। सचेतन और अचेतन आत्मा (मन) के ऊपर बाहरकी घटनाओंके आघातसे जो सब विचित्र अनुभूतियाँ जागती हैं, उनकी अभिव्यक्ति करना ही

उपन्यासका काम है। वर्जीनिया उल्फ, जेम्स जॉयस् आदि लेखक इसी श्रेणीके उपन्यास लिखकर यशस्वी हुए हैं।

इन सब तर्कों और आलोचनाओंको लेकर एक सहज बात स्मरण करनेसे ही उपन्यासका स्वरूप पकड़में आ जायगा। उपन्यास मनुष्यके हृदयका चित्र है। मनुष्यके धर्म है, समाज है, राजनीति है, सचेतन और अवचेतन आत्मा है। इस प्रकार किसी भी एक लक्षणको अपनी दृष्टिमें रख सकता है; किन्तु उसे यह स्मरण रखना होगा कि मनुष्यके स्वरूपकी अभिव्यक्ति ही उसका आदर्श है किसी एक विशेष लक्षणको समग्र व्यक्तित्वसे विच्छिन्न अथवा अलग करनेपर वह चित्र सजीव नहीं रहता।* केवल समाज-कथन, केवल धर्म, केवल राजनीति, केवल बाहरकी घटना या केवल डूबे हुए चैतन्यको लेकर उपन्यास लिखनेसे वह एकदेशदर्शी होगा, एकांगी चित्र होगा सम्पूर्ण नहीं। लेखककी रुचिके अनुसार इनमेंसे कोई एक उपादान प्रधानता प्राप्त कर सकता है किन्तु वह अगर अन्य सब उपादानोंको फीका या निष्प्रभ कर दे तो काम न चलेगा।

२

बंग-साहित्यमें प्रथम उपन्यास कौन है इसका विचार करना होगा। प्राचीन साहित्यकी जो सब पोथियाँ हमारे हाथ आई हैं उनमें उपन्यास नहीं पाया जाता। जान पड़ता है, उपन्यास विशेष रूपसे आधुनिक कालकी सृष्टि है। कहानी कहनेकी प्रवृत्ति सनातन है। अतएव बंग-साहित्यका जब प्रारम्भ हुआ होगा तब कहानियाँ लिखी गई होंगी। किन्तु चाहे जिस कारणसे हो, वे सब कहानियाँ स्थायी नहीं हो सकीं। उपन्यास लिखकर साहित्यकी सृष्टि करनेकी चेष्टा वर्तमान युगमें ही विशेष कर प्रचलित हुई है।

कोई कोई मानते हैं कि 'आलालेर घरेर दुलाल' बंगसाहित्यका प्रथम उपन्यास है। इसमें कहानी है, सामाजिक चित्र व वास्तवता या यथार्थता भी

* अति आधुनिक लेखक चेतनाप्रवाह मनस्तत्त्व विश्लेषण करते समय मनुष्यके समग्र व्यक्तित्वकी बात भूल जाते हैं। इसीसे उनकी रचनामें इतिवृत्तका अभाव न रहनेपर भी ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्य कोई सजीव पदार्थ नहीं है, वह एक दर्पणमात्र है, जिसके ऊपर छाया प्रतिबिंब पड़ते हैं और हट जाते हैं।

है। किन्तु इसमें उपन्यासका मौलिक उपादान नहीं है—मानव-हृदयके गोपनतम प्रदेशका चित्र नहीं है। यह ग्रन्थ लिखा गया था बोलचालकी भाषाको साहित्यका वाहन बनानेके लिए और इसका विषय है नीतिशिक्षा व्यंग और विद्रूप। इसके भीतरसे कोई एक सुसम्बद्ध या सुगठित कहानी भी नहीं तैयार हुई। केवल कुछ बिखरे हुए चित्र एकसाथ गूँथ दिये गये हैं। उनमें परस्पर जो कुछ योगसूत्र है वह भी अकिंचित्कर या साधारण है।

अतएव वास्तविक उपन्यासका प्रवर्तन पहले पहल स्वर्गीय बंकिमचन्द्रने किया। बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंपर आलालेर घरेर दुलालने कुछ प्रभाव डाला हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। परन्तु आगेके युगके उपन्यासोंपर बंकिमचन्द्रका प्रभाव असीम है। बंकिमचन्द्र ही वास्तविक उपन्यासकी सृष्टि करनेवाले हैं और उनकी प्रतिभा ऐसी असाधारण है कि उन्होंने केवल पथप्रदर्शन ही नहीं किया उनकी रचनामें प्रथम पहल लिखनेवालेकी अपूर्णता या भीरुताका भी परिचय नहीं मिलता। वह बंगलाके प्रथम उपन्यास लेखक हैं, और जान पड़ता है, वही सबसे बड़े उपन्यासलेखक हैं। उनके उपन्यास कहानी हैं, चरित्रसृष्टि है—मानव-हृदयके गोपन रहस्यका पता भी उन्होंने दिया है।

उनके उपन्यासोंको प्रधान रूपसे तीन श्रेणियोंमें बाँटा जाता है। राजसिंह खालिस ऐतिहासिक उपन्यास है। कृष्णकान्तका विल, विषवृक्ष आदि उपन्यासोंमें सामाजिक और गृहस्थ जीवनके चित्र हैं। 'दुर्गेशनन्दिनी' 'कपालकुण्डला', 'मृणालिनी' आदिमें इतिहास है, पारिवारिक जीवनका चित्र भी है; लेकिन तो भी ये उपन्यास ठीक ऐतिहासिक उपन्यास या गृहस्थ-जीवनकी कहानी नहीं हैं। कारण इनके भीतर कल्पनाका एक ऐसा अंश है जो पारिवारिक जीवनकी साधारणताको लाँघ गया है; और जिसने इतिहासकी सीमाको भी सम्पूर्ण रूपसे स्वीकार नहीं किया। कल्पनाकी यह जो स्फूर्ति है, यह केवल इन तृतीय श्रेणीके उपन्यासोंमें ही नहीं पर उनके सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासोंमें भी देख पड़ती है। बंकिमचन्द्रके ऐतिहासिक उपन्यासोंमें अतीत कालके युद्धविग्रह या राजनीतिक जीवनके चित्रमात्र और घटना-चित्र नहीं मिल सके। इनके ऐतिहासिक उपन्यास यूरोपके 'हिस्टारिकल' नामक उपन्यासोंसे सम्पूर्ण भिन्न हैं। इनकी

कल्पनाने इतिहासको विविध रंगसे रंग दिया है। जिस देशमें जेबुन्निसा और मुबारक, आयेशा और जगत्सिंह वास करते थे, वह वास्तव जगत्‌की तस्वीर नहीं है—वह कल्पनाका स्वर्ग या अमरावती है। रोहिणीकी मृत्यु, कुन्दनन्दिनीका समस्वधान, नगेन्द्रनाथ और सूर्यमुखीका अकस्मात् मिलन — इन सब कहानियोंमें प्रतिदिनके जीवनकी तुच्छता नहीं है। ये अप्रत्याशित, आकस्मिक और अनन्य साधारण या अनुपम चित्र हैं।

यदि किसी एक ही श्रेणीमें बंकिमचन्द्रके सभी उपन्यासोंको श्रेणीबद्ध करनेकी चेष्टा की जाय, तो इसी रोमान्सका उनका मापदण्ड बनाना होगा। बंकिमचन्द्रके प्रत्येक उपन्यासमें अतिशय कल्पनाकी समृद्धि पाई जाती है। वह प्रधानतः रोमान्सकी रचना करनेवाले लेखक हैं। इस रोमान्सने कभी इतिहासमें और कभी सामाजिक जीवनके चित्रमें अपना सुन्दर प्रकाश डाला है। यहाँ यह प्रश्न होगा कि रोमान्सका विशिष्ट अर्थ क्या है? रोमान्स शब्द हमारे यहाँ पश्चिमसे आया है। इसके अर्थको लेकर योरपके अनेक देशोंके साहित्यमें बहुत आलोचना हुई है। उस तर्कके कँटीले घिरे क्षेत्रमें प्रवेश न करके निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि जिन सब काव्यों और उपन्यासोंमें कल्पना अत्यन्त समृद्धिको प्राप्त है, जहाँ आख्यायिका या चरित्र हमारे मनमें विस्मयका संचार करता है, वही रोमान्सके लक्षणसे युक्त है। आर्ट (काव्य) सत्य और सुन्दरकी सृष्टि है। जो हुआ नहीं, शिल्पी या कलाकार उसीकी उद्भावना करता है। अनेक समय वह असम्भव व्यापारका भी वर्णन करता है। किन्तु वर्णनकी चातुरीसे वह असम्भवको भी सम्भावनाकी सीमामें ले आता है पाठकके मनमें उठ रहे अविश्वासको निरस्त करनेकी चेष्टा करता है और, यद्यपि वस्तुतान्त्रिक (यथार्थवादी) आर्टमें कोई कल्पित कहानी लिखी जाय, तो भी प्रकट करनेके माधुर्यसे — वर्णनशैलीसे उसे भी सुन्दर बना दिया जाता है। गणिकावृत्ति कुत्सित है यह सभी मानते हैं किन्तु 'मिसेज वारेन्स प्रोफ़ेशन' (Mrs. Warren's profession) नाटक सुन्दर है। रोमान्स और वस्तुतान्त्रिक रचनामें प्रभेद यह है कि रोमान्स असाधारण सुन्दरकी तलाशमें रहता है और वस्तुतान्त्रिक साहित्य साधारणमें सुन्दरकी खोज करता है।

बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंमें आख्यायिका, परिस्थिति और वर्णनशैली या

प्रमत्तरंगी, सभी बातें भद्र रोमान्सका परिचय देती हैं। बंकिमचन्द्रकी रचनाओंमें अलौकिक घटनाओंका प्रभाव नहीं है। उनके अनेक उपन्यासोंमें साधु-संन्यासी और ज्योतिषी मिलते हैं। किसी किसी स्थलपर यह अलौकिकता अत्यन्त अधिक हो गई है। वह हमारी अविश्वासी बुद्धिको विरक्त नहीं करती बल्कि और भी बढ़ा देती है। किन्तु इसे बाद देनेपर भी हम देख पाते हैं कि जो एकदम साधारण है, जो विशेष भावसे मनुष्य-जीवनकी कहानी है उसको भावमें एक विराट् शक्ति मालूम है जिसके आदेश उँगलीके इशारेसे पार्थिव घटनाएँ नियन्त्रित होती हैं। उस विराट् शक्तिको हम नहीं पहचानते, उसका स्वरूप अज्ञेय है किन्तु उसके अस्तित्वके सम्बन्धमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं, और उसके निर्देशका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। युद्धके समय दलनी बेगम, जो दुर्गामें जा पड़ी उसका कारण उसकी मूर्खता और विश्वासघात है लेकिन हम देख पाते हैं कि पहलेसे ही यह निश्चित रूपसे ठीक हो चुका है और तत्पश्चात् इसका आभास भी पा लिया है। मुबारककी मृत्युके मूलमें कुछ ऐसी घटनाओंकी परंपरा है, जिन्हें पहले माना भी न गया था। किन्तु जिस ज्योतिषीको उसने हाथ दिखाया था, उसके निकट घटनाओंकी यह अविच्छिन्न-पूर्व परम्परा निहित थी। मैंने सुना था कि वह अपने प्रियका प्राण लेनेवाली होगी। किस तरह यह अमंगल काम उसके द्वारा सिद्ध होगा, इस विषयमें उसकी कोई सुस्पष्ट धारणा नहीं थी किन्तु जिस नियति या भवितव्यताने यह निर्देश दिया था उसमें कुछ भी अस्पष्ट नहीं था। इस अलौकिक शक्तिकी महत्ता सबसे अधिक प्रकट है 'आनन्दमठ' और 'देवी चौधरानी' में। जिन सब उपन्यासोंमें अपेक्षाकृत वास्तविक चित्र अंकित किए गए हैं जैसे 'रजनी', 'विषवृक्ष', 'कृष्णकान्तका वसीयतनामा'—इनमें भी रोमान्सका यह उपादान मौजूद है। 'कुन्दनन्दिनी' को स्वयं बंकिमचन्द्रने ही घटित ज्योतिष कहा है। 'रजनी' यद्यपि ज्योतिष न होनेपर भी, उसके भीतर मन्त्र-शक्तिकी कल्पना जो वर्णित है, वह अलौकिक है। 'विषवृक्ष' के प्रथम स्वप्नमें कुन्दनन्दिनीके स्वप्नमें उपन्यासकी सारी कहानीका संक्षिप्त सार दिखाया है। 'कृष्णकान्तका विल' एकदम वास्तव चित्र है। इसके भीतर अलौकिकको स्थान नहीं है। तो भी भ्रमरने तो रोहिणीसे कहा था—"तुमने और मैंने किए मेरे हाथों, पुन फिर आओगे—फिर भ्रमर कहकर बुलाओगे—

मेरे लिए रोओगे, " सब जान सकता है, उसने भविष्यका चित्र स्पष्ट रूपसे देख लिया था। उसकी यह उक्ति स्त्रियोचित अभिशाप नहीं है, मनस्तत्त्वविद् या मनोविज्ञानके ज्ञाताका विचार नहीं है वह सत्यद्रष्टाकी भविष्यवाणी है। भ्रमर जैसे क्षणभरके लिए भविष्यके अन्धकारमय पर्देको चीर कर उसके भीतर प्रवेश कर गई थी और उपन्यासके उत्तरार्धमें वर्णन की गई घटना जैसे इस भविष्यवाणीको सार्थक करनेके लिए ही संघटित हुई थी।

बंकिमचन्द्रने जो सब चरित्र अंकित किये हैं उन सबमें रोमान्सके असाधारणत्वकी छाप है। सबसे पहले प्रकृतिपालिता पुत्री कपालकुंडला और रहस्यमयी मनोरमाका स्वभाव आता है। ये रक्त-मांसकी बनी स्त्रियाँ हैं इनकी प्रकृति भी जीवनसुलभ या रमणीजनोचित है। तथापि जान पड़ता है, ये धरतीकी धूलसे बहुत ऊपर बहुत दूर हैं। ये दैनंदिन जीवनमें दूसरेके चित्तमें विभ्रमका संचार कर सकती हैं लेकिन कभी निसकी सम्पत्ति होकर नहीं रहेंगी। प्रफुल्ल, सत्यानन्द, चन्द्रशेखर—इनके साथ प्रकृतिका सम्बन्ध कम है; ये उस रहस्यसे ढके हुए भी नहीं हैं। किन्तु ये भी साधारण नर-नारियोंके क्षेत्रसे बहुत दूर हैं। साधारण मनुष्यके जीवनको ये अपने आदर्शोंसे अनुप्राणित करना चाहते हैं, किन्तु ये स्वयं संसारमें डूबे रहकर भी सम्पूर्ण रूपसे अपने व्यक्तित्वको लुप्त नहीं करते—अपना आपा नहीं खोते। इनका व्यक्तित्व मानवके कार्यमें लगा है किन्तु उसने अपनी स्वतन्त्रता नहीं खोई। माधवाचार्य, चन्द्रचूड़ भवानी पाठक, राजसिंह—ये सत्यानन्द या देवी चौधरानीकी अपेक्षा कम चमकते हैं किन्तु इन लोगोंका व्यक्तित्व भी अनन्य साधारण और अभिमानपूर्ण है। ये एक विराट् आदर्शके द्वारा अनुप्राणित हुए हैं और उसी आदर्शके लिए इन्होंने और सब कामनाएँ तज दी हैं।

इन सब विराट् अलौकिक शक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंको छोड़कर अपेक्षाकृत नीचेके स्तरके, साधारण जीवनके साधारण नर-नारियोंके चरित्रकी आलोचना करने पर भी हम इसी विशेषताका परिचय पाते हैं। बंकिमचन्द्रने जिन जिन नायक-नायिकाओंके चरित्र अंकित किये हैं, वे सभी कुछ कुछ अनन्य-साधारण या कुछ विशेषता लिए हुए हैं। इसका कारण यह है कि प्रायः प्रत्येक चरित्र ही एक-एक आदर्शके द्वारा अनुप्राणित या उद्बोध हुआ है, और अभि-

चरित्र इसलिये, अवश्य उनके साथ, उन्होंने उसी आदर्शका अनुसरण किया है। बंकिमचन्द्र स्वयं प्राचीन हिन्दू आदर्शोंपर निष्ठाके साथ विश्वास करते थे और यही अकुंठित निष्ठा तथा अविचलित एकाग्रता उनके द्वारा सृष्टि किये गये नर-नारियोंमें मौजूद है। प्रताप, सूर्यमुखी, भ्रमर—इन सबके मनमें कभी कोई दुविधा नहीं आई। अनुसरण किये गये आदर्शके सम्बन्धमें कभी सन्देह या विकल्प नहीं हुए। यह तो हुई नायक-नायिकाओंकी बात। प्रतिनायकों और प्रतिनायिकाओंके चरित्रमें भी बंकिमचन्द्रकी यह एकदेशदर्शिता देखनेको मिलती है। रोहिणी बिलकुल ही पापिन है। कुन्दके प्रति उसके स्नेहको कल्पना है, किन्तु उसकी प्रथमदर्शी आत्मघातक सर्वथा घृणाके योग्य होनेमें उसमें कोई सन्देह नहीं है। इस तरह बंकिमचन्द्रके प्रधान चरित्रोंकी आलोचना करनेसे देखा जायगा कि वे किसी एक गुण या दोषके प्रतीक हैं और इसी कारण उनको सजीव बना दिया है। उनके चरित्रोंका प्रधान गुण—नानाप्रकारकी प्रवृत्तियोंका समावेश नहीं, किन्तु एक प्रवृत्तिका ऐक्य है।

केवल दो-एक चरित्रोंमें उन्होंने साधारण मनुष्यका चित्र खींचा है। पहले नगेन्द्रनाथ या गोविन्दलालका उल्लेख आता है। इनके मनमें सत् और असत् प्रवृत्तियाँ समान भावसे काम करती हैं। हम इन्हें कभी अति नीच नहीं समझ सकते, मगर ये महामानव भी नहीं हैं। किन्तु उपन्यासमें इनकी एक ही प्रवृत्तिको बड़ा करके दिखाया गया है। काम मनुष्यको कितना उन्मत्त कर सकता है इसका चित्र इनके माध्यमसे अंकित हुआ है, और जब इनके मनमें पश्चात्ताप आता है, तब वह सीमाको लाँघ गया है। ये साधारण मनुष्य हैं; किन्तु साधारण मनुष्य किसी प्रबल प्रवृत्तिकी उत्तेजनामें कैसा असाधारण बन जाता है, इसका परिचय इनकी कहानीमें पाया जाता है। मधुसूदन अवश्य ही एकदमसे बिल्कुल ही साधारण आदमी है और उसके भीतर किसी एक प्रवृत्तिका प्राधान्य या जोर नहीं है। इस हिसाबसे मधुसूदन बंकिमचन्द्रके अन्यान्य नायकोंसे कुछ भिन्न है। मगर यह भी मानना होगा कि उस उपन्यासमें सर्वसाधारणके प्रवाहमें बहा गया है। उपन्यास उसकी कहानी नहीं है। उसका चरित्र खूब नहीं। उभर फिर उठा है किन्तु यह बात न भूलनी चाहिए कि वह

अप्रधान या गौण चरित्र है। नायिकाके जीवनमें उसने भवानी पाठककी अपेक्षा भी श्रेष्ठ स्थान अधिकृत किया है।

बंकिमचन्द्रकी प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें भी उनकी सृष्टिकी विशेषता है। उन्होंने घटनाके संघर्षका चित्र आँका है, नर-नारीके हृदयकी नाना प्रवृत्तियोंके द्वन्द्व या संघर्षका सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। यह बात नहीं है कि रोमान्समें इस प्रकारका विश्लेषण असम्भव हो। शेक्सपियरके नाटकोंकी विशेषता ही हृदयमें नाना प्रवृत्तियोंका संघर्ष है। किन्तु बंकिमचन्द्र उस तरफ गये ही नहीं। उन्होंने एक एक प्रवृत्तिको समग्र भावसे देखा है और उस प्रवृत्तिके स्वाभाविक अनुशीलनके फलाफलकी आलोचना की है। भ्रमर अपने स्वामी गोविन्दलालको मन-वाणी-कायासे कितना ही प्यार क्यों न दे, जो नियति (विधाताका विधान) गोविन्दलालकी रोहिणीके प्रति आसक्तिका रूप रखकर आती है, उसे वह किस तरह रोक सकती है! अथ च नियति आकाशविहारी अदृष्ट देवताका कपाल भर नहीं है, उसकी जड़ पार्थिव घटना-चक्रके विवर्तन और मनुष्यकी आकांक्षाके भीतर है। प्रत्येक व्यक्तिका जीवन अपने नियमसे चलता है। जीवनमें ट्रैजिडी यह है कि एक मनुष्यका सुख दूसरे मनुष्यके ऊपर निर्भर करता है। अथ च वह द्वितीय व्यक्ति अपने स्वाधीन मार्गपर चलना चाहता है। भ्रमर गोविन्दलालको लेकर सुखी होती है; किन्तु गोविन्दलाल रोहिणीको चाहता है। शैवलिनीको छोड़नेके लिए ऐसा कोई काम नहीं जो प्रतापने न किया हो। वह वनमें गया, शैवलिनीको उसने कसम धराई, शैवलिनीको छोड़ दिया, किन्तु किसी तरह उसे छुटकारा नहीं मिला। अगर शैवलिनियाँ अपने पैरोंपर पड़ी पानेपर वह क्या करता, इसकी आलोचना उक्त उपन्यासके रामानन्द स्वामी करें; किन्तु प्रतापने देखा है कि एक शैवलिनीका प्रेम ही नियतिकी तरह दुर्वार है—उसका निवारण करनेकी बात नहीं है; वह नियतिकी तरह ही विचारविहीन है। मुबारकका जीवन दो रमणियोंके असीम प्रेमके ऐश्वर्यसे समृद्ध हुआ है किन्तु सीमाहीन प्रेम केवल उसके जीवनका श्रेष्ठ ऐश्वर्य ही नहीं है, वह परम अभिशापमें भी दिखाई दिया है। बादशाहजादीके प्रेमके साथ उसका दम्भ और मर्यादा-बोध जड़ित है और दरिया बीबीके अतुल प्रेमके भीतर उसकी अनिवार्य विपत्ति छिपी हुई है।

बंकिमचन्द्रने हृदयकी प्रवृत्तियाँ केवल प्रवृत्तिमात्र नहीं मान लीं। उन्होंने इन प्रवृत्तियोंको विराट् शक्ति माना है जैसे इन प्रवृत्तियोंकी एक स्वतन्त्र सत्ता है। नर-नारीके दार्शनिक ढंगका चित्र खींचते समय उन्होंने इन प्रवृत्तियोंको सुमति और कुमति नाम दिया है। जैसे उनका एक निजस्व व्यक्तित्व है जैसे अन्यान्य शक्तियोंकी तरह वे भी अपने गतिके वेगकी प्रबलताके साथ आगे बढ़ती हैं। उन्होंने हृदयकी प्रवृत्तियोंको समग्र भावसे देखा है इसीसे उन्होंने उनका अलग अलग करके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। उनकी प्रतिभाका स्वभाव कल्पनाकी विशालता है, विश्लेषणका पंक्त्यानुपंक्त भाव नहीं। नगेन्द्रनाथ और गोविन्दलाल प्रथम जीवनमें स्नेहपरायण स्वामी थे एकाएक वे अन्य स्त्रीपर आसक्त हो गये। इस परिवर्तनकी उनके उपन्यासमें मनस्तत्त्वमूलक व्याख्या नहीं है। बाहरकी किन किन घटनाओंसे यह परिवर्तन साधित हुआ—इसका चित्र है किन्तु मनमें धीरे धीरे किस तरह आत्मसंयम गिरता हुआ, इसका आभास रहने पर भी विस्तृत चित्र नहीं है। प्रभातपुरमें रोहिणी और गोविन्दलालका सम्पर्क या मिलना-जुलना खूब सहज था और उनका जीवन खूब सुगम था, ऐसा नहीं जान पड़ता। ऐसा न होता तो रोहिणी रामबिहारीकी कमलदल-सी विशाल आँखोंकी बात क्यों सोचती और गोविन्दलाल ही क्यों कोई बात न सुनकर चित्तोन्मत्त हठात् देखा। किन्तु रोहिणीके जीवन-नाटकके चतुर्थ अंकका कोई उपयुक्त योग्य चित्र हम नहीं पाते, अथ च इन अंशोंके परिवर्तनकी आलोचनामें चतुर्थ अंक ही मुख्य है।

डाक्टर श्रीकुमार बन्द्योपाध्यायने कहा है कि अपने प्रति बंकिमचन्द्रमें सहज वितृष्णा या घृणा थी। वर्तमानकालके यथार्थवादी आर्टिस्टोंकी तरह वह मनका विश्लेषण करना पसन्द न करते थे, यह काम उनको प्रिय न था। इस कथनमें कुछ सत्यांश है किन्तु बंकिमचन्द्र किस भी बातकी रचना निराधार किस करते हैं ऐसा विश्लेषण पसन्द नहीं करते थे। शैवलिनीका प्रायश्चित्त और परिवर्तन अलौकिक उपायसे कराया गया है। प्रफुल्ल जो देवी चौधरानीके रूपमें परिणत हुई है वह भी स्वाभाविक पार्थिव व्यापार नहीं है। कारण, प्रफुल्ल वही शक्ति है जो—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अप्रधान या गौण चरित्र है। नायिकाके जीवनमें उसने भवानी पाठककी अपेक्षा भी छोटा स्थान अधिकृत किया है।

बंकिमचन्द्रकी प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें भी इनकी शक्तिकी विशेषता है। उन्होंने प्रकृतिके सर्वोत्तम चित्र आँके हैं, नर-नारीके हृदयकी नाना प्रवृत्तियोंके द्वन्द्व या संघर्षका सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। यह बात नहीं है कि रोमान्समें इस प्रकारका विश्लेषण असम्भव हो। शेक्सपियरके नाटकोंकी विशेषता ही हृदयमें नाना प्रवृत्तियोंका संघर्ष है। किन्तु बंकिमचन्द्र उस तरफ गये ही नहीं। उन्होंने एक एक प्रवृत्तिको समग्र भावसे देखा है और उस प्रवृत्तिके अत्यधिक अनुशीलनके फलाफलकी आलोचना की है। भ्रमर अपने स्वामी गोविन्दलालको मन-वाणी-कर्मसे कितना ही प्यार क्यों न करे, जो नियति (विधाताका विधान) गोविन्दलालकी रोहिणीके प्रति आसक्तिका रूप लेकर आती है उसे वह किस तरह रोक सकती है? अब यह नियति आकाशविहारी अदृष्ट देवताका खयाल भर नहीं है, इसकी जड़ पार्थिव घटना-चक्र विवर्तन और मनुष्यकी आकांक्षाके भीतर है। प्रत्येक व्यक्तिका जीवन अपने नियमसे चलता है। जीवनमें ट्रैजिडी यह है कि एक मनुष्यका सुख दूसरे मनुष्यके ऊपर निर्भर करता है। अब यह द्वितीय व्यक्ति अपने स्वाधीन मार्गपर चलना चाहता है। भ्रमर गोविन्दलालको लेकर सुखी होती है; किन्तु गोविन्दलाल रोहिणीको चाहता है। शैवलिनीको छोड़नेके लिए ऐसा कोई काम नहीं जो प्रतापने न किया हो। वह जलमें डूबा, शैवलिनीको उसने कसम धराई, शैवलिनीको छोड़ दिया, किन्तु किसी तरह उसे छुटकारा नहीं मिला। लाखों शैवलिनियाँ अपने पैरोंपर पड़ी पानेपर वह क्या करता, इसकी आलोचना उक्त उपन्यासके रामानन्द स्वामी करें; किन्तु प्रतापने देखा है कि एक शैवलिनीका प्रेम ही नियतिकी तरह दुर्वार है—उसका निवारण करनेकी बात नहीं है; वह नियतिकी तरह ही विचारविहीन है। मुबारकका जीवन दो स्त्रियोंके असीम प्रेमके ऐश्वर्यसे समृद्ध हुआ है; किन्तु सीमाहीन प्रेम केवल उसके जीवनका श्रेष्ठ ऐश्वर्य ही नहीं है, यह चरम अभिशापमें भी दिखाई दिया है। बादशाहजादीके प्रणयके साथ उसका दम्भ और मर्यादा-बोध जड़ित है, और दरिया बीबीके अतुल प्रेमके भीतर उसकी अनिवार्य विपत्ति छिपी हुई है।

बंकिमचन्द्रने हृदयकी प्रवृत्तियाँ केवल प्रवृत्तिमात्र नहीं मान ली। उन्होंने इन प्रवृत्तियोंको विराट् शक्ति माना है जैसे इन प्रवृत्तियोंकी एक स्वतन्त्र सत्ता है। नर-नारीके हार्दिक द्वन्द्वका चित्र खींचते समय उन्होंने इन प्रवृत्तियोंको सुमति और कुमति नाम दिया है। जैसे उनका एक निजस्व व्यक्तित्व है जैसे अन्यान्य शक्तियोंकी तरह वे भी मनुष्य मनके केन्द्रमें प्रचण्डताके साथ आ पड़ती हैं। उन्होंने हृदयकी प्रवृत्तियोंको समग्र भावसे देखा है, इसीसे उन्होंने उनका खण्ड खण्ड करके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। उनकी प्रतिभाका स्वरूप कल्पनाकी विशालता है, विश्लेषणका पुंखानुपुंख भाव नहीं। नगेन्द्रनाथ और गोविन्दलाल प्रथम जीवनमें स्नेहपरायण स्वामी थे एकाएक वे अन्य स्त्रीपर आसक्त हो गये। इस परिवर्तनकी उनके उपन्यासोंमें मनस्तत्त्वमूलक व्याख्या नहीं है। चरित्रकी किन किन घटनाओंसे यह परिवर्तन साधित हुआ—इसका चित्र है किन्तु मनके भीतर धीरे धीरे किस तरह आदर्शसे गिरना हुआ, इसका आभास रहने पर भी विस्तृत चित्र नहीं है। प्रसादपुरमें रोहिणी और गोविन्दलालका सम्बन्ध या मिलना-जुलना खूब सहज था और उनका जीवन खूब सुखमय था, ऐसा नहीं जान पड़ता। ऐसा न होता तो रोहिणी राजबिहारीकी कमलदृष्टि-सी विशाल आँखोंको क्यों ताकती और गोविन्दलाल ही क्यों कोई बात न सुनकर पिस्तौलका सहारा लेता? किन्तु रोहिणीके जीवन-नाटकके चतुर्थ अंकका कोई उपयोग योग्य चित्र हम नहीं पाते, अथ च इस अभीष्ट चरित्रकी आलोचनामें चतुर्थ अंक ही मुख्य है।

डाक्टर श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय कहते हैं कि पापके प्रति बंकिमचन्द्रमें गहरा विरूपता या घृणा थी। वर्तमानकालके यथार्थवादी साहित्यिकोंकी तरह वह पापका विश्लेषण करना पसंद न करते थे, यह काम उनको प्रिय न था। इस कथनमें कुछ सत्यांश है किन्तु बंकिमचन्द्र किसी भी जगह पापकी चरम निराशा किसे कहते हैं ऐसा विश्लेषण पसंद नहीं करते थे। रोहिणीका प्रायश्चित और परिवर्तन अलौकिक उपायसे कराया गया है। प्रफुल्ल या देवी चौधरानीके रूपमें बदल गई है, सो भी एकदम पार्थिव व्यापार नहीं है। कारण प्रफुल्ल वही शक्ति है जो—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

[अर्थात् साधुजनोंकी रक्षा, दुष्कर्मियोंके विनाश और धर्मकी सम्यक् स्थापनाके लिए मैं प्रत्येक युगमें जन्म लेता हूँ।]

—श्रीमें भी जो परिवर्तन आया है, वह भी वैसे बाहरकी घटनाका परिवर्तन है। सीतारामका पतन खूब विस्मयजनक है, किन्तु वह सत्य और सजीव नहीं हो सका। हम इस परिवर्तनको सत्यमें नहीं मान पाते। वह हमें अविश्वसनीय लगता है।

२

बंकिमचन्द्रकी मृत्युके उपरान्त बंगलाके उपन्यास-साहित्यमें बहुत परिवर्तन हुआ है। अवश्य ही उनके प्रभावसे वह साहित्य कभी मुक्त न हो सकेगा। उनकी मृत्युके उपरान्त ऐतिहासिक उपन्यासकी रचना एकदम बंद हो गई या लुप्त हो गई है यह कहा जा सकता है। बंकिमचन्द्रके जीवन-कालमें और उनकी मृत्युके कुछ समय बाद भी किसी किसीने ऐतिहासिक उपन्यास लिखनेका प्रयास किया है। इन लोगोंमें रमेशचन्द्र दत्तका नाम विशेषरूपसे उल्लेख योग्य है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रथम दो उपन्यास 'बहू ठाकुरानीकी हाट' और 'राजर्षि' ठीक ऐतिहासिक उपन्यास तो नहीं हैं पर उनके भीतर इतिहास है। आधुनिक बंग-साहित्यमें स्वर्गीय हरप्रसाद शास्त्री और स्वर्गीय राखालदास बंद्योपाध्यायने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। किन्तु ये कोई श्रेष्ठ औपन्यासिकके आसनका दावा नहीं कर सकते। जान पड़ता है, भारतवर्षके इतिहासकी और सामाजिक जीवनकी ऐसी एक विशेषता है कि एकपर दूसरेका प्रभाव नहीं पड़ा। इसीसे यद्यपि बंकिमचन्द्रने कई उपन्यासोंमें इतिहासका सहारा लिया है, तथापि उन्होंने विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास केवल एक 'राजसिंह' लिखा है। उनकी अपनी रायमें भी केवल राजसिंह ही उनका एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है।

बंकिमचन्द्रके उपरान्त रवीन्द्रनाथकी प्रतिभाने बंग-साहित्यको सबसे अधिक समृद्ध किया है। वह प्रधान रूपसे कवि होनेपर औपन्यासिक भी हैं। और, विस्मयकी बात यह है कि रवीन्द्रनाथकी काव्य प्रतिभा उनके प्रथम युगके श्रेष्ठ

उपन्यासोंकी [illegible] बाधा नहीं डाल सकी। उपन्यासमें—विशेषकर सामाजिक उपन्यासमें—वास्तविक जीवनके साथ घनिष्ठ प्रत्यक्ष परिचय रहना चाहिए। इसके सिवा प्रत्येक उपन्यास एक कहानीका आश्रय लेकर गठित होता है अतएव उसमें बाहरकी घटना या प्लॉटको प्रधानता दी जाती है। गीति-कविकी रचनामें उपन्यासके ये दोनों उपादान होंगे, इसकी प्रत्याशा नहीं की जाती। किन्तु रवीन्द्रनाथके प्रथमयुगके उपन्यासोंमें इन दोनों उपादानोंका अभाव नहीं है। उनके उपन्यासोंमें बंगालके सामाजिक जीवनका जो चित्र हमें मिलता है वह इस बातका साक्षी है कि उनको वास्तव जीवनका गहरा परिचय था। रवीन्द्रनाथके इन सब उपन्यासोंमें घटनाओंका दैन्य या कमी भी नहीं है। रवीन्द्रनाथने बहुत पैनी और सूक्ष्म दृष्टिसे हमारे पारिवारिक जीवनको अच्छी तरह देखा-परखा और भिन्न भिन्न कोणसे विश्लेषण करते हुए उसका वर्णन किया। इन सब चित्रोंमें रोमान्सकी मधुरता नहीं है। ये उनकी प्रत्यक्ष-भावकी अभिज्ञतासे उत्पन्न हुए जान पड़ते हैं। इनमें कवि-प्रतिभाकी अपेक्षा यथार्थवादी लेखककी पर्यवेक्षण और विश्लेषणकी शक्तिका परिचय अधिक मिलता है।*

* रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंमें कवि-प्रतिभाका परिचय न हो, यह बात नहीं है। उन्होंने भी एक नये ढंगके रोमान्सकी सृष्टि की है और इस रोमान्सकी पूर्ण अभिव्यक्ति उनकी पिछली अवस्थाके उपन्यास चतुरंग, शेषेर कविता, मालंच, चार अध्याय आदिमें हुई है। इन सब उपन्यासोंमें रोमान्टिक जीवनकी जो कल्पनाके बन्धनोंसे स्वतन्त्र होकर बहुत ही स्पष्ट हो गई है। [illegible]

आशा(करुणा), महेन्द्र(कुंज) और विनोदिनी (माया)की कहानीके साथ भ्रमर गोविन्दलाल और रोहिणीकी कहानीका मौलिक सादृश्य है, किन्तु उनकी प्रकाशभंगी या वर्णन करनेकी शैलीमें महान् अन्तर है। गोविन्दलालको रोहिणीके प्रेममें फँसा सो ठीक एक घड़ीभरके दर्शनसे नहीं, तथापि यह प्रेम एक सहसा उत्पन्न हुआ मोहमात्र है। यह आकर्षण कितना दुर्निवार और अपरहस्य था यह बंकिमचन्द्रने दिखाया है किन्तु किस प्रकार अनेक द्वन्द्वोंके बीच इस मोहने गोविन्दलालके चित्तको ढँक लिया, उसके विवेकपर पर्दा डाल दिया, इसका विस्तृत विश्लेषण उपन्यासमें नहीं है। रवीन्द्रनाथका चित्र और तरहका है। महेन्द्रको जो विनोदिनीने उद्भ्रान्त किया सो उसे सहसा देखनेका फल नहीं है। तरह तरहकी छोटी-मोटी चातुरी और गुप्त घटनाओंके भीतरसे यह आकर्षण उत्पन्न हुआ, सजीव हो उठा। रोहिणीके साथ मेल होनेके पहले गोविन्दलाल और भ्रमर सुखपूर्वक समय बिता रहे थे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उसका कोई विस्तृत वर्णन नहीं है। चोखेर बाली (आँखकी किरकिरी) में रवीन्द्रनाथने महेन्द्र और आशाके मिलनका पुंखानुपुंख वर्णन दिया है। इसमें आशाका रूठना, चारुपाठका पढ़ना, कालेज जानेमें नागा करना और परीक्षामें फेल होना सब कुछ है। यहाँ तक कि दोनोंके दिनको रात और पूनोंकी रातको दिन माननेकी आकाश-कुसुमकी कल्पना भी नहीं छूटी है।

चरित्रकी सृष्टिमें भी रवीन्द्रनाथकी कल्पना वास्तव-भित्ति ही प्रमाणित होती है। भ्रमरमें एक अलौकिक तेज और महिमा है; किन्तु आशा साधारण घरकी अति साधारण स्त्री है। यह भी यह अच्छी तरह नहीं समझ पाती कि क्या करके किस तरह उसका सर्वनाश किया जा रहा है। अन्यान्य उपन्यासोंकी आलोचना करनेपर भी यह निपुणता दिखाई देगी। गोराको पढ़ते महामानव

* "इन उपन्यासोंमें विश्लेषण और चरित्रचित्रणका समन्वय बिल्कुल ही सन्तोषजनक नहीं जान पड़ता।" इन सब उपन्यासोंमें गुण-अवगुण चाहे जो भी क्यों न हो रवीन्द्रनाथके बादके उपन्यास लेकर इस तरहके आरोपका अनुशीलन कर चलेंगे लेख नहीं बढ़ाना चाह ऐतिहासिक उपन्यास जैसे बंकिमचन्द्रके बाद ही गुमनाम हो गये हैं, वैसे ही शायद इस शैलीके उपन्यास भी रवीन्द्रनाथके बाद और न लिखे जावेंगे। यह उपन्यासका मार्ग केवल कठिन ही नहीं अननुकरणीय भी है।

समझनेकी भूल हो सकती है*। किन्तु उपन्यासमें अधिक दूर आगे बढ़नेपर पता ही देखते हैं कि वह एक साधारण मनुष्य है और उसमें जो कुछ असाधारणता है, वह भी भित्तिहीन है। उसका जन्म हुआ था म्यूटिनी (गदर) के समय। वह व्यक्ति-पालित हुआ था एक हिन्दू घरमें। इसीसे उसकी अति उग्र हिन्दुता अर्थहीन है वह एक प्रकारका विकारमात्र है। इसके बाद वयसके उस उत्साह रहने पर भी उसके चरित्रमें कोई अनन्यसाधारणता नहीं है। सबसे अन्तमें उसके जन्मके रहस्यको प्रकट करके सुचरिताके साथ उसे मिलाकर रवीन्द्रनाथ उसे साधारण मनुष्योंकी श्रेणीमें ले आये हैं। 'नौका डूबी' उपन्यासमें रमेश और कमलाका मिलन योग अति-नाटकीय है किन्तु उनकी सम्मिलित जीवनयात्राका चित्र अनेक छोटी-मोटी सम्पूर्ण व्यापार विस्तार द्वारा अंकित किया गया है। कमलाके स्वामीके बारेमें सब बात जान लेनेपर रमेशने अतिनाटकीय कुछ नहीं किया, उसने इस कठिन समस्याका सहज सरल समाधान करनेकी चेष्टा की।

रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंका और एक प्रधान लक्षण यह है कि उन्होंने चिर प्रचलित नीतिको मान कर उसके माहात्म्यका कीर्तन या प्रचार करनेके लिए उपन्यासोंकी रचना नहीं की। नैतिक सम्बन्धमें उनका यह पक्षपातशून्य होना उनकी प्रतिभाकी मौलिकताका परिचय देता है। बंकिमचन्द्रने चिरकालसे आचरित नीतिको मान लिया है और अपने उपन्यासोंमें धर्म और बुद्धि इन दोनों प्रकारकी प्रवृत्तियोंके संघर्षका चित्र अंकित किया है। रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंमें, 'नौका डूबी' में प्रचलित रीतिके प्रति श्रद्धा दिखाई गई है किन्तु 'चोखेर बाली' (आँखकी किरकिरी) में वह श्रद्धाकी स्वीकृति नहीं है। 'चोखेर बाली' ने बंगलादेशकी उपन्यास-धाराको नया मोड़ दिया है, यह सब स्वीकार है। 'दुर्गेशनन्दिनी' के बाद अगर कोई भी उपन्यास बंगलामें नया युग स्थापित कर सका है तो वह 'चोखेर बाली' है। 'चोखेर बाली' में विधवाके प्रणयकी आकांक्षाका चित्र अंकित हुआ है किन्तु

---

* यह अवश्य उपन्यासके प्रथमांशमें भी यह भूल हो सकती है। किन्तु पहिले लिखा है कि गोरा उस आयरिशका (म्यूटिनीमें) [illegible] है। यह [illegible] सहज स्वीकृति नहीं है।

रवीन्द्रनाथने कहींपर विनोदिनीको कोड़े नहीं मारे, बुरा-भला नहीं कहा। उसकी आकांक्षाको रमणीकी सहजात स्वाभाविक आकांक्षाके रूपमें ग्रहण करके उन्होंने उसका विश्लेषण किया है—उसका वर्णन किया है। उन्होंने इस उद्दाम या प्रचण्ड प्रवृत्तिका जयगान भी नहीं किया बल्कि यह समझाया है कि यह उच्छृंखलता कैसा प्रलय मचा देती है। लेकिन चूँकि विनोदिनी विधवा है इसी लिए उसका किसी पुरुषके प्रति आसक्त होना असंगत होगा—ऐसी बद्धमूल धारणाको लेकर रवीन्द्रनाथ यह उपन्यास लिखने नहीं बैठे थे। बल्कि यही इस उपन्यासका अन्यतम प्रतिपाद्य विषय जान पड़ता है कि उसकी-सी अवस्थामें पड़नेपर महेन्द्र या बिहारीके प्रति आसक्त होना ही उसके लिए स्वाभाविक है। किन्तु अन्त तक वह इस निरपेक्षता या तटस्थताकी रक्षा नहीं कर पाये। इसी कारण उपन्यासके अन्तिम अंशमें विनोदिनीका चरित्र कैसे कुछ अद्भुत-सा बन गया है। जान पड़ता है, ग्रन्थकारने ऐसे एक चरित्रकी सृष्टि कर डाली है, जिसकी परिणतिके सम्बन्धमें वह अपने मनको स्थिर नहीं कर सके। लेकिन तो भी उन्होंने प्रचलित संस्कारसे मुक्त होकर नर-नारीके हृदयका चित्र अंकित करनेकी जो चेष्टा की, वही लक्ष्य करनेका विषय है और यही बंग-साहित्यकी गतिका निर्णायक हुआ। बंकिमका युग लाँघकर हम एक नवीन युगमें पहुँच जाते हैं।

३

'रवीन्द्र-जयन्ती' के अवसरपर शरत्चन्द्रने कहा था कि वह साहित्यमें गुरुवादको मानते हैं और प्रसंगवश उन्होंने रवीन्द्रनाथके 'चोखेर बाली' उपन्यासका उल्लेख भी किया था। रवीन्द्रनाथके इस उपन्यासमें संस्कारसे मुक्त होनेका जो परिचय पाया जाता है उसीका पूर्णतर विकास शरत्चन्द्रके साहित्यमें हुआ है। रवीन्द्रनाथने विनोदिनीकी प्रणयाकांक्षाकी स्वाभाविकताको स्वीकार किया है और शरत्चन्द्रने रमा, राजलक्ष्मी, अभया आदिका पक्ष लेकर प्रीतिहीन धर्म और दयाहीन समाजसे प्रश्न किया है कि यह मनुष्यका कौन मंगल कर सके हैं? एक विख्यात अँगरेज समालोचकने कहा है कि बीसवीं सदीके साहित्यकी सबसे बड़ी बात है एक विराट् जिज्ञासा। इस युगके साहित्यमें

सभी विषयोंमें प्रश्न उठाया है। शरत्के साहित्यके सम्बन्धमें यह कथन सम्पूर्ण रूपसे लागू हो सकता है कि नहीं, इस बारेमें शक उठ सकता है—उठ भी या सकती है। कारण, वहाँ योरपमें अधिकांश साहित्यिक केवल प्रश्न करके ही नहीं रह गये, प्रश्नकी मीमांसा लेकर भी उपस्थित हुए हैं। किन्तु उनकी यह उक्ति शरत्चन्द्रकी रचनाके सम्बन्धमें सम्पूर्ण रूपसे लागू होती है। समाजमें जो लोग उपेक्षित और लांछित हैं उनके जीवनको शरत्चन्द्रने अच्छी तरह जाना-समझा है, गम्भीर भावसे उनका अनुशीलन और अध्ययन किया है। उनके पक्षसमर्थनमें तत्पर हैं, निःसंशय महान् सहानुभूति रूपसे पारिवारिक भाव किया है, उनके वर्णनमें वास्तविकता है और उनकी इन विशेषताओंको सब लोग जानते हैं। यहाँतक भी उन्होंने रवीन्द्रनाथकी नम्रता हुए शिक्षा ही अपनाया है—समीक्षा सहारा लिया है। किन्तु उनकी मानसिकता प्रचलित नीतिके विरुद्ध विद्रोह करनेमें अधिक प्रकट हुई है। उन्होंने सामाजिक समस्याकी कोई मीमांसा करनेकी चेष्टा नहीं की। इस प्रश्नका उत्तर उन्होंने नहीं दिया; किन्तु उन्होंने रचनाद्वारा दलित प्रपीड़ित जनोंके हृदयमें प्रवेश किया है और उनकी ओरसे प्रश्न किया है कि जो समाज रक्षा करना नहीं जानता, संरक्षण करना नहीं जानता, उत्सर्ग करना या किसीके दुःख-सुखको समझना नहीं जानता, उसका गौरव किस बातमें है? उसके विधि-निषेध-युक्त सूत्रमें अगर कोई शक्ति है, तो वह कहाँकी शक्ति है?

बंकिमचन्द्रने जो जो चरित्र अंकित किये हैं उनमेंसे कोई-कोई शरत्चन्द्रकी रचनामें फिरसे भी उठे हैं, किन्तु उनका स्वरूप बदल गया है। रोहिणी जो बाहरसे सुन्दर लगने वालेके साथ चली गई थी वह बंकिमचन्द्रके उपन्यासमें एक पश्चात्ताप है। किरणमयी भी बाहरसे सुन्दर गायकके साथ चली गई थी। यहाँ शरत्चन्द्र यह कहना चाहते हैं कि यद्यपि किरणने कुलका त्याग किया था—धर्म निकल गई थी तथापि वह उसका मनुष्यत्व पाप नहीं। किरणमयी शरत्चन्द्रकी अमर रचनाओंमें है। यहाँ वह गायकके साथ भटका भी प्रकट नहीं कर पाये। अगर बंकिमचन्द्र और शरत्चन्द्रकी रचनाओंके अन्तरकी तुलना अगर करनी हो तो शरत्चन्द्रको अपाङ्क्तेय पतित रचनाओंमें आश्रय लेना होगा। ग्राम और दरदासर

जीवनमें थोड़ी-सी समता है। दोनों ही बाल्य-प्रणयके अभिशापसे अभिशप्त थे दोनोंहीके जीवनकी समाप्ति मृत्युकी ट्रेजेडीमें हुई और वह मृत्यु बाल्य-कालके प्रणयके साथ जुड़ी हुई है। किन्तु इन दोनोंके जीवनकी कहानी और चरित्रमें अन्तर भी बहुत अधिक है। पहले तो प्रताप जितेन्द्रिय है अतएव शैवलिनीको प्यार करनेपर भी उसने मनको काबूमें कर लिया है और जिस नारीपर उसका अधिकार नहीं है उसे पानेकी इच्छाको पददलित करके एक रूपसीसे ब्याह कर लिया है और उसे बिना संकोचके स्वीकार किया है। किन्तु देवदासकी बात और प्रकारकी है। जो लोग उसके लिए सहानुभूतिका अनुभव करेंगे, उनकी युक्ति यह होगी कि इन्द्रियोंको जीतनेमें जो पुण्य होता है, उसका मूल्य कितना है? हृदयके अन्तस्तलको भेदकर जो आकांक्षा जग उठी है, उसका गला घोंटकर या उसे दबाकर कौन महत् उद्देश्य सिद्ध होगा? इसके सिवा दूसरी स्त्रीसे ब्याह करना! देवदासके लिए यही तो यथार्थ पाप है। जिसे प्यार किया, उसे शास्त्रके द्वारा अनुमोदित उपायसे नहीं पाया, तो क्या इसीलिए हृदयसे उसके आसनको कोई रूपसी हटा देगी? और अगर यह आसन हट गया तो यही तो होगा परले सिरेका विश्वासघात।

यह तो हुई इनके जीवनकी कहानी। इनकी मृत्युका वर्णन भी भिन्न भिन्न उपायोंसे किया गया है। प्रतापकी मृत्युके बाद रामानन्द स्वामीने कहा है—"तो फिर जाओ प्रताप, अनन्त धाममें जाओ, जहाँ इन्द्रियोंको जीतनेमें कष्ट नहीं है, रूपमें मोह नहीं है, प्रेममें पाप नहीं है, वहीं जाओ। जहाँ रूप अनन्त, प्रणय अनन्त सुख अनन्त है, और सुखमें अनन्त पुण्य है, वहीं जाओ। जहाँ पराये दुःखको दूसरे जानते हैं जहाँ पराये धर्मको दूसरे रखते हैं, पराए यश दूसरे गाते हैं, पराएके लिए दूसरेको मरना नहीं होता, उसी महान् ऐश्वर्यमय लोकमें जाओ। लाखों शैवलिनी पैरोंके पास पाने पर भी तुम उन्हें प्यार करना न चाहोगे।" देवदासके जीवनकी लीला जब समाप्त हुई, तब ग्रंथकारने यह कहकर उसका उपसंहार किया है "तुम जो कोई इस कहानीको पढ़ोगे, हो सकता है कि मेरी ही तरह दुःखी होगे। तो भी अगर कभी देवदासकी तरह अभागे असंयमी पापिष्ठके साथ परिचय हो तो उसके लिए थोड़ी-सी प्रार्थना करना। प्रार्थना करना कि और चाहे जो हो, उसकी तरह ऐसी मृत्यु किसीकी भी न हो। मरनेमें हानि

नहीं है किन्तु उस मरनेके समय एक स्नेहमय हाथका स्पर्श उनके माथेको प्राप्त हो—कमसे कम स्नेहमय मुख देखते-देखते जीवनका अन्त हो। मरनेके समय आँखोंमें अपने लिए एक बूँद आँसू देखकर वह मर सकें।" बंकिमचन्द्र और शरत्चन्द्रकी रचनाओंमें जो भेद और अन्तर है वह इस स्थानपर सुन्दर रूपसे प्रकाशित हुआ है। बंकिमचन्द्रने समस्याका वर्णन किया है और शरत् चन्द्रने मानव-हृदयकी दुर्बलताका सहानुभूतिसे समझानेकी—उसकी उत्पत्तिकी चेष्टा की है।

अन्यान्य चरित्रोंकी भी गंभीर भावसे आलोचना करने पर यह अन्तर देख पड़ेगा। गोविंदपुरके जमींदारके घरमें किरणमयी पैदा होती या होंगी और वह पुत्र होनेके ही जीवनमें प्रस्फुटित हुआ। रोगा दुःखी है, दुर्भागी भूखी है। वह धर्मको नहीं मानती जिसके संबंधमें उसे आस्था नहीं है। अपने गुरुके सामने उसने बहुतसे पाप किये। अपने प्रेमपात्रकी हत्या कर डाली। जिस उपेन्द्रनाथ मनस्वीने उसके प्रेमका प्रतिदान नहीं दिया—इसलिये उसने क्षमा नहीं किया, उससे उसने बदला लिया, अपनी प्रतिहिंसा चरितार्थ की। इसके बाद पागलपनकी दशामें भी उसकी विपरीत-बुद्धि प्रबली रही। इन दोनों बातें 'चरित्रहीन' की किरणमयीका तात्पर्य है। यहाँ भी हम देखते हैं वही रोक न सकनेवाली प्रचण्ड प्रवृत्ति प्यार, वही अपरिमेय आत्मकरुणा, वही धर्म-अधर्मके प्रति उदासीनता वही प्रतिहिंसा-परायणता और अन्तमें उन्मादग्रस्तता। किरणमयीकी प्रतिहिंसाका उपाय बेहद मौलिक है। उसने सुरबालाकी हत्या नहीं की, दिवाकरका सर्वनाश किया। यहीं बंकिमचन्द्र और शरत्चन्द्रकी रचना-शैलीमें अन्तर है। धर्मके सम्बन्धमें किरणमयी केवल उदासीन ही नहीं है; धर्मके विरुद्ध, एकबारगी विरुद्ध तर्क करके, इंकार करके, घृणा करके उसका मन परिपुष्ट हुआ है। उपेन्द्रकी सीधे हत्या करके उपेन्द्रके अन्तरकी ओर नहीं पहुँच सकती, उसका अपमान नहीं हो सकता। इसीसे उसने एक ऐसा काम किया, जिससे उसका सिर नीचा हो, उसके हृदय नीचेसे धधकने लगती बार बार। इसी उद्देश्यसे उसने दिवाकरको फुसलाया और उस सर्वनाशकी सीमा तक पहुँचाकर आप अन्धी जैसे हो जाना चाहा। समाज और धर्मके विरुद्ध जो उदासीन भाव हम रोहिणीमें देख पाते हैं वही किरणमयीके हृदयमें तीव्र विद्रोहके रूपमें व्यक्त

गया है। इस तरहसे देखा जाय तो हीराका बिल्कुल किरणमयीमें जाकर मुकुलित हुआ है।

जिन सब नर-नारियोंने समाजके अनुशासनके अनुसार कोई अधिकार पाया है, उनके प्रति शरत्चन्द्र बहुधा ही सम्पूर्ण रूपसे अनुकूल नहीं हो सके हैं। इस जगहपर भी बंकिमचन्द्रकी रुचिके साथ शरत्चन्द्रकी रुचिके अन्तरको लक्ष्य करना होगा। सुरबालाके निकट किरणमयी पराजित हुई है। सुरबालाके विरुद्ध शरत्चन्द्रको कोई शिकायत नहीं है, लेकिन तो भी सुरबाला पाठकके मनमें श्रद्धा और आदरका भाव नहीं जगा पाती। उसके प्रति हमारे मनमें केवल कौतुक-मिश्रित स्नेहका संचार होता है। परन्तु बंकिमचन्द्रने जिन सब साध्वी पतिव्रता रमणियोंका चित्र अंकित किया है—जैसे भ्रमर, सूर्यमुखी आदि—उनके आचरणसे हम विस्मित होते हैं, श्रद्धासे उनके प्रति हमारा मस्तक नत हो जाता है कौतुकका अनुभव हमें नहीं होता। हारान बाबू अध्ययन करते हुए उसीमें मग्न रहते थे, स्त्रीके शरीरमें जवानी आनेकी ओर उनका लक्ष्य ही न था उसके साथ इन्होंने कभी प्यारका—प्रेमका आदान प्रदान नहीं किया। चन्द्रशेखर भी इसी प्रकारका एक पात्र है। किन्तु हारान बाबू और चन्द्रशेखरका अन्तर या भेद भी साधारण नहीं है। चन्द्रशेखर शान्त, सौम्य, उदार महान् है और बंकिमचन्द्रने उन्हींको अपने उपन्यासका नायक बनाया है। हारान बाबूमें हम एक निर्जीव ग्रंथ-कीटको देख पाते हैं, जिसकी प्रशंसा की जा सकती है, किन्तु प्यार नहीं किया जा सकता, जिसके पास भी नहीं पहुँचा जा सकता—"शुष्क कठोर मूर्तिमान् विद्याका अभिमान। अपने आसपास विज्ञानका कठिन घेरा खींचकर जो अत्यन्त सतर्क होकर दिन-रात अपने स्वातंत्र्यकी रक्षा करते थे, ऐसे स्वामी!"

प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें भी शरत्चन्द्रने बंकिमचन्द्रकी चलाई हुई रीतिका अवलम्बन नहीं किया। 'आँखकी किरकिरी', 'गोरा' आदि उपन्यासोंमें जो विस्तृत विश्लेषणका चित्र है वही शरत्चन्द्रकी रचनामें और अधिक विस्तृत और अधिक सूक्ष्म हुआ है। उन्होंने समाजद्वारा निन्दित पापके सामने संकोचका अनुभव नहीं किया; बल्कि विधवाके प्रवृत्ति-रोगका विस्तारसे वर्णन किया है। नर-नारियोंके हृदयके भीतर उन्होंने नानाप्रकारकी प्रवृत्तियोंका

द्वंद्व या संघर्ष देखा है। उनके नायक-नायिकाओंके चरित्र किसी एक प्रवृत्तिकी सफलतासे ठीक नहीं गए। इसी कारण उनके उपन्यासोंमें मानसिक द्वंद्व और परिवर्तनके चित्र बहुत ही सजीव उतरे हैं। जिस बड़ी दीदीने सुरेन्द्रनाथको छोटी बहनका मास्टर होनेके कारण थोड़ा-सा स्नेह, जिसमें कृपा भी मिली थी, दिखाया था और जो बड़ी दीदी मरणासन्न सुरेन्द्रनाथके निकट उपस्थित हुई थी उसमें कितना बड़ा भेद है! और उस भेदके मूलमें हैं बहुत दिनोंकी बहुत-सी घटनाएँ और बहुत-सा चिन्तन। एक दिन जो रमा तारिणी घोषालके आश्रम उपस्थित होनेकी बातकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी, एक दिन उसीने यतीन्द्रको रमेशके हाथमें सौंपकर सम्पत्ति-समेत सदाके लिए विदाई ले ली। किन्तु यह सब परिवर्तन असम्भव नहीं जान पड़ता, क्योंकि यह आया है धीरे धीरे, तिल-तिल करके।

बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंमें मानसिक द्वंद्व और परिवर्तनके चित्र बहुत ही कम हैं। जहाँ मानसिक परिवर्तनका चित्र है, वहाँ भी हम देखते हैं कि परिवर्तन इतना सहसा उपस्थित हुआ है कि जान पड़ता है, जैसे एक चरित्र एकाएक दूसरे चरित्रमें बदल गया है। जो श्री स्वामीके द्वारा परित्यक्त होकर बागके फूल चुनकर तोड़ती और मनके माफिक माला गूँथकर उस कुंजकी डालीमें लटकाकर मनमें सोचती थी कि उसने यह माला अपने स्वामीको पहनाई है, जिस श्रीने अपने गहने बेचकर अच्छी सामग्री खरीदकर अच्छी अच्छी व्यंजनें धीरे बनाकर मनमें सोचा कि अपने स्वामीको खिलाया उसी श्रीने एक दिन स्वामीको पूरी तौरसे छोड़ दिया। संन्यासिनीके भावमें रमणीकी भोग-लिप्सा सम्पूर्ण लुप्त हो गई। स्वामीके द्वारा परित्यक्त भैरवी पाइर्वीन स्वामीको। एक दिन अचानक घर पाया इसमें उसके समस्त जीवनमें गहरा परिवर्तन आ गया। उसके भीतर सोई हुई अप्सरा फिर जाग उठी किन्तु पोदर्यी भी सान्त्वना आन सकी नहीं। पाकरी और भ्रमरके बीच सामंजस्य करनेमें उसका सारा जीवन बीत गया, और कोई सामंजस्य सम्भव है या नहीं, यह अन्ततक अनिश्चित ही रह गया। आशीर्वाद और प्रमाणसे सम्पूर्ण भर रह थी। वह जिस दिन सहसा फिर जी उठी उसी दिन सौभाग्यकी भी सान्त्वना भाग गई—यह उसका अपना अर्जुन इसमें भरा भव, [illegible] प्रश्न अनिश्चित रहा। दिवागीवाहर और राइरस्टीन जिस तरह अपना बना गया था, यह हम

नहीं मानते * किन्तु इस विषयमें सन्देह नहीं कि उसने हृदयके किसी एकान्त कोनेमें अपनी किशोरावस्थाको सजीव रखा था। जिस दिन श्रीकान्तके साथ फिर उसकी भेंट हुई, उसी दिन पियारी नहीं मर गई, राजलक्ष्मीके जीवनमें बीच बीचमें पियारी झाँकती रही है। सिर्फ यही नहीं, जिस राजलक्ष्मीने शिकारपार्टीके डेरेमें श्रीकान्तका अभिवादन किया था और जो राजलक्ष्मी गंगामाटीसे श्रीकान्तको विदा करनेको राजी हो गई थी—इन दोनोंमें भी कितना अन्तर है! अथ च यह परिवर्तन एक ही दिनमें नहीं पूरा हुआ धीरे धीरे, बहुत-सी छोटी मोटी तुच्छ घटनाओंके बीचसे विकसित करके उसके चरित्रमें यह परिवर्तन आया है और इसके विश्लेषणमें ही शरत्चन्द्रकी महिमा प्रकट हुई है।

कथा-साहित्यके उपन्यासके प्रारम्भ और परिणतिकी आलोचना करके हम देख पाते हैं कि बंकिमचन्द्र ही बंगलामें यथार्थ उपन्यासकी सृष्टि करनेवाले हैं। उन्होंने तरह तरहके उपन्यास लिखे हैं। उनका प्रत्येक उपन्यास रोमान्सके प्रभावसे युक्त है। इस रोमान्सका मूल उनकी चरित्र-सृष्टि और वर्णनशैलीमें है। उनके लिखे हुए चरित्र प्रायः ही महामानव हैं। साधारण मनुष्यके चरित्रमें भी कोई एक प्रवृत्ति असाध्य प्रबल हो गई है। बंकिमचन्द्रके ग्रन्थोंकी आलोचना करनेपर हम देख पाते हैं कि उन्होंने चरित्रका पुंखानुपुंख या सिलसिलेवार सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया, नर-नारीके हृदयको उन्होंने समग्रभावसे देखा है और प्रचलित धर्मके प्रति श्रद्धा और अनुराग दिखाया है।

रवीन्द्रनाथकी मौलिकता चरित्रोंकी सृष्टि और प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें प्रकट हुई है। उन्होंने महामानवकी बात नहीं लिखी है; साधारण मनुष्योंकी साधारण कहानीको गहराईके साथ सोचा-समझा है। उनकी बात लिखते समय वह उनके हृदयके अन्तस्तलमें पैठ गये हैं और वहाँ अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियोंका संघर्ष और उथल-पुथल देख पाया है। उन्होंने किसी भी एक प्रवृत्तिको प्रतीक मात्र नहीं समझा। प्रचलित धर्म और नीतिके विरुद्ध उन्होंने विद्रोह अवश्य नहीं किया, किन्तु उसका समर्थन भी नहीं किया। उन्होंने मनुष्यको

* श्रीकान्त चतुर्थपर्वमें इसका मार्मिक वर्णन है।

मनुष्यके ही हिसाबसे देखा है और प्रचलित धर्म और नीतिके सम्बन्धमें निरपेक्ष रहनेकी चेष्टा की है।

शरत्चन्द्र रवीन्द्रनाथके दिखाये मार्गपर ही आगे बढ़े हैं। उनके भी नायक नायिका बहुत साधारण लोग हैं। उन्होंने उनके जीवनको गहरी और पैनी दृष्टिसे गहराई तक देखा है और उनके हृदयके गम्भीरतम प्रदेशमें संस्कार और 'अनुभूति का जो निरन्तर संघर्ष चलता है उसका बहुत ही सिलसिलेवार सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अनुभूतिकी गहराई और विश्लेषणकी सूक्ष्मतामें उनकी रचना बेजोड़ है। इसके अलावा प्रचलित नीति और धर्मके बारेमें वह निरपेक्ष नहीं रहे। उन्होंने इन चीजोंको अस्वीकार नहीं किया किन्तु इन्हें अन्याय करनेवाला कहकर शिरोधार्य भी नहीं किया। उनकी रचनामें विद्रोहका सुर है। उन्होंने प्रश्न किया है कि जो धर्म मनुष्यके हृदयके साथ अत्याचार करके तैयार हुआ है, उसका मूल्य कहाँ है—उसका मूल्य क्या है!

नहीं जानते * किन्तु इस विषयमें सन्देह नहीं कि उसने हृदयके किसी एकान्त कोनेमें अपनी विशाखाको छिपा रखा था। जिस दिन श्रीकान्तके साथ फिर उसकी भेंट हुई, उसी दिन पियारी नहीं मर गई राजलक्ष्मीके जीवनमें बीच-बीचमें पियारी झाँकती रही है। सिर्फ यही नहीं, जिस राजलक्ष्मीने शिकारपार्टीके डेरेमें श्रीकान्तका अभिवादन किया था और जो राजलक्ष्मी गंगामाटीसे श्रीकान्तको विदा करनेको राजी हो गई थी—इन दोनोंमें भी कितना अन्तर है। अब न यह परिवर्तन एक ही दिनमें नहीं पूरा हुआ, धीरे धीरे, बहुत-सी छोटी मोटी तुच्छ घटनाओंके बीचसे विकसित करके उसके चरित्रमें यह परिवर्तन आया है और इसके विश्लेषणमें ही शरत्चन्द्रकी प्रतिभा प्रकट हुई है।

बंग-साहित्यके उपन्यासके प्रारम्भ और परिणतिकी आलोचना करके हम देख पाते हैं कि बंकिमचन्द्र ही बंगालमें यथार्थ उपन्यासकी सृष्टि करनेवाले हैं। उन्होंने तरह तरहके उपन्यास लिखे हैं। उनका प्रत्येक उपन्यास रोमान्सके लक्षणसे युक्त है। इस रोमान्सका मूल उनकी चरित्र-सृष्टि और वर्णनशैलीमें है। उनके लिखे हुए चरित्र प्रायः ही महामानव हैं। साधारण मनुष्यके चरित्रमें भी कोई एक प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल हो गई है। बंकिमचन्द्रके आदर्शकी आलोचना करनेपर हम देख पाते हैं कि उन्होंने चरित्रका पुङ्खानुपुङ्ख या सिलसिलेवार सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया, नर-नारीके हृदयको उन्होंने सम्भ्रमभावसे देखा है और प्रचलित धर्मके प्रति श्रद्धा और अनुराग दिखाया है।

रवीन्द्रनाथकी मौलिकता चरित्रोंकी सृष्टि और प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें प्रकट हुई है। उन्होंने महामानवकी बात नहीं लिखी है। साधारण मनुष्योंकी साधारण कहानीको गहराईके साथ देखा-समझा है। उनकी बात लिखते समय वह उनके हृदयके अन्तस्तलमें पैठ गये हैं और वहाँ अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियोंका संघर्ष और सुखदुःखोंका मेल देख पाया है। उन्होंने किसी भी एक प्रवृत्तिको प्रतीक मात्र नहीं समझा। प्रचलित धर्म और नीतिके विरुद्ध उन्होंने विद्रोह प्रकाश नहीं किया, किन्तु उनका समर्थन भी नहीं किया। उन्होंने मनुष्यको

* श्रीकान्त, चतुर्थपर्वमें इसका आभास मिलता है।

मनुष्यके ही हिसाबसे देखा है और प्रचलित धर्म और नीतिके सम्बन्धमें निरपेक्ष रहनेकी चेष्टा की है।

शरत्चन्द्र रवीन्द्रनाथके दिखाये मार्गपर ही आगे बढ़े हैं। उनके भी नायक नायिका बहुत साधारण लोग हैं। उन्होंने उनके जीवनको गहरी और पैनी दृष्टि गहराई तक देखा है और उनके हृदयके गम्भीरतम प्रदेशमें 'संस्कार' और 'अनुभूति' का जो निरन्तर संघर्ष चलता है उसका बहुत ही सिलसिलेवार सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अनुभूतिकी गहराई और विश्लेषणकी सूक्ष्मतामें उनकी रचना बेजोड़ है। इसके अलावा प्रचलित नीति और धर्मके बारेमें वह निरपेक्ष नहीं रहे। उन्होंने इन चीजोंको अस्वीकार नहीं किया किन्तु इन्हें अन्याय करनेवाला कहकर शिरोधार्य भी नहीं किया। उनकी रचनामें विद्रोहका सुर है। उन्होंने प्रश्न किया है कि जो धर्म मनुष्यके हृदयके साथ अत्याचार करके तैयार हुआ है, उसका मूल्य कहाँ है—उसका मूल्य क्या है!

२—शरत् साहित्यकी भूमिका

१

अतीत युगके साहित्यका प्रधान विषय था मनुष्यका व्यक्तिगत सुख-दुःख। यह बात उस समय कोई अच्छी तरह ध्यान देकर नहीं देखता था कि मनुष्य समाजका अंग है, उसके जीवनकी गति-विधि समाजके सहस्रों विधि-निषेधोंके द्वारा सीमाबद्ध है। पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थने कुली-मजदूरोंमें महान् जीवनका परिचय पाया—उन्होंने यह विचार करके नहीं देखा कि उनका जीवन कितना दीन है, अत्याचारसे कितना पिसा हुआ है। केवल कुली-मजदूरोंकी ही बात क्या कही जाय, जिनके जीवनमें आर्थिक दीनता कम है, वे ही क्या सब विषयोंमें सम्पूर्ण स्वाधीन हैं? हैमलेटने सोच-सोचकर, चिन्ता करकरके, अपने जीवनको व्यर्थ कर डाला उसके कर्मसम्बन्धी प्रायः सभी बाधाएँ उसकी व्यक्तिगत प्रकृतिसे आईं। किन्तु यही क्या होता है? मनुष्य अपने सभी कार्योंमें समाजका अंग है। उसके मनको स्वाधीन माननेसे कैसे काम चलेगा? उसको जो स्वाधीनता नहीं है, वह क्या उसके मनको रह सकती है?

मनुष्यकी इस अधीनताकी बात विशेषकर वर्तमान युगके साम्यवादके प्रभावसे अभिव्यक्त हुई है। गत सौ वर्षोंमें अर्थनीति-विज्ञानकी आलोचना बहुत अधिक हुई है। और, उस आलोचनाके फलस्वरूप साहित्यमें खास करके मनुष्यकी आर्थिक और पारिवारिक अवस्थाओंके ऊपर जोर दिया गया है। मनीषी स्वर्गीय स्पेंग्लरने कहा है कि साहित्य अर्थनीतिकी विकासका प्रकट चित्र है। हम सुनते थे कि कांट, हेगेल आदि दार्शनिक सिद्धान्तोंका तत्त्व ही साहित्यको

रूपमें पुष्ट हुआ है। अतीत कालके साहित्य या समालोचनामें यह बात बहुत कम दिखती है कि साहित्य मनुष्यकी अर्थनैतिक अवस्थाका—व्यष्टि (व्यक्ति) के साथ समष्टि (समाज) के सम्बन्ध या एकताका—चित्र है। किन्तु वर्तमान युगके साहित्यकी सबसे बड़ी बात यही धारणा है। अर्थनीति और समाजके साथ मनुष्यके मन-जगत्का निकट सम्बन्ध है। इसीसे वर्तमान युगका साहित्य एकदम वस्तुतान्त्रिक अथवा यथार्थवादी है। वह मनुष्यकी पारिपार्श्विक अवस्था और मानव-मनके ऊपर उसकी प्रतिक्रियाकी परीक्षा करता है। पहलेके युगके नैतिक लोग मनुष्यके मनका संस्कार करते थे। किन्तु वर्तमानकालके नीतिज्ञ कहते हैं कि नीतिका मूल है सामाजिक अवस्थाके भीतर। अतएव नीतिको बदलनेके लिए पहले समाजका मूलतः संस्कार करना होगा। महाभारतके समयसे हम सुनते आ रहे थे कि नीति ईश्वरकी दी हुई वस्तु है। यह धर्मका अंग है। समाज उसे [illegible] और जो कोई उसे न मानेगा उसे यह पापी समझकर दण्ड देगा। किन्तु इसके भीतर एक भारी धोखा है। महाकवि गोर्कीने पहाड़ पर उतरकर मूसा पैगम्बरने जिन दस अनुशासनोंका प्रचार किया था, उनके साथ भगवानका सम्बन्ध तो बहुत कम है; इस लोकके साथ बहुत है। पराये धन या सम्पत्ति अपहरण करनेसे सबमें सुगम विराजमान ईश्वरकी हानि तो बहुत थोड़ी है, किन्तु यह इस लोकके पड़ोसीकी हानि बहुत अधिक है। पड़ोसीकी स्त्रीके और कुदृष्टि डालनेसे भगवानका कुछ न बिगड़ेगा किन्तु यह पड़ोसीकी शान्ति न रहे, जीवनमें बाधा अवश्य होगी। किन्तु इसीसे इन बातोंको भगवानकी वाणी या आदेश कहकर चलाया। इसी तरह सब बातों और सब कामोंमें धर्मके साथ नीतिका सम्बन्ध जुड़ गया है। वर्तमान युगके समाज-संस्कारकोंने देखा कि समाजका आमूल परिवर्तन किये बिना तो पहले महाभारतमें कही गई नीतिकी धारामें विचार होगा। नीतिकी नींव समाजकी सुविधा-असुविधामें है। उन्होंने दिखाया कि (धर्म) का कोई सम्बन्ध नहीं है। पहले मनुष्य नीतिका अनुगामी होता था, इन दिनों नीति मनुष्यकी अनुगामिनी है।

इस अर्थनैतिक भावके साथ साथ साहित्यका रूप भी बदल गया है। इस युगके साहित्यने व्यक्तिके ऊपर समाजशक्तिके विचारहीन पीड़न और धर्महीन नैतिक विरुद्ध मनुष्यके मनका विद्रोह दिखाया है। वर्तमान युगके श्रेष्ठ लेखक

अनातोल-फ्रांसकी रचनामें इस बातकी अभिव्यक्ति हास्यके उज्ज्वल व्यंगके माध्यमसे हुई है। उनका अंकित श्रेष्ठ चरित्र *Jerome Coignard* है। इस मठके पादरीने दिखाया है कि नीतिके साथ भगवान्का कोई सम्बन्ध नहीं है। लेखकने इस पादरीसे संसारकी सारी अनीति या दुर्नीतिके लिए धर्मकी दोहाई दी है अपने सभी कुकर्मोंमें भगवान्का इशारा देख पाता है। यही वर्तमान युगके साहित्यकी नैतिक अवनतिकी मूल बात है। शेक्सपियरकी रचनामें अश्लीलता है। प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें भी अश्लीलता है। किन्तु इन सब बातोंमें अश्लीलताको अश्लीलता ही मान लिया गया है। वर्तमान युगके साहित्यका उद्देश्य और प्रकारका है। आजकलकी अश्लीलताने श्लीलताके मर्मस्थलपर चोट की है, उसका मूलोच्छेद करनेकी चेष्टा की है। वर्तमान युगके लेखकोंने दिखाया है कि जिसे हम नीति कहते हैं उसके मूलमें शक्तिशालीका प्रबल लोभ मौजूद है। मातृत्वकी मर्यादा बनाये रखनी होगी, इसीलिए पुरुषका अपने लिए कोई बाधा करना ही दुर्नीति है। शक्तिमान् पुरुषने नारीके शरीरपर अपना अबाध प्रभुत्व चाहा था इसीलिए सतीत्व नारीके इहलोक और परलोकका एकमात्र धर्म है, और पुरुषका व्यभिचार साधारण अपराध मात्र है।

वर्तमान युगके साहित्यकी यही प्रधान धारा है। इसमें मनुष्यके हृदयके आवेगकी बात नहीं है—इसमें रोमान्सका अत्यन्त अभाव है। इसमें पारिपार्श्विक आवेष्टनके साथ मानवका मिलन और संघर्षकी बात तथा फिर कामसे नयी आ रही नीतिकी शिथिलताके ऊपर कटाक्ष है। किन्तु अनेक लोगोंने प्रश्न किया है कि इसे लेकर क्या साहित्य बनता है? साहित्यका विषय है मनुष्यके सुख-दुःख और अनुभूतिकी बात। समाजव्यक्तिका कोई रूप नहीं है। अथ च साहित्य है 'सुन्दर' का चित्र। सुंदर अपनेको रूपमें प्रकट करता है, वह रूप-हीनमें पाया जा सकता है। इसीसे रूपहीन शक्तिको लेकर साहित्य नहीं होगा। फिर समाजव्यक्तिको बाद देकर व्यक्तिका जो कारबार रह जाता है, उसमें सौन्दर्य रह सकता है किन्तु वह सौन्दर्य मिथ्या है। उससे हीन साहित्य लेकर क्या होगा? यही आजकलके साहित्यका सबसे कठिन प्रश्न है। जो रोमान्टिक साहित्यके उपासक हैं वे बर्नार्ड शाके साहित्यमें सुन्दरका अभाव देखेंगे और जो बर्नार्ड शाके हैं, वे कहेंगे कि शेक्सपियरके नाटकोंका रूप मूल्यहीन है। कारण, उनकी नींव मिथ्या है।

२

इस द्वंद्व (विरोध) का खण्डन करनेकी चेष्टा न करके, कारण एक विराट् ऊपर ध्यान देना ठीक होगा। वर्तमान युगके साहित्यमें ही हम अक्सर देख पाते हैं कि जो सत्य है, वह सुन्दरसे पृथक् हो गया है। शायद इससे दोनोंके गौरवकी हानि हुई है। शायद इसमें सत्यकी गरिमा कुछ कम हो गई है, अथवा सुन्दरकी महिमा नष्ट हो गई है, किन्तु तो भी हम उसमें व्यष्टि और समष्टिकी व्यक्तिगत हृदयकी भावना और रूपहीन समाजशक्तिके संघर्षका एकत्र समावेश देख पाते हैं। शरत्चन्द्र इसी भांति साहित्यिक हैं। उनके लिखे हुए साहित्यके रसकी उपलब्धिके लिए यह याद रखना होगा कि वह वर्तमान युगके साहित्यिक हैं। समाजशक्तिके विरुद्ध जो प्रचण्ड अभियोग विदेशी साहित्यमें आन्दोलित हुआ है, उसकी गूंज शरत्चन्द्रकी रचनामें भी पहुँची है। उनकी रचनाकी एक प्रधान विशेषता यह है कि समाजशक्तिके पीड़नसे व्यक्तिका व्यक्तित्व क्षुण्ण नहीं हुआ।

और यह भी ध्यानमें रखना होगा कि शरत्चन्द्रने समाजव्यवस्थापर चोट की है प्रधानतः उसकी नीतिकी ओरसे, अर्थनीतिकी ओरसे उतना आघात नहीं किया है। हमारा देश दारिद्र्यसे पीड़ित है और इस दैन्यका हाहाकार उनकी रचनाओंमें प्रकट न हुआ हो, यह बात भी नहीं है*। किन्तु उनकी रची हुई

---

* विराज बहू, अरक्षणीया, मझेल दीदी, पंडित मशाय, देहाती, अरक्षणीया आदि रचनाओंमें दारिद्र्यका चित्र है, किन्तु इनमें शरत्चन्द्रकी प्रतिभाकी विशेषता पूरे तौर नहीं है। और बर्नार्ड शा ने हैरिसकी शेक्सपियर (भूमिका) में ध्यान भी कर सकी। शायद इसीलिए निर्धन श्रमिक जीवनका निपुण चित्र नहीं खींच सके हैं। और, यह बात भी वर्गके और समस्याके भावसे है। किन्तु इसके प्रधान कारण निर्धन नहीं है, यह कहना कुछ अनुचित न होगा। इस सम्बन्धमें बर्नार्ड शा कहते हैं—

Shakespeare's characters are mostly members of the leisured classes. The same thing is true of Mr Harris's own plays and mine. Industrial slavery is not compatible with that freedom of adventure, that personal refinement and intellectual culture which the higher and subtler drama demands."

बर्नार्ड शाके लिए दुःखकी आवश्यकता ही है यही शरत्चन्द्रके बारेमें भी कही जा सकती।

अधिकांश प्रणय-कहानियोंमें दाम्पत्य जीवनका परिचय नहीं है। 'ग्राम्य-समाज' उपन्यासमें इन सब जीवनोंकी ध्वनि अवश्य है, किन्तु रमा और रमेशके हृदयके आदान-प्रदानके निकट वह गौण है। शरत् बाबूने जिन नर-नारियोंका चित्र अंकित किया है, वे सभी धनवान् हैं। गुरुचरणके अवश्य धन नहीं है, लेकिन उसके लिए शशधरकी दया (मेहरबानी) कभी ख़त्म नहीं होती। गिरीन्द्रकी प्रकृतिमें जैसे परोपकार करनेकी प्रवृत्ति प्रबल है वैसे ही उसके पास धन भी यथेष्ट है। ललिता और शेखर, विजया और नरेन्द्र, सावित्री और सतीश—इनको प्रेमके आदान-प्रदानका अवकाश बहुत था। कारण, जिस दैन्य या गरीबीके साथ संघर्षमें मानव-जीवनका सारा माधुर्य नष्ट हो जाता है उसके पीड़नने कभी उन्हें सताया नहीं। इस दैन्यका आभास केवल किरणमयीके जीवनमें देखा गया है। वह जो अनंगमोहन डाक्टरके निकट अपनेको बेचने बैठी थी, उसके भीतर उसकी प्रेम पानेकी उत्कट अभिलाषा तो थी ही पर उसके साथ डाक्टरके ऊपर उसकी एकान्त निर्भरशीलता भी थी। यह अधीनता या विवशता किस तरह मानव-जीवनको प्रतिहत करती है—निकम्मा बना देती है इस विषयकी रत्तीभर भी समालोचना या चर्चा शरत्चन्द्रने नहीं की। उपेन्द्रके प्रकट होनेके साथ ही साथ किरणमयी और उसकी सासकी आर्थिक चिन्ता मिट गई, हारान बाबूकी चिकित्साका अध्याय प्रकट हो गया और अनंग डाक्टरके साथ किरणमयीका जो प्रेमका अभिनय चल रहा था, उसका अन्त हो गया। वास्तवमें शरत्चन्द्रकी रचनाओंमें यह पहलू प्रायः छूट गया है।

जान पड़ता है, इसका भी एक कारण है। समाजके बहिर्मुख प्रश्न ही अगर उनकी दृष्टिमें मुख्य होते, यह अमर पुरोहितोंके विचार, सूदखोरके अत्याचार और श्रमिकोंकी हड़ताल आदि विषयोंके ही निरूपणमें लगे रहते, तो फिर रस-हीन नाना व्यक्तियोंके द्वन्द्वके बीच नर-नारीके हृदयका माधुर्य लुप्त हो जाता। उनके साहित्यमें वर्तमान युगकी यह विशेष छाप नहीं है। उन्होंने केवल चिरकालसे चली आ रही सामाजिक नीतिके पहलूसे ही समाजका निरीक्षण किया है। यहीं उनकी एक विशेषता माननी होगी। योरपके साहित्यमें एक भावहीन जड़ पिण्डके रूपमें समाजशक्ति प्रकट हुई है। उसके द्वारा मानवका मन पीसा जा रहा है और वह उसके विरुद्ध विद्रोही हो गया है। किन्तु यह भावहीनके साथ भाववान्‌का संघर्ष है। शरत्चन्द्रकी विशेषता यह है कि उनकी रचनामें समाज-

पाठक नर-नारियोंकी अन्तरात्माके भीतर आश्रय पाकर सजीव हो उठी है। यह रूपहीन निर्जीव छायामात्र नहीं है। यह मानवके हृदयकी वस्तु है और उसकी अनुभूतिके रससे प्राणवान है। नैतिक बन्धन बहुत स्थूल है उनका सबसे कम प्रभाव होता है। अथ च साहित्यमें नायक-नायिकाके हृदयकी घनिष्ठ होती है—साहित्यका उपजीव्य उनके स्वाधीन जीवनका सुख-दुःख है। या सत्याधारके ऊपर प्रकाश्य या स्पष्ट होता है यह इतना व्यापक है कि उसके भीतर रूपमात्र सौन्दर्यके लिए स्थान नहीं है। शरत्ने इन इस अस्पष्ट रूपातीत छायाको यथोचित सम्भव है व्यक्तिगत अनुभूतिसे लेकर सजीव कर दिया है।

३

स्वाभाविक अनेक समय चिरकालसे चल आ रहे संस्कारके भीतरसे अपनेको प्रकट करती है। संस्कार किन्तु एकदम बाहरकी चीज नहीं है। उसका आसन हम लोगोंके मनमें ही है। मानव-मनकी जटिलता अनन्त है। मनुष्यके बुद्धि है अनुभूति है। कुछ अनुभूतिविहीन संस्कारके साथ बुद्धिमिश्रित उस मान दिया है। फिर अनेक लोगोंके मनमें बुद्धिने भी संस्कारका ही समर्थन पक्ष लिया है। बस 'धर्महीन' की पुकार। उनकी सारी अनुभूति और बुद्धि केवल अंधे संस्कारके आश्रित है। किन्तु अधिकांश आत्मनिर्भर मन इतना सहज और सरल नहीं होता। उनका एक संस्कार है और वे संस्कारको बाहरकी चीज भी नहीं मानते—वह उनके अन्तरात्माका ही एक अंग है। फिर बुद्धिके साथ अनुभूति जटिल है—मिश्रित हुई है। बुद्धि हृदयको नियन्त्रित, शासित करना चाहती है किन्तु हृदयके भिन्न गम्भीरतम स्तरोंमें—भिन्न स्तरोंमें अनुभूति संचालित और संकीर्ण होती है, क्योंकि बुद्धि सदा ही नहीं पहुँच पाती। मनुष्यकी धर्म-बुद्धि, विवेक, संस्कारका अनुशासन—सबका इन चीजोंको हृदयका आसन मानकर चलता है तभी तो यह संगठित हो पाया है। दूसरी ओर अन्तर्गामी हृदय-कंदरामें होनेवाली अनुभूति सम्पूर्ण रूपसे स्वाभाविक मिल नहीं पाती। इसीसे तो मनुष्यके हृदयकी गति इतनी विचित्र है, और इस विचित्रताकी ही साहित्यिक भेद देखते हैं।

अतएव देखा जाता है कि हमारे मनमें दो स्तरोंकी चेतना है। एक अनुभूति हम लोगोंकी बुद्धि, संस्कार और अभ्यास पाई हुई है, और दूसरी गंभीरतर स्तरकी अनुभूतिकी प्रेरणा हृदयके अन्तरतम प्रदेशसे आती है। शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका श्रेष्ठ विकास इसी परस्परविरोधी शक्तिके संघर्षके चित्रणमें हुआ है। उनके अंकित नारी-चरित्रोंकी विशेषताको सभी लोग मानते हैं। इसका भी कारण है। पुरुष बुद्धिजीवी है। उसके निकट संस्कार प्रधानतः बुद्धिके मार्गसे आता है और साधारणतः वह संस्कार बुद्धिको लाँघकर हृदयके गंभीरतम प्रदेशमें आघात नहीं करता। पर नारीके निकट हृदयके आवेगका मूल्य बहुत अधिक है। वह समस्त अभिज्ञता और संस्कारको ही अनुभूतिसे रँग देती है। इसीसे स्वभाव-शक्ति उसके निकट आकस्मिक प्रकृतिकी विरोधी बाहरी शक्ति मात्र नहीं है, वह उसके भीतरकी ही चीज है। इसे भी उसने अपनाकर ग्रहण कर लिया है। जिस द्वंद्व या संघर्षकी बात ऊपर कही गई है वह विशेष करके नारीके मनमें ही दिखाई देता है। इसी कारण शरत्-साहित्यमें नारी-चरित्रका स्थान इतना ऊँचा है।

नारीके चरित्रमें प्रकृतिके साथ सचेतन संस्कारकी इस द्वन्द्वको ही शरत् चन्द्रने बड़ा करके देखा है। प्यार या प्रेमका आकर्षण चुम्बकके आकर्षणकी तरह प्रबल होता है, और उसको ठुकरानेकी शक्ति भी पर्वतसे निकले हुए प्रवाहकी तरह दुर्निवार है। इस द्वंद्वकी कोई मीमांसा नहीं है—इसमें कोई समाधान नहीं है। यही तो सबसे बड़ी ट्रेजडी है। हमारे देशके प्राचीन साहित्यमें ट्रेजडी नहीं है। योरपके साहित्यमें ट्रेजेडी मरणका बीज होकर आती है। डस्डिमोना कार्डेलिया, हैमलेट आदि न मरते तो कोई ट्रेजेडी न होती। किन्तु शरत्चन्द्रने जिस ट्रेजेडीका चित्र अंकित किया है उसमें मृत्युके लिए स्थान नहीं है। जिस मीमांसाहीन द्वन्द्वमें नारी जीवनका सारा ऐश्वर्य, सारी महिमा निःशेष नष्ट हो जाती है वही सबसे बड़ी ट्रेजडी है। मृत्युमें गौरव है, इसीसे ट्रेजेडीका प्राण जो विफलता या व्यर्थता है, वह मृत्युके गौरवसे ऐश्वर्यशालिनी हो जाती है। किन्तु ऐसी अवस्था आ सकती है, जब जीवनका सारा रस शुष्क हो जाता है, अथवा यह जो असम्भव है, मामसाफिका यह जो रूप है, उसका एक परमसुन्दर माधुर्य भी है। सावित्री अथवा राजलक्ष्मीके जीवनकी आलोचना करनेसे यही चीज विशेष रूपसे नजर आती है। सावित्री सतीशको प्यार करती थी, उसके भले-बुरेके लिए

अपनेको जिम्मेदार समझती थी। सौ बार अपमानकी चोट खाकर भी सतीशके पास आकर उपस्थित होती थी। सब बातोंमें वह उसका प्रियतम था, उसकी चिर-आकांक्षाका पात्र था। किन्तु इस आकांक्षाकी तृप्ति नहीं है, यह प्यास जीवनको सुखा डाले तो भी इसका बुझना संभव नहीं। जो आकर्षण सावित्रीको सतीशके पास खींच लाता था, वही आकर्षण दूर ठेल देता था। वाञ्छित धनको पाकर भी सफल न हो सकनेवाली यह आकांक्षा, पूर्ण होकर भी वैसे ही रिक्त रहनेवाली यह तृष्णा ही तो जीवनकी चरम वेदना है। सावित्री मानती थी कि जो देह कीचड़में सन गई है, उस देहसे आराध्य धनकी पूजा नहीं हो सकती। किन्तु हम जानते हैं कि उसकी देह भी उसके मनकी ही तरह पवित्र थी। उसे कोई कालिमा छू नहीं सकी थी और जिसको उसने योग्य जान अपना हृदय अर्पण कर दिया, जिसे अपना सर्व पूरी तौरसे सौंप दिया, उसे क्या देह ही अदेय है? मन ही यदि पवित्र हो, मन ही यदि निष्पाप हो! इसके सिवा जिस परिपूर्ण मिलनके लिए वह उन्मुख हुई थी, उसके आगे देह तो बहुत ही तुच्छ चीज है। असलमें सावित्रीकी दुर्बलता और ही जगह थी। सतीशके प्रति उसका हृदय और मन बहुत गहराईके साथ आकृष्ट हुआ था। यह प्रेमकी पुकार हृदयके गूढ़ प्रदेशसे उठी थी। किन्तु हिन्दू विधवाके जन्म-जन्मके संस्कार और नारीकी एकनिष्ठाकी शिक्षाने बारबार उसे रोककर कहा कि यह भूल है, यह अन्याय है। इसीसे सावित्री पास आकर भी हट गई है, आघात पाकर भी आगे बढ़ी है; आगे बढ़कर भी पीछे हट गई है। उसका मन निश्चय करके यह नहीं कह सका कि सतीश और उसके प्रेममें कल्याणके सिवा और कुछ नहीं है। केवल देहकी मलिनताका सहारा लेकर भीतरकी इतनी बड़ी आकांक्षा व्यर्थ नहीं हो सकती थी। किन्तु सावित्री यह नहीं जानती थी कि उसकी दुर्बलता कहाँ है — यह बात ही नहीं समझ पाई कि उसकी रग-रगमें, उसीके मनमें कितना बड़ा संस्कार, समाज-शक्तिका कितना प्रबल प्रभाव घर जमा बैठा था। इसीके कारण उसका जो प्रेम एक आदर्शके निकट परिपूर्ण सार्थकता नहीं पा सका, उसे इस अग्निपरीक्षाको देनेके लिए वह तैयार हो गई। समाजशक्तिके इस संवेदना-हीन अनुचित पीड़नसे उसके प्रेमका सारा गौरव व्यर्थ हो गया। समाजने बाहरसे उतार

आक्रमण नहीं किया उसने उसके मनके भीतर बैठकर उसकी बुद्धिको, उसके संस्कारको कैद करके बाँध लिया था।

यह द्वन्द्व—यह संघर्ष सबसे अधिक राजलक्ष्मीके चरित्रमें प्रकट हुआ है। राजलक्ष्मी हिन्दू घरकी विधवा है किन्तु उसका अगर कोई यथार्थ विवाह हुआ हो तो वह श्रीकान्तके ही साथ हुआ था। वह मिलन हुआ था एकान्तमें, उसे किसीने नहीं जाना। जब उसने पियारीबाई बनकर नया जीवन आरम्भ किया तब उसके हृदयमें एक गम्भीर प्रेमने इस तरह अपनी छाप डाली थी कि उसे मिटा देनेकी शक्ति उसमें नहीं थी। किन्तु जब उसी कामनाकी वस्तु [illegible] नसीब हुई तब राजलक्ष्मी समझ पाई कि उसके मनके भीतर ही और एक शक्ति संचित हो उठी है। उसका वेग भी कम प्रबल नहीं है। वह शक्ति पहले मातृत्वके गौरवमें दिखाई दी। अन्तमें वह उसके और श्रीकान्तके सम्बन्ध [illegible] दिखाई दी। बाहरकी शक्तिको मान लेनेपर भी शरत्चन्द्रने अपनी श्रेष्ठ रचनाओंमें उसे कभी ऊँचा स्थान नहीं दिया। “पृथ्वीपर केवल बाहरकी घटनाओंको ही पास-पास लम्बी-लम्बी रखकर कभी हृदयोंका पानी नहीं मापा जा सकता।” श्रीकान्तके द्वितीय पर्वके अन्तमें समाजकी प्रतिकूल दृष्टिके बीच श्रीकान्तने ‘राजलक्ष्मी’ को स्वीकार कर लिया। हमने सोचा कि सब बाधा दूर हो गई—अंकुश भी हट गया, समाजकी बाधाकी तुच्छता भी प्रमाणित हो गई। वे जब गंगामाटी गाँवमें गये तब हमने समझा कि अबकी सारी बाधाओंकी शृंखला टूट गई, अब परिपूर्ण मिलन आरम्भ होगा।

किन्तु राजलक्ष्मीके भीतर जो धर्मबुद्धि अनन्त सचेत हुई, उसे किसी तरह निरस्त नहीं किया जा सका—उसके हृदयसे नहीं निकाला जा सका। राजलक्ष्मीके मनमें दो विराट् शक्तियोंका मिलन और द्वन्द्व चलने लगा। हिन्दूके चिरकालसे चले आ रहे धर्म और विचारका जमा हुआ संस्कार—इन दोनोंको उसने श्रद्धा की है, हृदयसे प्यार किया है। रसज्ञ पंडित और हिन्दू पण्डितके निकट विवाहके मन्त्रोंका कोई अर्थ नहीं है। श्रीकान्तके निकट भी व निरर्थक हैं। किन्तु राजलक्ष्मीके निकट वे मन्त्र सावधान हैं—जीते-जागते हैं। इन मन्त्रोंकी सहाय वासे उसने श्रीकान्तको नहीं पाया, इसीसे वह अपने मनमें सोचती थी कि उसका सारा प्रेम व्यर्थ है, सारी आकांक्षा कलंकित है। इसीसे चलने लगा व्यापार

अन्न-पान और सुधाके लिए घास-पत्ता। इससे भी मनकी शान्ति नहीं मिली। कारण, इसमें आकांक्षाकी तृप्ति नहीं। इसीलिए अन्न-पान और भोग-विलासके योग्य तथा [illegible] दिनकी भारी व्यस्तताके बीच भी राजलक्ष्मी श्रीकान्तके लिए असल [illegible] उपाय किये बिना नहीं रह सकी। वह तीर्थयात्रा और तीर्थस्थानके लिए जाकर भी वहाँ समाधानका दर्शन नहीं कर सकी — उस श्रीकान्तका अन्तहीन उदास चेहरा ही देख पड़ा। श्रीकान्तके साथ उसका जो सम्बन्ध है वह हिन्दू-धर्म-संगत नहीं है। लेकिन तो भी राजलक्ष्मीने माना कि उसके ऊपर भी धर्म है, और श्रीकान्तको छोड़कर वह अगर पूजा-पाठ करे तो उसकी स्वर्गकी सीढ़ी उसकी आस न बढ़कर नीचेकी ओर ही जायगी। इन दोनों प्रतिकूल धारणाओंकी जो टक्कर है उसीको लेकर उसकी ट्रेजेडी है। इस ट्रेजेडीमें सान्त्वना नहीं है; किन्तु इसमें वेदनाका अनन्त उत्ताप, सारा गौरव और महिमा निःशेष खत्म हो जाती है। यह सब ही तो ट्रेजेडी है और इसके मूलमें है सामाजिक धार्मिक विचार बुद्धि-हीन निर्वासन। शरत्चन्द्रने सदा ही समाजके विरुद्ध यह प्रश्न उठाया है और अभयाने इस समाजको नहीं माना है। उसने कहा है कि उसका प्रेम अवैध हो सकता है किन्तु उसमें मिथ्याकी ग्लानि नहीं है। किरणमयीने समाजनीतिका उपहास किया है भगवान्‌के अस्तित्वको अस्वीकार किया है, उपेन्द्रके ऊपर प्रतिहिंसा चरितार्थ करनेके ढंगसे पकड़कर दिवाकरको [illegible] बनाया है। इससे उसका अपना जीवन मरुभूमिके समान उजाड़ ऊसर हो गया है, और यह सब हुआ है उस [illegible] कारण जो [illegible] दिया था और उपेन्द्र उस [illegible] बिना [illegible] उपेन्द्रके मनमें जगा लिया था।

४

शरत्चन्द्रके मनमें जो प्रश्न उठा अनजान [illegible] दिग्दर्शन [illegible] किया, उस प्रश्नकी [illegible] और मीमांसा नहीं हुई। मनुष्य [illegible] था [illegible] है, वह उसकी [illegible] है। यह [illegible] ही [illegible] है, अब न [illegible] है [illegible]। वह [illegible] नहीं [illegible]

आक्रमण नहीं किया उसने उसके मनके भीतर बैठकर उसकी बुद्धिको, उसके संस्कारको कड़ा करके बाँध दिया था।

यह द्वन्द्व—यह संघर्ष सबसे अधिक राजलक्ष्मीके चरित्रमें प्रकट हुआ है। राजलक्ष्मी हिन्दू घरकी विधवा है किन्तु उसका अगर कोई यथार्थ विवाह हुआ हो तो वह श्रीकान्तके ही साथ हुआ था। वह मिलन हुआ था एकान्तमें उसे किसीने नहीं जाना। जब उसने पियारीबाई बनकर नया जीवन आरम्भ किया, तब उसके हृदयमें एक गम्भीर प्रेमने इस तरह अपनी छाप डाली थी कि उसे मिटा देनेकी शक्ति उसमें नहीं थी। किन्तु जब उसी कामनाकी वस्तु श्रीकान्तसे भेंट नसीब हुई तब राजलक्ष्मी समझ पाई कि उसके मनके भीतर ही और एक शक्ति संचित हो उठी है। उसका वेग भी कम प्रबल नहीं है। वह शक्ति पहले मातृत्वके गौरवमें विस्तार थी। अन्तको वह उसके और श्रीकान्तके समाजसे डरनेमें दिखाई दी। बाहरकी शक्तिको मान लेनेपर भी शरत्चन्द्रने अपनी श्रेष्ठ रचनाओंमें उसे कभी ऊँचा स्थान नहीं दिया। 'पृथ्वीपर केवल बाहरकी घटनाओंको ही पास-पास लम्बी-लम्बी रखकर सभी हृदयोंका पानी नहीं मापा जा सकता।" श्रीकान्तके द्वितीय पर्वके अन्तमें समाजको प्रतिकूल दृष्टिके बीच श्रीकान्तने 'राजलक्ष्मी' को स्वीकार कर लिया। हमने सोचा कि अब बाधा दूर हो गई—शत्रु भी हट गया, समाजकी बाधाकी तुच्छता भी प्रमाणित हो गई। वे जब गंगामाटी गाँवमें गये, तब हमने समझा कि अबकी सारी बाधाओंकी शृंखला टूट गई, अब परिपूर्ण मिलन आरम्भ होगा।

किन्तु राजलक्ष्मीके भीतर जो धर्मबुद्धि अत्यन्त सचेत हुई, उसे किसी तरह निरस्त नहीं किया जा सका—उसके हृदयसे नहीं निकाला जा सका। राजलक्ष्मीके मनमें दो विरुद्ध शक्तियोंका मिलन और टक्कर चलने लगी। हिन्दूके चिरकालसे चले आ रहे धर्म और विचारका जमा हुआ संस्कार—इन दोनोंको उसने श्रद्धा की है हृदयसे प्यार किया है। रत्नाकर पंडित और शिबू पण्डितके निकट विवाहके मन्त्रोंका कोई अर्थ नहीं है। श्रीकान्तके निकट भी वे निर्जीव हैं। किन्तु राजलक्ष्मीके निकट वे मन्त्र प्राणवान हैं—जीते-जागते हैं। इन मन्त्रोंकी सहायतासे उसने श्रीकान्तको नहीं पाया, इसीसे वह अपने मनमें सोचती थी कि उसका सारा प्रेम व्यर्थ है सारी आकांक्षा कलंकित है। इसीसे चलने लगे उपवास,

जप-तपस्या और पुण्यकर्मके निकट आत्म-समर्पण। इससे भी मनको शान्ति नहीं मिली। कारण, इससे आत्माकी तृप्ति नहीं। इसीलिए जप-तपस्या और मोक्ष-निमज्जनके लोलुप तथा कामके दिनकी सारी व्यस्तताके बीच भी राजलक्ष्मी श्रीकान्तके लिए अपने हाथसे रसोईके सामानकी सामग्री तैयार किए बिना नहीं रह सकी। वह तीर्थयात्रा और तीर्थदर्शनके लिए जाकर भी वहाँ भगवानके दर्शन नहीं कर सकी — उसे श्रीकान्तका अन्नहीन उदास चेहरा ही देख पड़ा। श्रीकान्तके साथ उसका जो सम्बन्ध है वह हिन्दूधर्म सम्मत नहीं है। लेकिन तो भी राजलक्ष्मीने समझा कि इसके ऊपर भी धर्म है और श्रीकान्तको छोड़कर वह अगर पूजा-पाठ करे, तो उसकी रूपकी सीढ़ी ऊपरकी ओर न जाकर नीचेकी ओर ही जायगी। इन दोनों प्रतिकूल धारणाओंकी जो टक्कर है, उसीको लेकर उसकी ट्रेजेडी है। इस ट्रेजेडीमें मरण नहीं है; किन्तु इसमें जीवनका समस्त ऐश्वर्य सारा गौरव और महिमा निःशेष क्षय हो जाती है। यह क्षय ही तो ट्रेजेडी है और इसके मूलमें है सामाजिक धर्मका विचार बुद्धि-हीन निपीड़न। राजलक्ष्मीने स्वयं ही समाजके विरुद्ध यह प्रश्न उठाया है और अभयाने इस समाजको नहीं माना है। उसने कहा है कि उसका प्रेम अवैध हो सकता है; किन्तु उसमें मिथ्याकी ग्लानि नहीं है। किरणमयीने समाजनीतिका उपहास किया है भगवान्के अस्तित्वको अस्वीकार किया है, उपेन्द्रके ऊपर प्रतिहिंसा चरितार्थ करनेके फेरमें पड़कर दिवाकरको पथभ्रष्ट कराया है। इससे उसका अपना जीवन मरुभूमिके समान उजाड़ ऊसर हो गया है, और यह सब हुआ है उस पतिके कारण जो समाजने उसे दिया था और उपेन्द्रके उस विवेकके कारण जिसे समाजने उपेन्द्रके मनमें बसा दिया था।

४

राजलक्ष्मीके मनमें जो प्रश्न उठा अभयाने जिसे प्रमाणित किया किरणमयीने जिसका उपहास किया, उस प्रश्नकी सच्ची अथवा यथार्थ कोई मीमांसा नहीं हुई। मनुष्यके हृदयका जो अन्तरतम आत्मा है वह उसकी अपनी खास व्यक्तिगत वस्तु है। वह बिल्कुल ही अकेली है, अथ च समाजका नियम है सम्मिलित गोष्ठीके लिए। वह व्यक्तिविशेषकी खबर नहीं रखता, वह

समाजके साम्यको बनाये रखता है। जो नियम समष्टिके लिए निर्धारित हुए हैं, वे स्थूल हैं। मानव मनकी सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म आकांक्षा और प्रकृतिके साथ वह कैसे मेल खा सकेंगे ! अन्नदा दीदी, अभया, राजलक्ष्मी, इन चार महिलाओंके साथ श्रीकान्तका परिचय हुआ था। समाजके अनुभूतिहीन स्थूल नियमके साथ इन सभीका संघर्ष हुआ है। किन्तु इनमेंसे हरएकका मन इतना स्वाधीन है, इतना एकान्त है कि ऐसा कोई आईन ही नहीं हो सकता, जिसके द्वारा इन सभीके जीवनका माधुर्य और गौरव अक्षुण्ण रह सकता। अन्नदा दीदी जो कर सकी थी, वह अभयाके द्वारा संभव न होता। निरु दीदी जिस प्रलोभनमें पड़ गई थी, राजलक्ष्मी उसकी अवहेला करती। समाज और व्यक्तिके मूलमें ही इतनी गलती है कि इसके लिए किसी व्यक्तिविशेषको जिम्मेदार ठहरानेसे काम नहीं चलेगा। इसके मूलमें है एक समवेत शक्ति, जिसका कोई रूप नहीं है, जिसमें विचार-बुद्धि नहीं है, समवेदना नहीं है। और यह जो गहरी उपलब्धिकी असमता है, इसके लिए केवल समाजको दोष देनेसे भी नहीं चलेगा। मनुष्यकी सचेतन बुद्धि हृदयकी भली-बुरीका पता नहीं रख सकती। देवदासने जब पार्वतीको लौटा दिया था और कहा था कि यह पिता-माताका अपमान नहीं हो सकता तब यह नहीं जानता था कि उसके चेतनाहीन अंतःकरणमें पार्वतीने जो आग लगा दी है, वह तिल-तिल करके उसे जलायेगी। सौदामिनी जब पतिके लिए अपनी ससुराल छोड़ी-भागी थी, तब वह नहीं जानती थी कि नरेन्द्र उसके मनके एक एकान्त कोनेमें बैठा हँस रहा है। नरेन्द्र जब उसे ले गया तब भी वह नहीं समझ सकी कि पति और संसारको वह कितना प्यार करती है। कुसुमने जब हिन्दूके संस्कार, शिक्षा और जो आत्मीयों कर् संयमकी मजबूतीसे पकड़े रहकर वृन्दावनका परित्याग किया था, तब जानती थी कि उसके मनमें मातृत्व और नारीत्वकी आकांक्षा कितनी फिर जब उसने वृन्दावनकी माताके पास अपना बच्चा भेज दिया था पालने-पोसने लगी तब वह समझ नहीं सकी कि उसका पहले कितना बड़ा है।

अपने बारेमें यह जो अनभिज्ञता है, वो सबसे अधिक अवश्य प्रकट हुई है। बालकों हरएकके चरित्रमें एक दुर्लभ रहस्य छिपा

इसीसे हमारे प्रत्येक सामाजिक सम्बन्धमें अवमानका बीज छिपा हुआ है, इसीसे हमारे समस्त प्रेम-मिलनमें व्यर्थताका सुर बज उठता है। मनुष्य कभी अपनेको सम्पूर्ण दान नहीं कर सकता। कारण, वह तो अपनेको पूर्णरूपसे पहचान ही नहीं पाता। उसकी आत्मा स्थूल इंद्रियग्राह्य पदार्थ नहीं है कि उसे हाथ पकड़कर दान करे। सभी प्रेमोंके भीतर इस ट्रेजेडीके बीज निहित रहते हैं। अचला महिमको सम्पूर्ण मनसे प्यार करती थी और सुरेशको सम्पूर्ण मनसे घृणा करनेकी चेष्टा करती थी। किन्तु क्रमशः महिमकी चुप्पी और आवेगका अभाव लक्ष्य करके और मृणालके साथ उसके गोपन सम्बन्धका सन्देह करके महिमके प्रति उसके मनमें गहरी वितृष्णा उत्पन्न हुई और सुरेशके प्रति अनजानमें ही एक आकर्षण पैदा हो गया। किन्तु इसे परिपूर्ण प्रेम नहीं कहा जा सकता। अचला जब अपने बीमार पतिको लेकर हवा बदलनेके लिए बाहर जा रही थी तब सुरेशने जो कुछ किया वह उसकी अत्यन्त विश्वासघातकता और पाशव नीचताका परिचय देनेवाला है—इसमें सन्देह नहीं किन्तु यह जो विश्वास-घातकता है उसके मूलमें एक दुर्दमनीय प्रेमकी चाह है। दुर्निवार वन्या प्रवाह जैसे पत्थरके बाँधपर पछाड़ खाकर सिर फोड़ता है वैसे ही यह प्रेम अचलाके ऊपर आकर टूट पड़ा। अचलाका हृदय तो पत्थर नहीं है। वह इस दुर्दमनीय प्रेमका प्रतिदान नहीं दे सकती थी किन्तु इसका मर्म वह समझ गई थी। इसके ऊपर उसे अपार करुणा थी। इसी कारण सुरेशके विरुद्ध उसने किसी दिन विद्रोह नहीं किया—उसे सहन ही किया है। उसके अनजानमें उसके मनमें सुरेशके प्रति एक गहरी सहानुभूति छिपे छिपे रह रही थी—विवाहके पहले ही वह जाग उठी। जीवित रहते पतिके लिए मिथ्या गौरवका दावा सुरेशने किया था उसके विरुद्ध अचलाने एक शब्द भी नहीं कहा किन्तु सुरेशकी मृत्युके बाद उसने पत्नीका दावा खण्डन करके उसके अपमानका बोझा नहीं बढ़ाया। महिमको उसने श्रद्धा की है, प्यार किया है। सुरेशपर उसने श्रद्धा नहीं की उसे वह सम्पूर्ण हृदयसे प्यार भी नहीं कर सकी। किन्तु उसके मनको वह समझ पाती थी, उसके प्रति उसकी गहरी सहानुभूति थी साथ ही एक अस्पष्ट आकर्षण भी था। यह जो उसकी भीतर छिपी हुई सहानुभूति थी, वह कितनी स्पृहाहीन, कितनी छिपी हुई कितनी गहरी थी, यह वह आप ही नहीं समझती थी, और यह जो छिपी हुई स्वार्थहीन प्रीति थी, वही उसके जीवनका प्रधान दुर्दैव या दुर्भाग्य था। इसी

समाजके साम्यको बनाये रखता है। जो नियम समष्टिके लिए निर्धारित हुए हैं, वे स्थूल हैं। मानव मनकी सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म आकांक्षा और प्रवृत्तिके साथ वह कैसे मेल खा सकेंगे? अन्नदा दीदी, अभया, राजलक्ष्मी, इन चार महिलाओंके साथ श्रीकान्तका परिचय हुआ था। समाजके अनुभूतिविहीन स्थूल नियमके साथ इन सबीका संघर्ष हुआ है। किन्तु इनमेंसे हरएकका मन इतना स्वाधीन है, इतना एकाकी है कि ऐसा कोई कानून ही नहीं हो सकता जिसके द्वारा इन सबके जीवनका माधुर्य और गौरव अक्षुण्ण रह सकता। अन्नदा दीदी जो कर सकी थी, वह अभयाके द्वारा संभव न होता फिर दीदी जिस प्रलोभनमें पड़ गई थी, राजलक्ष्मी उसकी उपेक्षा करती। समाज और व्यक्तिके मूलमें ही इतनी गलती है कि इसके लिए किसी व्यक्तिविशेषको जिम्मेवार ठहरानेसे काम नहीं चलेगा। इसके मूलमें है एक अमोघ शक्ति, जिसका कोई रूप नहीं है जिसमें विचार-बुद्धि नहीं है समवेदना नहीं है। और वह जो गहरी उपलब्धिकी अक्षमता है, इसके लिए केवल समाजको दोष देनेसे भी नहीं चलेगा। मनुष्यकी सचेतन बुद्धि हृदयकी भली-बुरीका पता नहीं रख सकती। देवदासने जब पार्वतीको छोड़ दिया था और कहा था कि वह पिता-माताका अवाध्य नहीं हो सकता, तब वह नहीं जानता था कि उसके संज्ञाहीन अंतःकरणमें पार्वतीने जो आग लगा दी है, वह तिलतिल करके उसे जलायेगी। सौदामिनी जब पतिके लिए अपनी सासके लड़ी-झगड़ी थी, तब वह नहीं जानती थी कि नरेन्द्र उसके मनके एक एकान्त कोनेमें बैठा हँस रहा है। नरेन्द्र जब उसे ले गया तब भी वह नहीं समझ सकी कि पति और संसारको वह कितना प्यार करती है। कुसुमने जब हिन्दूके संस्कार, शिक्षा और बड़े आदमीकी स्मृतियोंके संस्पर्शको मजबूतीसे पकड़े रहकर वृन्दावनका परित्याग किया था, तब वह नहीं जानती थी कि उसके मनमें मातृत्व और नारीत्वकी आकांक्षा कितनी तीव्र है। फिर जब उसने वृन्दावनकी माताके पास अपना बच्चा छोड़ दिया और चरणको पालने-पोसने लगी तब वह समझ नहीं सकी कि उसका पहलेका संस्कार कितना दृढ़ है।

अपने बारेमें यह जो अनभिज्ञता है, वो सबसे अधिक अभयाके चरित्रमें प्रकट हुई है। वास्तवमें हरएकके चरित्रमें एक दुर्भेद्य रहस्य छिपा हुआ है।

इसीसे हमारे प्रत्येक सामाजिक सम्बन्धमें अपमानका बीज छिपा हुआ है इसीसे हमारे समस्त प्रेम-मिलनमें व्यथाका सुर बज उठता है। मनुष्य कभी अपनेको सम्पूर्ण दान नहीं कर सकता। कारण, वह तो अपनेको पूर्णरूपसे पहचान ही नहीं पाता। उसकी आत्मा स्थूल इंद्रियग्राह्य पदार्थ नहीं है कि उसे हाथ पकड़कर दान करे। सभी प्रेमके भीतर इस वेदनाके बीज निहित रहते हैं। अचला महिमको सम्पूर्ण मनसे प्यार करती थी और सुरेशको सम्पूर्ण मनसे घृणा करनेकी चेष्टा करती थी। किन्तु क्रमशः महिमकी चुप्पी और आवेगका अभाव लक्ष्य करके और मृणालके साथ उसके गोपन सम्बन्धका सन्देह करके महिमके प्रति उसके मनमें प्रबल वितृष्णा उत्पन्न हुई और सुरेशके प्रति अनजानमें ही एक आकर्षण पैदा हो गया। किन्तु इसे परिपूर्ण प्रेम नहीं कहा जा सकता। अचला जब अपने बीमार पतिको लेकर हवा बदलनेके लिए बाहर जा रही थी तब सुरेशने जो कुछ किया वह उसकी अत्यन्त विश्वासघातकता और पाशव नीचताका परिचय देनेवाला है—इसमें सन्देह नहीं किन्तु वह जो विश्वास-घातकता है उसके मूलमें एक दुर्दमनीय प्रेमकी धार है। दुर्निवार बलका प्रवाह जैसे पत्थरके पाँवपर पछाड़ खाकर सिर धोता है वैसे ही वह प्रेम अवरोधके ऊपर आकर फूट पड़ा। अचलाका हृदय तो पत्थर नहीं है। वह इस दुर्दमनीय प्रेमका प्रतिदान नहीं दे सकती थी किन्तु इसको वह समझ गई थी। इसके ऊपर उसे अपार करुणा थी। इसी कारण सुरेशके विरुद्ध उसने किसी दिन विरोध नहीं किया—उसे सहन ही किया है। उसके अनजानमें उसके मनमें सुरेशके प्रति एक गहरी सहानुभूति छिपे छिपे पल रही थी—विवाहके पहले ही वह जाग उठी। जीवित रहते पतिके बिना मिथ्या गौरवका दावा सुरेशने किया था उसके विरुद्ध अचलाने एक शब्द भी नहीं कहा किन्तु सुरेशकी मृत्युके बाद उसने शरीरका दावा करके उसके मर्मस्थलका पता नहीं लगाया। महिमको उसने सहा भी है प्यार किया है। सुरेशपर उसकी श्रद्धा नहीं थी, उसे वह सम्पूर्ण हृदयसे प्यार भी नहीं कर सकी। किन्तु उसके मनको वह समझ पाती थी उसके प्रति उसकी गहरी सहानुभूति थी साथ ही एक अव्यक्त आकर्षण भी था। यह जो उसकी भीतर छिपी हुई सहानुभूति थी, वह कितनी स्पर्शहीन कितनी छिपी हुई कितनी गहरी थी यह वह आप ही नहीं समझती थी, और यह जो छिपी हुई संशयहीन प्रीति थी, वही उसके जीवनका प्रधान दुर्दैव या दुर्भाग्य था। इसी

लिए उसने पतिको पाकर भी गँवा दिया और उसे गँवाकर फिर नहीं पाया। यही जीवनकी गहरीसे गहरी ट्रेजेडी है। कारण, इसके वरण करनेकी, ध्वंस करनेकी शक्ति हृदयके भीतरसे आती है। अथ च इसमें समाजके विरुद्ध एक छिपा हुआ विद्रोह मौजूद है। यह ट्रेजेडी दिखा देती है कि समाजकी नीति कितनी स्थूल है, मानव-मनका मधुर-सुर विचार करनेका उसका अधिकार कितना कम है। अचलाको क्या हम असती या कुलटा कहकर गाली देंगे? अथ च उसने तो कभी अपने मनके धर्मके साथ प्रवंचना नहीं की। यह जो प्रेमकी आकांक्षा है, जिसकी गति इतनी विसर्पित है, जिसकी जड़ हृदयके अत्यन्त गुप्त प्रदेशमें है, उसके सम्बन्धमें कोई स्थूल आईन लागू नहीं होता। इसे समझना होगा, इसे सहानुभूति देनी होगी इसे स्वीकार करना होगा। शायद यह कभी किसी दिन समाजशक्तिके वशीभूत न होगी, शायद कोई भी आईन इसकी अपनी स्वास गतिको नियन्त्रित न कर सकेगा। किन्तु इस दुर्ज्ञेय रहस्यको वाद देकर न समझकर, जो समाजशक्ति संगठित हुई है, उसका यथार्थ मूल्य कितना है!

३—शरत्-साहित्यमें नारी

रमणीका प्रेम

शरत्‌चन्द्रने मनुष्यके मनके संघर्ष और द्वन्द्वका चित्र खींचा है। वर्तमान युगके साहित्यका उपजीव्य समाजका प्रभाव है। किन्तु शरत्-साहित्यकी विशेषता यह है कि उसमें समाजशक्तिका प्रभाव भी बाहरी शक्तिके रूपमें नहीं दिखाई देता। वह भी उसके मनमें ही अपना निवासस्थान बनाये हुए है। मनुष्यके मनमें प्रेमकी आकांक्षा उसकी अपनी खास सम्पत्ति है और धर्मबुद्धिकी जड़ उसके संस्कारमें है। नारीके चित्तमें इन दोनों शक्तियोंका जो निरन्तर संघर्ष चलता है—टक्कर होती रहती है, उसीको शरत्‌चन्द्रने स्पष्ट करके दिखाया है। मेघकी आवरणको फोड़कर बाहर प्रकट होनेके कारण ही तो बिजली इतनी चमकती है, पत्थरोंके रास्तेको तोड़कर आना होता है, इसीसे तो सरितामें इतना वेग होता है। इसीसे मानव-हृदयका माधुर्य उसी जगह अधिक प्रकट हुआ है जहाँ उसे प्रबल प्रतिकूल शक्तिके विरुद्ध संग्राम करना पड़ा है। यह प्रतिकूल शक्ति जितनी अन्तर्निहित होगी—भीतरकी गहराईमें होगी, उतनी ही उसकी गति दुर्भेद्य और रहस्यसे भरी होगी, उसकी क्षमता उतनी ही असीम होगी।

संस्कारकी शक्ति दो तरफसे आती है। मनुष्य उसे समाज सभ्यता और धर्मसे प्राप्त करता है किन्तु वह आश्रय ग्रहण करती है उसके मनमें। और प्रेम-स्वभावके साथ इसका अधिक संघर्ष होता है नारीके हृदयमें। पुरुषकी प्रणयकी आकांक्षा उसकी बहुत-सी प्रवृत्तियोंमेंसे एक है। पुरुषके अधिकांश कर्म बाहरके जगत्‌से सम्बन्ध रखते हैं। बाहर वह धन चाहता है, क्षमता

चाहता है। उसकी राजनीति, उसकी अर्थनीतिसे उसके प्रेम-प्यासका कोई लगाव नहीं रहता। किन्तु नारीके पक्षमें यह बात लागू नहीं होती। उसकी सारी चेष्टाओंके मूलमें प्रेम और स्नेह मौजूद है। राजलक्ष्मीकी ममताकी लालसा श्रीकान्तको पाकर चरितार्थ हो गई थी, और शासिनीकी अधिकारकी भूख सतीश तक ही सीमित थी। किन्तु पुरुषके लिए यह बात सच नहीं है। इसीसे गंगामाटी प्राममें श्रीकान्तके दिन नहीं कटते थे। राजलक्ष्मीने खुद ही कहा है—'गंगामाटीके अन्धकूपमें नारीका काम चलता है, मर्द-मानुषका नहीं चलता। यहाँका यह कामकाजसे खाली उद्देश्यहीन जीवन तो तुम्हारे लिए आत्महत्याके समान है।'" यहाँ प्रश्न होगा कि आजकलकी नारी तो सभी क्षेत्रोंमें पुरुषके समान अधिकारका दावा करती है। किन्तु यह अत्यन्त आधुनिक समयकी बात है। शरत्-साहित्यमें इस नए युगकी नारीका परिचय नहीं है। उनके साहित्यमें नारी केवल स्नेह और ममता जानती है और उनके उपन्यासोंका क्षेत्र राजनीतिका क्षेत्र भी नहीं है। वह है माया-ममताका क्षेत्र और उसमें नारीका अखण्ड कर्तृत्व या प्रभुत्व है। इसीसे श्रीकान्त-राजलक्ष्मीके संबंधमें छाया और राजलक्ष्मीकी ओरसे आया है। श्रीकान्त उस व्यापक प्रेम-लोकको छोड़ नहीं सका और मायाके खिंचावको भी रोक नहीं पाया। सतीश था बड़ा शक्तिशाली पुरुष किन्तु शासिनीको देखते ही उसकी सारी शक्ति गायब हो जाती थी। मधुनाथ कुशारी तर्कालंकार अध्यापक पण्डित आदमी थे किन्तु अपनी स्त्री सुनेत्राके निकट वह नगण्य थे। गिरीशका छोटा भाई रमेश कितना निकम्मा है उसकी स्त्री शैलजा उतनी ही होशियार और निपुण है। प्रायः सभी उपन्यासोंका यही ढंग है। अवश्य 'ग्रामीण समाज' का रमेश एक पुरुष-सिंह है; किन्तु उसका अलग व्यक्तित्व ऐसी जगह है, जहाँ रमाके साथ उसका संघर्ष कम है। सामाजिक मामलेमें जहाँ इनका संघर्ष हुआ है, वहाँ रमेश रमासे हारा है। शरत्-साहित्यमें केवल एक पुरुष है, जिसके मनमें रमणी अपनी प्रधानताकी छाप नहीं छोड़ पाई। वह है 'शेष प्रश्न' उपन्यासका राजेन्द्र। राजेन्द्र पार किसकी है। प्रश्न करनेवाले आत्मीय आदर्शोंको लेकर उसका कार-बार है। इसीलिए कुसुमायुध कामदेवका वाण उसपर संभव नहीं है। इसके सिवा प्रायः अन्य सभी ग्रंथोंमें शरत्बाबूने प्रेमके चित्र खींचे हैं, और उनमें

विशेषकरके रमणीका मन विभिन्न हुआ है उसकी सारी शक्ति और सारी दुर्बलताके साथ।

नारीके मनको उन्होंने एक रूपके बीच देखा है जहाँ उसकी स्वतः उठी हुई भावधाराकी धारा विराग वैराग्यकी पवनकी तीव्रतम बाधाको प्राप्त हुई है। इस प्रकारके उपन्यासका प्रधान दोष यह है कि अक्सर अनेक मिथ्या भावावेगको स्वानुभवकी भाषा मान लेनेका भ्रम होता है, और उससे हृदयका आवेग अनावश्यक रूपसे उच्छ्वसित हो उठता है। अनुभूति मनुष्यकी बड़ी भारी सम्पत्ति है, किन्तु यदि वह साधारण कारणसे ही उमड़ पड़े तो उसका अविश्वसनीय होना ही प्रमाणित होता है। आँसुओंकी उपमा मोतियोंसे दी गई है किन्तु साधारण किरकिरी पड़ने या धुआँ लगनेसे ही जो आँसू बरसते हैं वे नकली या झूठे मोतियोंके समान ही मूल्यहीन होते हैं। हरएक बहुमूल्य वस्तु दुर्लभ होती है, यह बात अर्थनीतिके जाननेवाले स्वीकार करेंगे और साहित्यमें भी यही बात लागू होती है। समुद्रके अतल जलमें गोता लगानेपर ही तो असली मोती मिलेंगे। गोता लगाये बिना ही जो मोती मिल जाते हैं, वे नकली होते हैं। बुद्धि और संस्कारके साथ हृदयके आवेगका जो द्वन्द्व होता है उसीका शरत् चन्द्रने आश्रय लिया है। लेकिन बहुत जगहोंपर भावावेगकी मात्रा स्वयं अधिक हुई है और उसी जगह कलात्मक रूपसे हमने सेंटिमेण्टल साहित्य पाया है।

यही देखिये 'स्वामी' (उपन्यास)। बचपनमें सौदामिनी और नरेन्द्रनाथके बीच प्रेम उत्पन्न हुआ था। किन्तु उस प्रेममें कोई गहराई थी, ऐसा नहीं जान पड़ता। एक दिन सौदामिनी बागमें फूल चुनने गई थी और उस समय नरेन्द्रनाथ कोई एक दरख्त पर बैठा फल खा रहा था। यह देवदासिनी और ब्रजनाथके प्रेम जैसा नहीं है, पार्वती और देवदासके प्रेमकी तरह भी नहीं है। स्वामीके बाद सौदामिनीने स्वयं ही कहा है—"पहले जो मैंने सोचा था कि नरेन्द्रके बगलमें और किसीको पर क्याना पड़ा तो उसी दिन मेरा हृदय फट जायगा, तो देखा कि भूल थी। फटने-चिरकनेकी तो कोई बात ही नहीं नजर आया।" ससुरालमें आकर पतिको पद देकर वह अपनी सौतेली सासके साथ रही थी कि उसी समय वहाँ नरेन्द्रनाथ आया। उसने मुँहसे कहा कि वह शिकार करने आया है किन्तु उसका यह आना सौदामिनीके शिकारके लिए ही था,

पक्षियोंके शिकारके लिए नहीं। चटाई बीनकर कमाये हुएकी इस निर्लज्जतासे सौदामिनीका मन उसके प्रति गहरी नफरतसे भर गया। किन्तु अन्तको वह नरेन्द्रनाथके साथ ही भाग गई। उसकी यह दुर्बुद्धि क्यों हुई, यह कहना कठिन है। शायद उसकी सौतकी सासने उसके पतिके ऊपर जो अन्याय किया था, उसे देखकर शिक्षित रमणीका मन गहरे विरोधके भावसे भर उठा और वह इसी कारण इस तरह भाग चली हुई। किन्तु पतिके लिए उसकी स्नेहहीन विमाताके साथ झगड़ा करके पतिके त्यागका यही यथेष्ट कारण नहीं हो सकता। बल्कि स्वाभाविक तो यह है कि यह अविचार-अन्याय उसे और भी अधिक पतिकी ओर आकृष्ट कर दे। सौदामिनीके हृदयमें नरेन्द्रके प्रति यथार्थ आसक्ति बहुत ही कम थी उसकी सारी प्रेरणा ही एकदम बाहरसे आई थी। बाहरी शक्तिके साथ इनको लेकर साहित्यकी सृष्टि न हो सके, यह बात नहीं है। ग्रीक ट्रेजेडी दैवके निर्मम पीड़नकी कहानी है। शेक्सपियरके नाटकोंमें भी दैवकी बात न हो, ऐसा नहीं है। किन्तु शरत्चन्द्रकी प्रतिभाने इसका सहारा नहीं लिया। उन्होंने बाहरकी एक शक्तिको ही बड़ा करके देखा है, वह है समाजका नीति-धर्म और उस नैतिक आदर्शोंने भी नारी-चित्तके संस्कारके भीतरसे रस ग्रहण किया है। सौदामिनीके मनमें पतिके प्रति श्रद्धा और भक्ति यथेष्ट थी और नरेन्द्रके प्रति आकर्षण भी बहुत कम था। पतिके आश्रमको छोड़कर जानेका कोई उपयुक्त कारण उसके मनके भीतर न था। इसीसे शरत्चन्द्रने बाहरसे कुछ कारणोंकी सृष्टि की है। जैसे सौतकी सासका संदेह, छिपकर आड़से देखना और बातें सुनना उसके पतिके साथ दुर्व्यवहार, उन लोगोंका पर पत्र जानेकी खबर उसके पतिको ठीक समय पर न देना। किन्तु मनके भीतर जिसकी जड़ नहीं है, उसपर बाहरसे पानी सींचकर क्या काम होगा! उपसंहारमें सौदामिनीने कहा है—

इतना रोना जान पड़ता है, जीवनमें कभी नहीं रोई।" इस उपन्यासमें रोना-धोना बहुत है, पर यथार्थ वेदना बहुत कम है। इसीसे कथा या शिल्पकी दृष्टिसे भी यह निकृष्ट कोटिका उपन्यास है। इसमें उच्छ्वास है, किन्तु गहरी अनुभूतिका कोई चिह्न नहीं है।

'ग्रामीण समाज' में भी बाहरकी शक्तिको ही प्रधानता दी गई है। रमा रमेशको बचपनमें प्यार करती थी। उनमें ब्याह होनेकी बात भी हुई थी। इसके बाद रमेश गाँव छोड़कर शिक्षा-लाभके लिए बाहर चला गया और रमा

ब्याहके छः महीने बाद ही विधवा हो गई। शिक्षा समाप्त करके पिताकी मृत्युके बाद गाँव लौटकर रमेशने देखा कि जमींदारीको लेकर रमा और उसके मृत पिताके बीच बहुत-से मुकदमे हो गये हैं। दोनों घरोंमें मेल-जोल बिलकुल ही नहीं रह गया है। गाँवमें आकर रमेशने ग्रामसमाजके अनेक संकीर्ण विचारों और दलबंदीके बीच देशसेवामें अपनेको लगा दिया और इस दलबंदीके बीच उसके साथ सबसे अधिक शत्रुता जिन्होंने की, उनमें रमा प्रधान थी। अथ च रमा उससे प्रेम भी बहुत करती थी। यही है रमाके जीवनकी सबसे बड़ी ट्रैजेडी कि प्रतिकूल अवस्थाकी ताड़नासे उसने अपने एकान्त प्रेमपात्रके साथ शत्रुता की है। रमेशके गाँवमें आकर पहुँचते-न-पहुँचते ही उसने उसके विरुद्ध आचरण किया है। रमेशके पिताके श्राद्धका उल्लेख करके उसने पहले ही बेणी घोषालसे कहा है—"मैं तारिणी घोषालके घर जाऊँगी?" इसके कुछ दिन बाद तालाबकी मछलियोंके हिस्सा-बाँटको लेकर उसने असाधारणतासे अधिक रूखाईके साथ रमेशके नौकरको दुत्कार दिया है। अथ च इसके बाद ही उसने अपने भाई यतीन्द्रसे जैसे स्नेहके साथ रमेशके संबंधमें पूछताछ की, उससे समझमें आ गया कि वह रमेशको कितना प्यार करती है। अतएव रमेशके प्रति इस असाधारण कठोर आचरणका एक कारण निश्चय ही यह है कि इस कठिन बन्धनसे वह अपने हृदयकी गहरी प्रीतिको छिपा रखना चाहती है। इसके साथ थी मौसीकी शक्ति, मधु मुखर्जीकी कन्या होनेका गौरव और तारिणी घोषालके प्रति शत्रुता। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है—'उसके दुःख समयमें रमेश जब उसकी सम्पत्ति ग्रहण करनेमें असहमति प्रकट करता तब वह कह उठती कि "मुखर्जी-वंशका दान ग्रहण करनेमें घोषाल-वंशको लज्जा नहीं होती।" रमेशके साथ सबसे बड़ा शत्रुताका काम उसने रमेशके विरुद्ध गवाही देकर किया था और यह काम उसने समाजके दबावके भयसे ही किया था। अतएव उसके जीवनकी गहरी ट्रैजेडीके मूलमें बाहरकी समाज-शक्ति और दलबंदीका दबाव था। किन्तु इन दोनों बातोंका असल जोर कितना थोड़ा था! और यह जो मुखर्जी-वंशका गौरव है सो रमाकी मौसीके लिए ही शोभता है, रमा-जैसी स्त्रीके लिए कितना तुच्छ है! इसके सिवा जिस समाजशक्तिके भयसे उसने रमेशका अपमान किया, जेल भेजा, उसीका मूल्य कितना है? उसने आप ही अपनेसे प्रश्न किया है—"*जिस समाजके भयसे मैं इतना बड़ा*

गर्वित क्षमा कर बैठी? यह अभाव क्यों है? वेणी आदि कई एक समाजके मुखियोंके स्वार्थ और क्रूर प्रतिहिंसाके बाहर कहीं क्या उसका अस्तित्व है?" अतएव देखा जाता है कि जिस शक्तिके विरुद्ध रमाको लड़ना पड़ा, वह यथार्थमें प्रबल नहीं थी, अथ च उसीके आगे उसने अपने एकमात्र प्रेमपात्रकी बलि दे दी। इससे उसके प्रेमका ही मूल्य क्या है? अन्तमें रमाने बहुत आँसू बहाये, रमेशसे क्षमा माँगी, उसे अपने भाई यतीन्द्रका अभिभावक बनाया किन्तु इस उपन्यासमें आघातकी तुलनामें व्यथा अधिक हुई है और व्यथाकी तुलनामें रुदन अधिक है।

ऐसे ही और भी दो-एक उपन्यास हैं, जैसे 'बड़ी दीदी', 'पथ-निर्देश' और 'पंडितजी'। बड़ी दीदी माधवीका प्रेम सुरेन्द्रनाथके ऊपर उत्पन्न हुआ था उसका अद्भुत चरित्र देखकर। वह किसी बातका कोई ख्याल न रखता था। ऐसे लापरवाह आदमी ही स्नेह और कृपाके पात्र होते हैं। विधवाके ऊसर हृदयमें सुरेन्द्रनाथने स्नेहका झरना खोल दिया। माधवीके हृदयमें पहले थोड़ा-सा मातृभाव-सा स्नेह जगा था उसके बाद वह स्नेह ही प्रेमके रूपमें बदल गया। उसने अपने पितासे कहा था — "पिताजी, प्रमीला जैसी है उसका मास्टर भी वैसा ही है — दोनों ही बच्चे हैं।" किन्तु क्रमशः उसी बच्चे-से स्वभाववाले सुरेन्द्रनाथके प्रति कृपाने ही प्रेमका रूप धारण कर लिया। यह पहले-पहल उसकी कृतज्ञताकी आकांक्षामें देखा गया। माधवीने मास्टर साहबको चश्मा खरीद दिया, अथ च मास्टरने किसी प्रकारकी कृतज्ञता इसके लिए नहीं प्रकट की। इससे माधवी कुंठित और पीड़ित हुई। प्रमीलासे खोद-खोदकर तरह तरहके प्रश्न करके उसने देखा मास्टरने इसके लिए किसी तरहका आनन्द या कृतज्ञता प्रकट की है या नहीं। यह नहीं कि उसने केवल प्रेम ही दिया हो, अनजानमें उसके मनमें प्रेम पानेकी आकांक्षा भी जाग उठी है। अपनी सखी मनोरमाको उसने एक चिट्ठी लिखी और उसमें उसने अपनेको प्रकट कर डाला। उसने लिखा— 'सुन्दरी हूँ, उसके मा-बाप हैं, किन्तु मुझे जान पड़ता है, उसका हृदय पत्थरकी तरह कठिन है। जान पड़ता है मैं तो ऐसे आदमीको आँखोंकी ओट न कर पाती।' इस आखिरी पंक्तिमें ही माधवीके मनकी बात मनोरमाकी पकड़में आ गई। अन्तमें कृतज्ञता जब नसीब नहीं हुई, तब वह कार्योंको बता दी—सुरेन्द्रनाथ समझ ले कि माधवीके न रहने पर उसे कितनी

असुविधा, कितना कष्ट होता है। माधवीके मनमें यह प्रणय प्रेमका संस्कारका चित्र खूब स्वाभाविक और चित्ताकर्षक है और यही शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका अपना खास काम है। किन्तु यहाँ भी शरत्चन्द्रने नारी शक्तिको लाकर इस उपन्यासके माधुर्यको नष्ट कर दिया है। नारीकी जो शक्ति मनुष्यके मनके भीतर रस नहीं ग्रहण कर सकी उसकी कल्पनामें कहीं भी उनकी प्रतिभाका विकास नहीं हुआ। माधवीने सुरेन्द्रनाथको एक तरहसे भगा ही दिया था, किन्तु वह नहीं जानती थी कि सुरेन्द्रनाथ अब फिर लौटकर नहीं आवेगा, और वह फिर न मिल सकेगा। इसीसे उसकी यह जो आकस्मिक भूल है, जिसका समर्थन उसके अन्तर्यामीने कभी नहीं किया, वही उसका सबसे बड़ा बोझा हो गई। किन्तु विधवाके सन्मार्जित संस्कारके साथ नारीकी प्रणय-कामनाका चित्रण ही शरत्चन्द्रकी विशेषता है। माधवीके मनमें भी यही संघर्ष हुआ होगा किन्तु शरत्चन्द्रने अपनी इस कहानीमें उसी चीजको एकदम लोप करके देखा है। घड़ी-भरकी आकस्मिक भूल या भ्रांति ही इस ट्रेजेडीकी जड़ है।

इस तरहकी आकस्मिक भूलको ट्रेजेडीका अंग असम्भव ही बनाया जा सकता है। ब्रजविमोहिनीने क्रोधमें होकर अपने जीवनमें कितना अनर्थ करा दिया था! रजनी बेगमके गुमानके मूलमें भी एक आकस्मिक भूल थी। अगर अगर अभिमान करके, रूठकर अपने मायके न चली जाती, तो शायद वह इस तरह पतिको न खो बैठती। किन्तु वर्तमान युगके साहित्यमें, विशेषकर शरत्चन्द्रके साहित्यमें, आकस्मिक घटनाके लिए स्थान बहुत ही कम है। मनुष्य जिसके विरुद्ध संग्राम करता है, वह है समाजकी संघबद्ध शक्ति। उसमें आकस्मिक या अनिश्चित कुछ नहीं है। शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका विकास हृदयके आवेगके साथ युद्धके संग्रामका चित्र खींचनेमें हुआ है। गजलक्ष्मीने भीखमंगेका पत्थर भी नहीं पाया, बल्कि जब सान्त्वनाके निकट गया तभी शान्तिने उसे दूर ठेल दिया। परिपूर्ण प्रेमकी जो यह अपरितृप्ति है इसीकी वेदना शरत्के साहित्यमें स्पष्ट हुई है — खिल उठी है। किन्तु माधवीके सारे दुःखका मूल एक आकस्मिक भूल बन गई। यह तो वह जान ही नहीं सकी कि सुरेन्द्रनाथ उसके कहनेसे—उसकी बातसे—सचमुच चला

जायगा, और चले जानेपर वह फिर नहीं मिल सकेगा। और जब उसे पाया गया, उस समय वह माधवीका आश्रम छोड़ गया था—वह फिर नहीं आया, और माधवी भी उसके पास नहीं गई। माधवीका यह जो न जाना है, किन्तु विधवाका यह जो प्रलोभनको रोकना है, उसकी ओरसे यही सबसे बड़ी बात है। किन्तु शरत्चन्द्रने इसे बिल्कुल गौण कर दिया। सुरेन्द्रनाथको जब जमींदारी मिली तब उसके शिथिल शासनमें उसके अमला लोग प्रजापर तरह तरहके अत्याचार करने लगे और उनके उस अत्याचारका शिकार बड़ी दीदी माधवी भी हुई। इस उत्पीड़नके साथ माधवीके हृदयका कोई सम्बन्ध नहीं है। सुरेन्द्रनाथने भी यह उत्पीड़न जानकर नहीं कराया और इस अत्याचारमें बहुत-सी विधवाएँ और अनेक माधवियाँ दलित हो गई हैं। यह सामाजिक चित्र यहाँपर अवान्तर है। कारण, जमींदारका विचारहीन अत्याचार अथवा उसके कर्मचारियोंका अत्याचार इस कहानीका विषय नहीं है। यह मानव-मनकी कहानी भी नहीं है। कारण प्रत्येक रस आघात बाहरसे घटना-परम्पराके आकस्मिक मेलसे आये हैं। मृत्युशय्यापर सुरेन्द्रनाथ जो रक्त वमन करने लगा, उसका कारण भी वही पहलेका आघात था, जिसके लिए माधवी केवल अंशतः जिम्मेदार है। सुरेन्द्रनाथने माधवीसे कहा 'बड़ी दीदी, उस दिनकी बात याद है, जिस दिन तुमने मुझे भगा दिया था? उसीका बदला आज मैंने लिया है। तुमको भी मैंने भगा दिया—क्यों, बदला चुक गया न?' इस घरमें माधवीने चैतन्य खोकर अपना कुंठित मस्तक सुरेन्द्रके कन्धेके पास रख दिया। जब उसे होश आया, उस समय घर भरमें रोनेका हाहाकार उठ रहा था।"—प्रेम-कथाका यह जो करुण उपसंहार हुआ, इसके मूलमें बाहरकी घटनाका समावेश विद्यमान है। अथच ग्रीक ट्रेजेडीमें शेक्सपियरके नाटकों अथवा बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंमें 'दैव' की जिस विधाताका, उसके जिस दुर्दमनीय प्रभावका हम अनुभव करते हैं, उसका यहाँपर कोई चिह्न नहीं है। मानव-मनकी अनन्त जटिलता, समाज-शासित अनतिक्रमणीय प्रभाव और हृदयकी अगम्य आकांक्षाका इस कहानीमें सुस्पष्ट परिचय नहीं है। यह करुण-रसात्मक कहानी है — इसमें ट्रेजेडीकी गहराई नहीं है।

पथ निर्देश' भी बहुत कुछ इसी तरहका है। गुणीन्द्रके साथ मिलनेके लिए हेमनलिनीके मनमें जो आकांक्षा जाग उठी थी उसके प्रतिकूल कोई शक्ति

उसके अपने मनके भीतर नहीं थी। हिन्दू-रमणीका संस्कार उसके मनमें घर नहीं कर पाया था। यह बात उससे छिपी नहीं थी कि उसका रक्षक गुणीन्द्र उसका ग्रहण करना चाहता है किन्तु यह निःसंशय होकर नहीं कहा जा सकता कि यही उसका यथार्थ मत है। विधवा होकर वह इस तरह गुणीन्द्रके निकट आकर उपस्थित हुई कि गुणीन्द्र उसके हावभावको देखकर यह समझ ही नहीं सका कि उसपर कितनी बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। उसमें सद्यो विधवाके वैराग्य या उदासी और वहाँ वेदनाका कोई चिह्न ही न था। उसने अपने पतिकी मृत्युकी खबर और अपनेको बहुत भूख लगी होनेकी बात एक साथ ही अपने गुणीन्द्र दादाको कह दी और इसीके साथ यह भी कहा कि वह उस परिवारसे कुछ भी नहीं लाई, जो उनका खाया है उससे कहीं अधिक दान कर दिया है। वह यही समझाना चाहती है कि पतिके घरके साथ उसका कोई सच्चा योग नहीं था पतिकी मृत्युके बाद उसे ऐसे जान पड़ा कि उसके सिरसे एक बोझ उतर गया है और वह बन्धनमुक्त होकर अपने एकान्त प्रणयास्पद गुणीन्द्र दादाके पास चली आई है। किन्तु अन्तमें पतिभक्तिका सहारा लेकर उसने प्रणय प्रसंग-चर्चा शुरू कर दी और इसीके बलसे उसने गुणीन्द्रके प्रणय-प्रस्तावको कठोर भावसे अस्वीकार कर दिया। यही है शरत्चन्द्रका खास अपना क्षेत्र नारीके हृदयका यह कठोर संग्राम—एक ओर हृदयका दुर्दमनीय आवेग और दूसरी ओर बनी हुई धर्म-बुद्धि। लाजिम ट्रेजेडीकी सृष्टि करनी हो तो इन दोनों शक्तियोंको समान भावसे प्रबल करना होगा। किन्तु हेमनलिनीके मनमें संस्कारका प्रभाव बहुत ही क्षीण है। विवाहके पहले ही उसने प्रायः गुणीन्द्रका बहुत मोहन किया है, विवाहमें उसने बहुत आपत्ति उठाई है, विवाहके बाद गुणीन्द्रके घरका उल्लेख करके उसने कहा है कि वहाँ जितना पुण्य-संचय हो सकता है, उतना वैकुण्ठमें बैठकर भी नहीं हो सकता। पतिकी मृत्युके बाद भी उसके समस्त आचरणमें पतिके प्रति प्रीतिका अत्यन्त अभाव ही देखा गया है। राजलक्ष्मी आदिकी निष्ठाके साथ इसकी तुलना ही नहीं हो सकती। जिस रमणीका विश्वास इतना शिथिल है वह यदि हिन्दू रमणीके सतीत्वधर्मकी दुहाई देकर अपने प्रियतमका प्रत्याख्यान करे तो वह प्रत्याख्यान बड़ा ही अस्वाभाविक जान पड़ता है। इसमें ट्रेजेडीकी सामग्री क्षीण है, इसीसे इसको ऊँचे दर्जेका आर्ट नहीं कहा जा सकता।

और एक बात है। हेमनलिनी या ललिताके प्रेममें मनकी ओरसे एक एकान्त भरोसा मौजूद है। गुणीन्द्रने हेमनलिनी और उसकी माताको आश्रय दिया था और शेखरकी आर्थिक सहायता ललिताका एक प्रधान अवलंबन था। जिस प्रेमकी जड़ आर्थिक निर्भरशीलतामें है, वो स्वतः स्फूर्त नहीं है, उसके भीतर थोड़ी-सी खींचतान रहेगी ही। वह कभी स्वतः उत्पन्न होनेवाले प्रेमके गौरवका दावा नहीं कर सकता। ललिता और शेखर तथा हेमनलिनी और गुणीन्द्रके प्रेमका साथ नरेन्द्र और विजयाके प्रेमकी तुलना नहीं हो सकती। विजया नरेन्द्रकी निजी धनके लिए ऋणी नहीं बल्कि उसने उसीकी सारी सम्पत्ति कर्ज वसूल करनेके नामसे छीन ली है। नरेन्द्र ऐसा स्वाधीनचेता था कि एक माइक्रोस्कोप तक उसे उपहार देनेका विजयाको साहस नहीं हुआ। विजया नरेन्द्रकी ओर आकृष्ट हुई थी उसकी उन्नत बलिष्ठ देह और उससे भी अधिक बलिष्ठ उसका चरित्र देखकर। रासबिहारीके पास अथाह धन था किन्तु भीमकान्तने वह तनिक-सा भी नहीं ग्रहण किया। वह सुदूर बर्माके मुल्कमें अपना पेट पालनेके लिए—जीविकाकी तलाशमें—चला गया। परभृत कोयलके स्वरकी मधुरता नष्ट नहीं होती किन्तु पराश्रित मनुष्यके जीवनका गौरव घट जाता है। सुरेशने अचलाके पिताका ऋण चुकाकर अचलाको पानेकी चेष्टा की थी किन्तु इससे अचलाका मन सुरेशके विरुद्ध ही हो उठा था। मनुष्यकी अन्तरात्मा कभी बाजारके सौदेकी तरह बेची नहीं जा सकती। इस कमजोरीकी बात हेमनलिनी और ललिताके मनमें कभी नहीं उठी। शेखर और गुणीन्द्रके चरित्रमें प्यार करने लायक कुछ भी न हो, यह बात नहीं है, किन्तु यह बात माननी ही होगी कि उन्होंने ललिता और हेमनलिनीको प्रधानता अपने पैसेबल अपनी ओर आकृष्ट किया था। शेखर जो रूठता था तो वह क्या केवल प्रेम या प्यारका ही दावा था? हेमनलिनीने जो चिल्लाकर कहा था कि गुणीन्द्र रसिक बनकर मस्त हो गया है, इस कथनमें क्या कुछ भी सत्य नहीं है? वास्तवमें इन सब प्रश्नोंकी आलोचना बिल्कुल ही नहीं की। हेमनलिनी और ललिताके मानसिक विश्लेषणमें यह पहलू एकदम छोड़ दिया गया है।

पंडितजी (पंडित मशाई) उपन्यासके संबंधमें ये सब बातें लागू नहीं होती। कुसुमके पास खाने-पीनेका सुभीता नहीं है; वृन्दावन उसकी अपेक्षा

सम्भव है। किन्तु कुसुम कभी किसी दिन वृन्दावनके पास नहीं गई। और जिस दिन उसने वृन्दावनका आश्रय चाहा, उस दिन भी रुपए-पैसेकी तंगीके कारण उसने कृपाकी भीख नहीं माँगी। यह ब्याहता स्त्रीके न्याय सम्मत अधिकारका दावा है। कुसुमके जीवनकी और एक विशेषता यह है कि उसके ऊपर बाहरका दबाव बहुत कम है। समाजव्यवस्थाका प्रभाव उसकी अपनी विचारके भीतरसे दिखाई दिया है। उसके पति वृन्दावनने उसे छोड़ दिया था। इसके बाद उसका कंठीबदल (कंठी बदलकर होनेवाला वैष्णव वैरागियोंमें प्रचलित एक प्रकारका ब्याह) हुआ। फिर जिसके साथ कंठी-बदलकी रस्म हुई थी वह अभागा वैरागी भी इस शुभ कार्यके छः महीनेके भीतर ही नित्यधाम (बैकुंठ) को सिधार गया। इसके बाद उसका पति उसे फिर ग्रहण करनेको राजी हुआ और वैष्णव वैरागियोंमें यह बुरा भी नहीं समझा जाता। मगर जन्मतः ही कुसुम ब्राह्मणोंकी लड़कियोंके साथ इतनी बड़ी हुई थी और उन्हींके साथ साथ प्यारी पंडितकी पाठशालामें पढ़ी-लिखी खेली-कूदी थी। आज भी वे ही सब उसकी संगी-साथिन हैं। इस कारण इस प्रसंगको लेकर घृणा और लज्जासे उसका मन सिहर उठा। किन्तु धीरे धीरे जब पतिके साथ उसका परिचय हुआ तब एक दिन अपनी सौतके बेटेको देखकर उसके हृदयमें नारीत्व और मातृत्व जाग उठा। जब जिस पतिको उसने इतने दिन निर्मम भावसे बिल्कुल छोड़ रखा था, उसीको पानेके लिए उसके मनमें एक प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गई। लेकिन तो भी यह मिलन अपूर्ण ही रह गया। उसने जब खुद अपने पतिको पति स्वीकार कर लिया, तब फिर यथार्थ बाधा कुछ भी नहीं रह गई थी। और पहले जो बाधा थी उसके मूलमें भी पुस्तकोंमें पढ़ी हुई विद्या ही थी, हिन्दू-विधवाका जन्मसे ही प्राप्त संस्कार न था। उसने जिसे प्यार किया था, वह श्रीकान्त अथवा शरीफकी तरह ऐसा न था जिससे उसका कोई सम्पर्क न हो। वह उसका ही पति है, अतएव उसके साथ मिलनकी राहमें वैसी कोई बाधा नहीं रह सकती जो लाँघी न जा सके। मिलनमें बाधा पड़ी एक दिनके क्षणिक अभिमानसे जिसके कारण उसने स्नेहमयी सासके दिए हुए आशीर्वादको लौटा दिया—ग्रहण नहीं किया। इसके बाद उसने बारबार इस गलतीके लिए पश्चात्ताप किया और पतिसे यह अनुरोध किया कि वह उसे ग्रहण कर ले। वृन्दावनने आप उसे ले जाना स्वीकार नहीं किया उसस

ससुर अकेले पैदल जाकर अपनी माताके पास उपस्थित होनेके लिए कहा। अभिमानिनी कुसुमके हृदयको इससे चोट पहुँची। उसने कहा—"मैं कैसे दिन दो पहरको पैदल चलकर एक भिखारिनकी तरह गाँवके भीतर जाऊँ!" और मन ही मन कहा कि "वह आप भी जानते हैं कि मैं ही उनकी धर्मपत्नी हूँ। फिर क्यों वह मेरी इस अनुचित ढिठाईकी परवाह करते हैं? क्यों नहीं जोर दिखाते? क्यों नहीं जबरदस्ती आते? क्या नहीं मेरे सारे घमंडको पद-दलित करके—चूरचूर करके जहाँ जी चाहे वहाँ घसीट ले जाते?" इस तरह कुसुमकी सारी बाधा एक साधारण स्पर्द्धा और घमंडसे आई, जिसे वह आप ही ठीक समझना चाहती थी। उसके अन्तस्तम अन्तःकरणमें जो आकांक्षा जाग उठी थी उसके आगे इस बाधा या घमंडका मूल्य क्या और कितना था? वास्तवमें इस ट्रेजडीके मूलमें कोई गहरा संघर्ष नहीं है। नारीकी पतिके संगकी आकांक्षामें बाधा डाली है पाठशालाकी शिक्षा और अपमानके अभिमानने। इनके मिलनको गहरा और ठोस बनानेके लिए कविको चरन की मृत्युकी कल्पना करनी पड़ी है। ऐसा न होता तो यह मिलन एकदम कामार्थी होता।

'देवदास' में भी यही एक समस्या है। बचपनमें देवदास और पार्वती, दोनों एक पाठशालामें पढ़ते थे और तभी उनमें गहरा प्रेम उत्पन्न हुआ था। शरत्चन्द्रके साहित्यमें पाठशाला वाग्देवीका पीठस्थान हो चाहे न हो, लेकिन अनुरागदेवकी प्रधान लीलाभूमि अवश्य है। पाठशालामें ही रमाके साथ रमेशकी भेंट हुई थी, पार्वतीने देवदासको पाया था और राजलक्ष्मीने करौंदेकी माला देकर श्रीकान्तको वरण किया था। यह चाहे जो हो, पार्वती और देवदासका ब्याह नहीं हो सका—जिस तरह सामाजिक कारणसे रमा और रमेशका ब्याह न हो सका। रमा रमेशकी अपेक्षा कुलीन घरकी थी और पार्वतीकी अपेक्षा देवदासका वंश-गौरव अधिक था। किन्तु पार्वतीके निकट इस सब मान-मर्यादाका मूल्य कम था। उसने देवदाससे कहा—"बाप-माके अवाध्य होकर ब्याह कर लो।" देवदासने कहा—"मैं बाप-माका अवाध्य होऊँ?" पार्वतीने उत्तर दिया—"इसमें दोष क्या है?" पार्वतीमें एक साहस है, जिसकी तुलना कमल अभयासे हो सकती है। घरको मनोरमाका पत्र पाकर वह जब देवदासको लेने आई, तब भी उसने मनोरमाकी आपत्तिका जोरदार शब्दोंमें खण्डन करके

उसे चुप कर दिया। मनोरमाने कहा—"पारो, तुम क्या देवदासको देखने आई हो?"

पार्वतीने कहा—"नहीं, साथ ले जानेके लिए आई हूँ। यहाँ उनका और कोई अपना आदमी तो है नहीं।"

मनोरमा अचरजमें आकर अवाक् हो गई। बोली—"कहती क्या है? लाज नहीं आती?"

पार्वतीने कहा—"लाज काहेकी? अपनी चीज अपने साथ ले जाऊँगी, इसमें लजानेकी क्या बात है?"

मनोरमाने कहा—"छी छी, यह कैसी बात करती हो? कोई नाता, कोई सम्बन्ध तक नहीं है—ऐसी बात जबान पर न लाओ।"

पार्वतीने मुरझाई हुई हँसी हँसकर कहा—"मनो दीदी, मैंने जबसे होश सँभाला, तबसे जो बात मनमें बसी हुई है, वह एक आध बार मुँहसे निकल ही जाती है।"

पार्वतीमें यह साहस था कि अपनी चीजको अपनी कहकर दावा करे। तो भी वह ऐसा नहीं कर सकी। पहली बाधा तो उसका अभिमान ही हुआ। उसने इसके साथ देवदाससे कहा था—"तुम्हारे माँ-बाप हैं, तो क्या मेरे नहीं हैं? उनके मानापमानकी क्या जरूरत नहीं है?" इसके अलावा वह हिन्दू घरकी बहू है। उसके लिए समाजको त्याग करनेकी बात कहना जितना सहज है, उतना सहज उसे कार्यरूपमें परिणत करना नहीं। जान पड़ता है, देवदास भी इस कामके लिए राजी न होता। पार्वतीका चरित्र चित्रण करते समय शरत्चन्द्रने इन सब कारणोंकी यथोपयुक्त आलोचना नहीं की। जिस तरहसे संस्कारकी दुरतिक्रमणीय शक्ति निष्ठुर हृदयकी सारी आकांक्षाओंको बलि देती होती है उसका पार्वतीके मनपर कितना प्रभाव पड़ा था, इसका अच्छी तरह विचार नहीं किया गया। शरत्चन्द्रकी शुरूकी रचनाओंमें यह उपन्यास अन्यतम है। इसमें उनकी प्रतिभाका आभास है, किन्तु उसका विकास नहीं हुआ।

२

शरत्चन्द्रके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें बाहरकी शक्तियोंको यथासम्भव गौण बनाकर सारे संग्राम या संघर्षको मनके भीतर ही केन्द्रीभूत किया गया है। दुर्निवार प्रेमकी आकांक्षा और धर्म-बुद्धि इन दोनों प्रतिकूल जानेवाली शक्तियोंमें निरन्तर जो घोर द्वन्द्व होता रहता है, वही उन्होंने चित्रित किया है। धर्मबुद्धि नामकी कोई मौलिक वृत्ति है या नहीं, इसमें सन्देह है। हम जिसे नीति और धर्म कहते हैं, वह है समाजसे पाया हुआ। किन्तु इसका विकास मनुष्यके मनमें होता है। शरत्चन्द्रकी रचनामें बाहरी समाज-शक्तिके प्रभावकी बात अधिक दिखाई गई है, किन्तु उस शक्तिकी क्रीडाभूमि है मनुष्यका मन यहींपर उसे बाधा पहुँचाई है नारीकी जन्मजात प्रेमकी आकांक्षाने। इसमें उच्छ्वास नहीं है, अति नहीं है, अतिशयोक्ति नहीं है। इसकी जड़ अन्तःकरणकी भीतरी तहमें है। यह मानव-जीवनके चरम दुर्भाग्य और श्रेष्ठ सम्पत्तिकी बात बता देती है। श्रीकान्तको बुखारकी हालतमें जब वह बेहोश था राजलक्ष्मी पटना ले आई और असीम यत्नसे सेवा शुश्रूषा करके जब चंगा कर दिया तब फिर आप ही उसे विदा करनेको उद्यत हो गई। यह बाहरकी ताड़ना या दबाव न था। समाजने प्रत्यक्ष भावसे उसे बाधा नहीं दी। वहाँ कोई ग्रामीण समाज न था। उसकी मनकी आकांक्षामें बाधा था उसका मातृहृदय। "उसकी असंयत कामना और उच्छृंखल प्रकृति उसे नीचे गिरानेके लिए चाहे जितना ठेलना चाहे, किन्तु वह यह बात भी नहीं भूल सकती कि वह एक लड़केकी मा है और उस सन्तानकी भक्तिसे झुकी हुई दृष्टिके सामने उसकी माताका वह किसी तरह भी अपमान नहीं कर सकती।" श्रीकान्त और राजलक्ष्मीमें व्यवधान स्पष्ट हो गया— एकाएक बंकूकी मा अभ्रभेदी हिमालयके शिखरकी तरह राह रोककर राजलक्ष्मी और श्रीकान्तके बीच खड़ी हो गई। राजलक्ष्मीने श्रीकान्त॰ पाससे अपनेको छीन लिया और श्रीकान्त अपने शयनकक्षमें निद्राहीन रात्रि बिताने चला गया। बहुत रात बीते राजलक्ष्मीने गुप्त रूपसे श्रीकान्तके शयनकक्षमें घुसकर, बाहरकी खिड़कियाँ बन्द करके, रोशनी बुझाकर, उसके देहकी गर्मीका अनुभव करके, उसके कपड़े ठीक कर दिए। अन्तको मसहरीके छोर अच्छी तरह बिछौनेके

नीचे दबाकर अत्यन्त सावधानीसे किवाड़े भेड़कर बाहर निकल गए। चुपचाप छिपकर एकान्तमें आलोकशिखा पर गोपन करराया, उसकी यह छुपी हुई एकान्त दशा इतना माधुर्य अभिव्यक्त हुआ है निश्चयकी विशेषकी व्यंजनाके भीतरसे। राजलक्ष्मीने बुद्धिके द्वारा जिसे दूर कर दिया था, उसीके निकट आसन आनेके द्वारा आत्म-निवेदन किया। श्रीकान्तने आप ही कहा है — " जो गुप्त समय आई थी उसे मैंने गुप्त रूपसे ही जाने दिया। किन्तु इस मुहल्लेकी आधी रातमें—निर्जन निशीथमें—वह मेरे पास अपना कितना छोड़ गई, इसका उस कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। "

इसके कुछ समय बाद श्रीकान्त फिर क्षमा करनेका और ब्याह करनेका प्रस्ताव लेकर हाजिर हुआ। राजलक्ष्मी श्रीकान्तकी एकान्त शुभचिन्तिका है। अतएव श्रीकान्तके विवाहके प्रस्तावमें वह आग्रह प्रकट करके उसमें अगुआ बने यह स्वाभाविक है। वह उत्साहके साथ कह उठी " इससे मैं न सुखी होऊँगी तो और कौन होगा? " किन्तु वह श्रीकान्तके लिए शुभचिन्तिकाकी अपेक्षा भी बहुत अधिक है। उसका समस्त मन और हृदय श्रीकान्तको पानेके लिए उन्मुख हो रहा है और उसीके जोरसे वह श्रीकान्तके हृदयपर अपना कब्जा या अधिकार चाहती है। ऐसी श्रीकान्तके ब्याहमें उसकी बुद्धि साथ दे सकती है—उसका अनुमोदन या समर्थन कर सकती है किन्तु उसकी अन्तरात्मा कैसे सहमत हो सकती है? तब शुभानुध्यायिनीकी आकृति तोड़कर प्रणयिनीके हृदयकी वेदना फूट पड़ी। इस कामको पहले तो अभ्यास करके राजलक्ष्मीने उड़ा दिया परन्तु चिट्ठी नहीं भेजेगी, यह कहकर उपेक्षाके साथ उस चिट्ठीको रख देनेकी चेष्टा की किन्तु अन्त तक उस चिट्ठीको अपने हाथकी मुट्ठीमें ही पकड़े रही। कुछ देर बाद चिट्ठी पढ़कर उसने बिलकुल ही व्यावहारिक साथ पात्रीके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर करनेकी चेष्टा की किन्तु जिस व्यक्तिके साथ उसकी सारी आशा-आकांक्षा विजड़ित है उसके सम्बन्धमें वह निर्विकार कैसे रहे। बाहरसे वह जितना ही उदासीनताकी भान करने लगी, उतना ही उसका मन व्याकुलतासे व्यथित हो उठा। मुँहसे वह जितना ही उत्साह प्रकट करने लगी, उतना ही उसका हृदय विषादसे भरने लगा। अन्तमें वह समझ पाई कि उसने प्रेम केवल दिया ही नहीं, पाया

२

शरत्‌चन्द्रके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें बाहरकी शक्तियोंको यथासम्भव गौण बनाकर सारे संग्राम या संघर्षको मनके भीतर ही केन्द्रीभूत किया गया है। दुर्निवार प्रेमकी आकांक्षा और धर्म-बुद्धि इन दोनों प्रतिकूल चलनेवाली शक्तियोंमें निरन्तर जो घोर संघर्ष होता रहता है, वही उन्होंने चित्रित किया है। धर्मबुद्धि नामकी कोई मौलिक वृत्ति है या नहीं, इसमें सन्देह है। हम जिसे नीति और धर्म कहते हैं, वह है समाजसे पाया हुआ। किन्तु इसका विकास मनुष्यके मनमें होता है। शरत्‌चन्द्रकी रचनामें बाहरी समाज-शक्तिके प्रभावकी बात अधिक दिखाई गई है, किन्तु उस शक्तिकी क्रीडाभूमि है मनुष्यका मन, जहाँपर उसे बाधा पहुँचाई है नारीकी जन्मजात प्रेमकी आकांक्षाने। इसमें उच्छ्वास नहीं है, अति नहीं है, अतिशयोक्ति नहीं है। इसकी जड़ अन्तःकरणकी भीतरी तहमें है। यह मानव-जीवनके परम दुर्लभ और श्रेष्ठ सम्पत्तिकी बात बता देती है। श्रीकान्तको कुमारकी हालतमें, जब वह बेहोश था, राजलक्ष्मी पटना ले आई और असीम यत्नसे सेवा शुश्रूषा करके जब चंगा कर दिया तब फिर आप ही उसे विदा करनेको उद्यत हो गई। यह बाहरकी ताड़ना या दबाव न था। समाजने प्रत्यक्ष भावसे उसे बाधा नहीं दी। वहाँ कोई ग्रामीण समाज न था। उसकी प्रणयाकांक्षामें बाधा था उसका मातृत्व। "उसकी असंयत कामना और उच्छृंखल प्रकृति उसे नीचे गिरानेके लिए चाहे जितना ठेलना चाहे, किन्तु वह यह बात भी नहीं भूल सकती कि वह एक लड़केकी मा है और उस सन्तानकी भक्तिसे झुकी हुई दृष्टिके सामने उसकी माका तो वह किसी तरह भी अपमान नहीं कर सकती।" श्रीकान्त और राजलक्ष्मीमें व्यवधान स्पष्ट हो गया—एकाएक बंकूकी मा अभ्रभेदी हिमालयके शिखरकी तरह राह रोककर राजलक्ष्मी और श्रीकान्तके बीच खड़ी हो गई। राजलक्ष्मीने श्रीकान्तके पाससे अपनेको छीन लिया और श्रीकान्त अपने शयनकक्षमें निद्राहीन रात्रि बिताने चला गया। बहुत रात बीते राजलक्ष्मीने गुप्त रूपसे श्रीकान्तके शयनकक्षमें घुसकर, बाहरकी खिड़कियाँ बन्द करके, रोशनी बुझाकर, उसके देहकी गर्मीका अनुभव करके उसके कपड़े ठीक कर दिये। अन्तमें मसहरीके छोर अच्छी तरह बिछौनेके

नीचे रखकर अत्यन्त सावधानीसे किवाड़े भेड़कर बाहर निकल गई। चुपचाप छिपकर एकान्तमें आनेवाली यह गोपन करुणा, उसकी यह छुपी हुई एकाग्र सेवा इसका माधुर्य अभिव्यक्त हुआ है निकटवर्ती स्त्रियोंको स्वाभाविक भैरवम। राजलक्ष्मीने बुद्धिके द्वारा जिसे दूर कर दिया था उसीको निकट पाकर मातृत्वके द्वारा आत्म-निवेदन किया। श्रीकान्तने आप ही कहा है,—' जो तुम रूपमें आई थी, उसे मैंने तुम रूपमें ही जान लिया। किन्तु इस सुनसान धार्य रातमें—निर्जन निशीथमें—यह मेरे पास आना कितना ठीक था, इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ।"

इसके कुछ समय बाद श्रीकान्त फिर बर्मा जानेका और ब्याह करनेका प्रस्ताव लेकर हाजिर हुआ। राजलक्ष्मी श्रीकान्तकी एकान्त शुभचिन्तिका है। अतएव श्रीकान्तके विवाहके प्रस्तावमें वह आग्रह प्रकट करके उसमें अगुआ बने, यह स्वाभाविक है। वह उत्साहके साथ कह उठी "इससे मैं न सुखी होऊँगी तो और कौन होगा?" किन्तु वह श्रीकान्तके लिए शुभचिन्तिकाकी अपेक्षा भी बहुत अधिक है। उसका समस्त मन और हृदय श्रीकान्तको पानेके लिए उन्मुख हो रहा है और उसीके जोरसे वह श्रीकान्तके हृदयपर अबाध कानूनका अधिकार चाहती है। इसीसे श्रीकान्तके ब्याहमें उसकी बुद्धि साथ दे सकती है—उसका अनुमोदन या समर्थन कर सकती है किन्तु उसकी अन्तरात्मा कैसे सहमत हो सकती है? इस छलनापूर्ण वर्णनाकी भाषाको खोलकर प्रणयिनीके हृदयकी वेदना फूट पड़ी। इस सम्बन्धमें पहले तो मजाक करके राजलक्ष्मीने उड़ा दिया, पराई चिट्ठी नहीं पढ़ेगी, यह कहकर उपेक्षाके साथ उस चिट्ठीको रख देनेकी चेष्टा की किन्तु अन्त तक उस चिट्ठीको अपने हाथकी मुट्ठीमें ही पकड़े रही। कुछ देर बाद चिट्ठी पढ़कर उसने बिल्कुल ही व्यवसायीके साथ पात्रीके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर करनेकी चेष्टा की, किन्तु जिस ब्याहके साथ उसकी सारी आशा-आकांक्षा विजड़ित है उसके सम्बन्धमें वह निर्विकार कैसे रहे? फलतः वह जितना ही उदासीनताका भान करने लगी, उतना ही उसका मन आवेगसे व्यथित हो उठा। मुँहसे वह जितना ही उत्साह प्रकट करने चली, उतना ही उसका हृदय विषादसे भरने लगा। अन्तको वह समझ गई कि उसने प्रेम प्रकट किया ही नहीं, पाया

२

शरत्चन्द्रके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें बाहरकी शक्तियोंको यथासम्भव गौण बनाकर सारे संग्राम या संघर्षको मनके भीतर ही केन्द्रीभूत किया गया है। दुर्निवार प्रेमकी आकांक्षा और धर्म-बुद्धि इन दोनों प्रतिकूल जानेवाली शक्तियोंमें निरन्तर जो घोर संघर्ष होता रहता है, वही उन्होंने चित्रित किया है। धर्मबुद्धि नामकी कोई मौलिक वृत्ति है या नहीं, इसमें सन्देह है। हम जिसे नीति और धर्म कहते हैं, वह है समाजसे पाया हुआ। किन्तु इसका निवास मनुष्यके मनमें होता है। शरत्चन्द्रकी रचनामें बाहरी समाज-शक्तिके प्रभावकी बात अधिक दिखाई गई है, किन्तु उस शक्तिकी क्रीड़ाभूमि है मनुष्यका मन, जहाँपर उसे बाधा पहुँचाई है *नारीके स्वभावज प्रणयकी आकांक्षाने।* इसमें उच्छ्वास नहीं है अति नहीं है, अतिशयोक्ति नहीं है। इसकी जड़ अन्तःकरणकी भीतरी तहमें है। यह मानव-जीवनके चरम दुर्भाग्य और श्रेष्ठ सम्पत्तिकी बात बता देती है। श्रीकान्तको बुखारकी हालतमें जब वह बेहोश था, राजलक्ष्मी पटना ले आई और असीम यत्नसे सेवा शुश्रूषा करके जब चंगा कर दिया तब फिर आप ही उसे विदा करनेको उद्यत हो गई। यह बाहरकी ताड़ना या दबाव न था। समाजने प्रत्यक्ष भावसे उसे बाधा नहीं दी। वहाँ कोई ग्रामीण समाज न था। उसकी प्रणयाकांक्षामें बाधा था उसका मातृहृदय। "उसकी असंयत कामना और उच्छृंखल प्रकृति उसे नीचे गिरानेके लिए चाहे कितना ठेलना चाहे, किन्तु वह यह बात भी नहीं भूल सकती कि वह एक लड़केकी मा है और उस सन्तानकी भक्तिसे झुकी हुई दृष्टिके सामने उसकी माताका तो वह किसी तरह भी अपमान नहीं कर सकती।" श्रीकान्त और राजलक्ष्मीमें व्यवधान खड़ा हो गया—एकाएक बंकूकी मा अभ्रभेदी हिमालयके शिखरकी तरह राह रोककर राजलक्ष्मी और श्रीकान्तके बीच खड़ी हो गई। राजलक्ष्मीने श्रीकान्तके पाससे अपनेको छीन लिया और श्रीकान्त अपने शयनकक्षमें निद्राहीन रात्रि बिताने चला गया। बहुत रात बीते राजलक्ष्मीने गुप्त रूपसे श्रीकान्तके शयनकक्षमें घुसकर बाहरकी खिड़कियाँ बन्द करके, रोशनी बुझाकर, उसके देहकी गर्मीका अनुभव करके उसके कपड़े ठीक कर दिए। अपनेको मसहरीके छोर अच्छी तरह बिछौनेके

नीचे रखकर अत्यन्त सावधानीसे किवाड़े भेड़कर बाहर निकल गए। चुपचाप छिपकर एकान्तमें आनेवालीका यह गोपन कारुण्य, उसकी यह छुपी हुई एकाग्र सेवा, इसका माधुर्य अभिव्यक्त हुआ है निकटवर्ती वियोगकी मर्मान्तक नीरस। राजलक्ष्मीने बुद्धिके द्वारा जिसे दूर कर दिया था उसीके निकट गोपन आवेगके द्वारा आत्म-निवेदन किया। श्रीकान्तने आप ही कहा है — "जो गुप्त रूपसे आई थी उसे मैंने गुप्त रूपसे ही जाने दिया। किन्तु इस सुनसान आधी रातमें—निर्जन निशीथमें—वह मेरे पास अपना कितना छोड़ गई इसका उस कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ।"

इसके कुछ समय बाद श्रीकान्त फिर बर्मा जानेका और ब्याह करनेका प्रस्ताव लेकर हाजिर हुआ। राजलक्ष्मी श्रीकान्तकी एकान्त शुभचिन्तिका है। अतएव श्रीकान्तके विवाहके प्रस्तावमें वह आग्रह प्रकट करके उसमें अनुज्ञा दे, यह स्वाभाविक है। वह उत्साहके साथ कह उठी— "इससे मैं न सुखी होऊँगी तो और कौन होगा!" किन्तु वह श्रीकान्तके लिए शुभचिन्तिकाकी अपेक्षा भी बहुत अधिक है। उसका समस्त मन और हृदय श्रीकान्तको पानेके लिए उन्मुख हो रहा है और उसीके जोरसे वह श्रीकान्तके हृदयपर अपना अक्षुण्ण-सा अधिकार चाहती है। इसीसे श्रीकान्तके ब्याहमें उसकी बुद्धि साथ दे सकती है—उसका अनुमोदन या समर्थन कर सकती है किन्तु उसकी अन्तरात्मा कैसे सहमत हो सकती है! उस शुभानुध्यायिनीकी आत्माको रौंदकर प्रणयिनीके हृदयकी वेदना फूट पड़ी। इस प्रसंगके पहले तो अपमान करके राजलक्ष्मीने उड़ा दिया, पराई चिट्ठी नहीं पढ़ेगी, यह कहकर उपेक्षाके साथ उस चिट्ठीको रख देनेकी चेष्टा की किन्तु अन्त तक उस चिट्ठीको अपने हाथकी मुट्ठीमें ही पकड़े रही। कुछ देर बाद चिट्ठी पढ़कर उसने बिलकुल ही अवसादके साथ पात्रीके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर करनेकी चेष्टा की; किन्तु जिस भावके साथ उसकी सारी आशा-आकांक्षा विजड़ित है उसके सम्बन्धमें वह निर्विकार कैसे रहे! बाहरसे वह जितना ही उदासीनताका भान करने लगी उतना ही उसका मन आवेशसे कुण्ठित हो उठा। मुँहसे वह जितना ही उत्साह प्रकट करने लगी, उतना ही उसका हृदय विषादसे भरने लगा। अन्तमें वह समझ पाई कि उसने प्रेम केवल दिया ही नहीं, पाया

— ४

भी है। उसके निन्दित यौवनकी कलुषकालिमा संचित रहने पर भी, उसका प्रेमपात्र उसीके लिए सब कुछ छोड़नेको प्रस्तुत हुआ है। उसका सारा संदेह और आशंका दूर हो गई, उसका कलंक-लिप्त जीवन अपूर्व गौरवसे मण्डित हो उठा। हतभागिनीके सारे दुर्भाग्यको तोड़-मरोड़कर आनन्दकी बाढ़ आ गई। इसका वर्णन देते हुए श्रीकान्तने कहा है—' पलभरके लिए दोनोंकी चार आँखें हो गईं और तुरन्त ही वह तकियेमें मुँह छिपाकर छातीके बल पलँगपर पड़ गई। केवल उमड़ी हुई रुलाईके आवेगसे उसका सारा शरीर काँप-काँपकर फूल उठने लगा। सिर उठाकर मैंने देखा। रतन पर गहरी नींदमें बेखबर है—कहीं कोई जाग नहीं रहा है। केवल एक बार जान पड़ा, अंधकारमें रात्रि देवि अपने कितने ही उत्सवोंकी प्रिय सहचरी पियारीबाईके इस मर्मभेदी अभिनयको अत्यन्त परितृप्तिके साथ देख रही है।" जो रुदन पियारीबाईके सारे उन्मत्त-ऐश्वर्यकी आड़में इतने दिनसे जमा हो उठा था, आज अपनी झूठी नकाब उतार फेंककर वह पूरे जोरसे निकल पड़ा। अनेक बाधाओंको लाँघकर प्रकट हुआ है, इसीसे तो यह रोना इतना वेदनामय, इतना मधुर है।

'देवदास आदि उपन्यासोंकी ट्रेजेडीके मूलमें यही मनका अभिमान या क्षणिक भ्रान्ति है। श्रीकान्त और राजलक्ष्मीकी कहानीमें भी मान-अभिमान अवश्य है, किन्तु ट्रेजेडीका मूल हृदयकी सबसे भीतरी तहमें है। वह मान-अभिमानसे परे है। अभिमान और ईर्ष्यासे इसका संचित माधुर्य और भी अधिक चमक पड़ता है बस। राजलक्ष्मीके घर आकर श्रीकान्तने देखा कि दरभंगेके महाराजके नातेदार पूर्णिया जिलेके जमींदार रामचन्द्रसिंह वहाँ अपने लड़केके साथ उपस्थित हैं। श्रीकान्तके अकस्मात् आगमनसे राजलक्ष्मी चौंक उठी। इसके बाद श्रीकान्त सचमुच ही उसे चाहता है कि नहीं, यह जाँच लेनेके लिए राजलक्ष्मीने उसके मनमें एक प्रबल ईर्ष्याका भाव जगानेकी चेष्टा की। ईर्ष्या तो प्यारकी कसौटी है। उसकी इस चेष्टाके भीतरसे उसकी व्यथा, उसका प्रेम और अनुनय फूट उठा। उसने जितना ही यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की कि वह श्रीकान्तको एक साधारण मेहमानके सिवा और कुछ भी नहीं समझती उसके सुख-स्वाच्छन्द्यका कुछ भी खयाल नहीं करती उतना ही उसके अनजानमें उसकी बातचीतसे, उसकी सैकड़ों छोटी-मोटी हरकतोंसे—आचरणसे—

उसके हृदयकी गुप्त बात ही जाहिर हो पड़ी। उसकी उदासीनता या सापत्नीकी भावमें था करुण आग्रह, उसके छिपे हुए भावावेशकी भावमें थी अत्यन्त-दीन प्रेमकी भिक्षा। बड़ी बहनानीके भयसे श्रीकान्त उसे प्रयाग ले जानेको राजी नहीं है, यह देखकर राजलक्ष्मी रोषसे, अभिमानसे, बदला लेनेके लिए उसी दिन बग्घीमें बैठकर बाहर चली गई। श्रीकान्तको वह दिखाना चाहती है कि यह ऐश्वर्यमय जीवन उसने श्रीकान्तके लिए ही त्याग दिया था और इच्छा करे तो फिर उसे शुरू कर सकती है। किन्तु इस रोष-दीप्त इस अभिमानके भीतरसे उसकी अत्यन्त दुर्बलता ही प्रकट हो पड़ी। वह किसीकी जर-खरीद दासी नहीं है, यह उसने श्रीकान्तके आगे अहंकारके साथ ही कहा था। किन्तु श्रीकान्तके साधारण गरम पड़नेपर उसका सारा अभिमान सारा दर्प पल भरमें कपूरकी तरह बिलकुल विला गया।

इन सब चित्रोंमें शरत्चन्द्रकी शिल्प-निपुणताका चरम विकास यहींपर हुआ है, जहाँ अर्धचेतन प्रेम-वेदना सचेतन संस्कार और अनुभूतिके बाँधको तोड़कर बाहर निकल पड़ी है। यहाँ राजलक्ष्मीके चरित्रकी एक और विशेषताकी खासकर उल्लेख करना होगा। उसमें एक असाधारण शक्ति और एक असीम दुर्बलताका अति सुन्दर समावेश हुआ है। उसकी शक्तिका अन्त नहीं है, उसकी आकांक्षाकी समाप्ति नहीं है। उसने बहुत धन कमाया है, बहुत कुछ अनायास ही त्याग कर दिया है। श्रीकान्तको पानेके लिए उसने सारी सम्पत्तिका त्याग कर दिया है, और इस अमोघ शक्तिशालिनी रमणीने अपनी अधिकार-आकांक्षाको भी भी एकदम विसर्जन कर देनेकी चेष्टा की है। इसीसे जिस दिन उसकी दृष्टिमें इस लोकका सब पावना तुच्छ हो गया, उसी दिन उसने श्रीकान्तको त्याग करना चाहा। गहरी निराशासे श्रीकान्तने सच ही कहा है—"राजलक्ष्मीमें असीमा शक्ति है। इस विपुल शक्तिको लेकर वह पृथ्वीपर कैसे बराबर अपनेहीको लेकर खेलती चल रही है। एक दिन इस खेलमें मेरी जरूरत हुई थी। उसकी उस एकाग्र वासनाके प्रचण्ड आकर्षणको रोकनेका बूता मुझमें नहीं था हार मानकर—सिर झुकाकर आया था। आज इसका चित्त इस लोकके सभी पावनों (प्राप्य) को तुच्छ करके आगे बढ़नेका उद्यत हुआ है। उसकी राहको रोककर खड़े होनेको जगह नहीं है। अतएव अन्यान्य आवर्जना (कूड़े-कचरे)

की तरह मुझे भी पथके एक किनारे अनादरके साथ पड़ा रहना होगा, उसमें चाहे कितनी वेदना हो, उसे अस्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है।"

चतुर्थ पर्वमें राजलक्ष्मीके साथ कमललताकी भेंट हुई। कमललताकी कहानी आश्चर्यजनक है। उसका माधुर्य सहजहीमें पाठककी दृष्टिको अपनी ओर खींचता है। कमललताका चरित्र कलंक-लिप्त होने पर भी उसमें उदारता, महत्ता और स्वार्थहीनताका अभाव नहीं है। लेकिन तो भी यह चित्र शरत्चन्द्रकी शिल्पकलाका खरा नमूना नहीं है। कारण, इस रमणीके चरित्रपर शरत्चन्द्रकी नायिकाओंकी विशेष छाप नहीं है। कमललता विधवा है। घरके एक कर्मचारीके साथ अवैध प्रणयसे वह एक सन्तानकी जननी हो गई और इस कलंकको स्वीकृत कर लेनेके लिए वह वैष्णवी हो गई। किन्तु हम देखते हैं कि इस नये धर्मकी दीक्षा लेकर भी सन्तानको जन्म देकर वह फिर अपने पहलेके प्रेमीको ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हुई, यद्यपि उसके नवीन धर्मके मान लेनेपर वही आदमी उसका स्वामी कहा जाना चाहिए। उसे प्रत्याख्यान करनेका कारण उपन्यासमें स्पष्ट नहीं हुआ। जान पड़ता है, इस आदमीके चरित्रकी कर्कशताने ही कमललताको उसके प्रति श्रद्धाहीन या उससे विमुख कर दिया है। किन्तु प्रवृत्ति और बुद्धिके बीच जो द्वन्द्व या संघर्ष शरत्चन्द्रकी अन्यान्य नायिकाओंकी विशेषता है, उसका आभास भी कमललतामें नहीं। गौहर गोसाईंने इस रमणीके लिए अपने जीवनको व्यय कर दिया। उसकी अन्तिम रोग-शय्यापर कमललताने ऐसी सेवा की जैसी कोई भी नहीं कर सकता। किन्तु इस सर्वत्यागी प्रणयीको कमललताने क्यों ग्रहण नहीं किया, इसका भी कोई कारण खोजे नहीं मिलता। श्रीकान्तके ऊपर उसे अनुराग है। शायद यह अनुराग प्रेमके रूपमें बदल जाता, किन्तु दोनोंके बीचमें राजलक्ष्मी मौजूद है। किशोर अवस्थाके वैधव्यसे आरम्भ करके द्वारिकादास बाबाजीके आश्रमसे निकाले जाने तक कमललता बहुत-सी अद्भुत अभिज्ञताओंके बीचसे गुजरी है। इससे उसके चित्तको दारुण पीड़ा पहुँची है, उसका चित्त उच्छ्वसित हुआ है किन्तु उसके अन्तस्तलमें जो रहस्य मौजूद है, उसे ग्रन्थकारने सम्पूर्ण रूपसे नहीं खोला।

राजलक्ष्मीके साथ सावित्रीकी बहुत कुछ समानता है। दोनों ही विधवा हैं, दोनोंमें ही हिन्दू विधवाके जन्मसे ही उपार्जित या प्राप्त संस्कारोंके साथ नारी-

हृदयकी स्वतः प्रकट होनेवाली प्रणयकी आकांक्षाका शोषण हुआ है । किन्तु शरत्की दृष्टिमें सावित्रीका चित्र बहुत कुछ निर्दोष उतरा है — उसमें वह वेदना वह तीव्रता नहीं है । इसका कारण यह है कि सावित्रीके जीवनकी व्यथाका सूत्र बाहर है । सरोजिनी सतीशको खूब ही प्यार करती थी । यह बात नहीं है कि सतीश सरोजिनीको प्यार न करता हो, किन्तु उसके प्रति सतीशके मनमें गहरा स्नेह होनेका ऐसा कोई प्रमाण भी नहीं है । सावित्री अगर चाहती तो सतीशसे उसका मिलन बन सकता है सम्पूर्ण सार्थक हो सकता । सावित्रीका पाना संभव न होनेपर ही सतीश सरोजिनीके प्रेमको स्वीकारकर, बदलेमें प्रेम देकर उसको प्यार करनेको राजी हुआ । दूसरेके प्रेमयाचकको मानने में — प्रेम करनेमें एक गहरी व्यथा है । इस हिसाबसे सरोजिनीका जीवन एक ट्रेजेडीमें समाप्त हो सकता था । किन्तु कविकी दृष्टि उधर नहीं गई । अपेक्षाकृत उसका प्रेम यथास्थान मंडित हुआ और सावित्रीका असीम प्यार एकदम व्यर्थ हो गया । जो गौरव पार्वती और राजलक्ष्मीने पाया था, वह उससे भी वंचित हुई । अब व इस व्यथाके लिए उसकी केवल आंशिक या थोड़ी-सी ही जिम्मेदारी है । उसकी भाँति ऐसा सर्वस्व किसने खोया है ! अन्तमें और स्वप्नमें सतीशका हाथ चूमकर—उसके जीवनकी घटनाको मनमें बैठा असम्भव की, किन्तु यथार्थ व्यथा स्नेहके स्रोत वाक्योंमें कैसे भरी जा सकती है !

सत्यभामाकी समस्या सबसे गुरुतर है । उसका प्रश्न हिन्दू समाजके विचारक नहीं है । वह हिन्दू समाजकी नहीं है । वह ब्रह्मसमाजी है । सुना है जिस धर्म-नियमकी बात कर सकती थी वह उसके प्रभावसे प्रभावित नहीं है । अतएव जो प्रश्न उठाया है, वह किसी खास धर्मके विरुद्ध नहीं है । वह तो मानव सभ्यताकी बहुत बातको लेकर उत्थापन पेश करता है । पहले मर्दोंके बहु-विवाह प्रचलित थे अब भी बहु-विवाह बिल्कुल उठ नहीं गये । किन्तु वर्तमान युगकी सभ्यता और नीतिकी मूल बात यह है कि नारी केवल एक ही पुरुषकी पत्नी हो सकती है । किसी समय द्रौपदी पाँच पतियोंकी पत्नी होकर सती कहलाई थी परन्तु इस समय ऐसी बातकी कल्पना करना भी बीभत्स है । किन्तु समाजके विधि-नियममें सभी नारियोंके मनको बाँध रखना सम्भव नहीं है । इब्सेनने स्वाभाविक ढंग नाटकमें एक रमणीसे प्रश्न किया है—" Oh! how silly the law is! why can't I marry them both.

Well, I love them both."* अचलाके जीवनकी व्यर्थताका मूल भी इसी स्थानपर है। उसने जिसपर श्रद्धा की उसे सम्पूर्ण हृदयसे प्यार नहीं कर सकी, और जिसपर कभी श्रद्धा नहीं कर सकी उसीके प्रति अकल्पित भावसे उसका मन आकृष्ट हो गया। जिन दोनों बन्धुओं या मित्रोंने उसके जीवन-नाट्यमें इतनी जगहपर अधिकार कर लिया था, वे एकदम परस्पर विपरीत प्रकृतिके थे। एक आदमी पर्वतकी तरह चुप रहनेवाला अचल और आवेगहीन और दूसरे आदमीकी प्रकृति थी झरनेके उच्छ्वास या ज्वारकी तरह दुर्निवार—रोक न सकनेवाली। एक आदमीके मनकी बात वह कभी जान नहीं पाती थी, और दूसरा आदमी प्रत्येक क्षणमें—हर बातमें—अपनेको निःशेष करके निवेदन करता था। अचलाकी सचेतन बुद्धिने जो कुछ समझाया, उसके भीतर स्थित अन्तरात्माने अज्ञात रूपसे ठीक उसके विपरीत प्रवृत्तिको प्रेरणा दी, जगाया। सुरेशकी नीचतासे अपनेको बुझाकर महिमको पति-रूपमें वरण करके वह अपनी ससुरालमें पतिकी गृहस्थी करने गई। वहाँ वह जब क्रमशः महिमके प्रति खीझ उठी तब जो स्नेह अकल्पित रूपसे उसके मनमें सुरेशके प्रति संचित हो उठा था वही प्रकट हो गया। जिस सुरेशको वह घृणा करती थी, उसीसे वह व्याकुल होकर कह उठी—'मैं तुम्हारे किसी काम नहीं आई सुरेश बाबू, लेकिन तुम्हारे सिवा मुसीबतमें काम आनेवाला कोई बन्धु नहीं है। तुम किसी तरह आकर बचाओ, इन लोगोंने मुझे यहाँ बाँध रखा है; ये मुझे कहीं जाने नहीं देंगे। मैं यहाँ मर जाऊँगी। सुरेश बाबू, तुम लोग मुझे ले जाओ यहाँसे—जिसे मैं प्यार नहीं करती उसकी घर-गिरस्ती करनेके लिए तुम मुझे यहाँ मत रख जाओ।" लेकिन बादको लज्जा और पछतावेसे उसका मुँह सफेद पड़ गया। पतिको छोड़कर ही उसने समझा कि पतिकी और उसका आकर्षण कितना गहरा है। इसके बाद उसने पत्नीके उचित आसनको सेवाके द्वारा फिर प्राप्त किया।

किन्तु पतिको वह चाहे जितना निकट और गहराईके साथ पावे, उसका मन प्रेमके भिखारी सुरेशकी ओर भी आकृष्ट हुआ। एक दिन जाड़ोंकी रातमें

---

* ओह! यह कैसा बेवकूफीका कानून है। मैं इन दोनोंसे विवाह क्यों नहीं कर सकती? मैं तो इन दोनोंको प्यार करती हूँ।

उनके सो जाने पर सुरेश चुपकेसे अचलाके कमरेमें गया और अपने ओढ़नेकी चादरसे सोती हुई अचलाकी देहको यत्न और स्नेहके साथ ढककर चुपचाप लौट आया। "आँखें मूँदे उस दुखी हुई प्यासी नारीका वेश स्पष्ट देखकर वह रोमांचित हो उठी। इस व्यवहारसे उसे असीम व्यथा मालूम हुई। वह इस कामको कुत्सित कहकर निन्दित करकर हजारों तरहसे अपमानित करने पर भी और अतिथिके प्रति गृह-स्वामीकी इस चौर-वृत्तिको वह कभी क्षमा नहीं करेगी—यह कहकर उसने बारंबार प्रतिज्ञा की, लेकिन तो भी उसका मन इस अभियोगमें किसी तरह उसका साथ नहीं दे रहा है, यह भी उससे छिपा नहीं रहा।" यह दो तरहका भाव ही तो अचलाके जीवनकी ट्रेजडी है। उसने जब महिमको पाया है, तब सुरेशके लिए अत्यन्त स्पष्ट उसके हृदयमें आसन प्रस्तुत रहा है और जब सुरेशको अपनी देह दी है तब उसका मन महिमके लिए प्यासा हो उठा है। वह जब महिमको लेकर वायुपरिवर्तनके लिए जानेको तैयार होने लगी, तब सुरेशके लिए उसका मन अत्यन्त व्यग्र हो उठा। सुरेशको देखकर उसकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये और उसने उससे साथ चलनेके लिए आग्रहके साथ अनुरोध किया। इसके बाद सुरेशने यद्यपि उसे उसके पतिसे जुदा किया तथापि वह सुरेशको नहीं छोड़ सकी। उसी विश्वासघातक, पर-स्त्री-लोलुप, नास्तिक, कापुरुषको लेकर उसने क्या किया और उसकी स्त्री होनेके मिथ्या गौरवका सहारा लेकर ही उसने नये सिरेसे जीवन-यात्रा शुरू कर दी। अगर उसके मनमें छिपे तौरपर सुरेशके लिए सच्ची ममताका अस्तित्व न होता तो वह एक मिथ्या नामके गौरवका सहारा लेकर इस तरह छिन्न-भिन्न करके अपनेको न बचा सकती। सौदामिनीको लेकर नरेन्द्रनाथ भागा अवश्य, किन्तु सौदामिनी उसके साथ नहीं रह सकी। इसमें पतिके प्रति आसक्ति तो थी ही, किन्तु उसकी अपेक्षा कहीं अधिक था नरेन्द्रनाथके प्रति सच्ची आसक्तिका अभाव। अचलाकी समस्या इससे कहीं गुरुतर थी। कारण, उसके मनमें अज्ञात रूपसे सुरेशके लिए एक प्रकारकी ममता पैदा हो गई थी। अपने मनके इस दुर्भेद्य रहस्यको अचला खुद भी अच्छी तरह नहीं समझ पाई और यही उसका जीवन बड़ा दुर्गम हुआ। उसने अपने प्रति यह कहकर क्षोभ प्रकट किया है कि "जिसे उसने किसी दिन कभी प्यार नहीं किया, वही उसका स्वामी है, क्या उसने इसी मिथ्याको ही सबसे बड़ा पाया?"

किसी दिन कभी प्यार नहीं किया।—किन्तु इस सुरेशकी मृत्युकी कल्पना करके ही वह सिहर उठी है। 'सुरेश अब उसे प्यार नहीं करता' यह बात सुननेके बाद उसे अपना जीवन शून्य या खोखला ही जान पड़ा है। 'सुरेश नहीं है; वह अकेली है—यह अकेलापन कितना बड़ा है, कैसा अपार है—यह खयाल बिजलीके वेगसे उसके मनके भीतर चमक गया। उसने रुंधे हुए गलेको प्रयत्नसे साफ करके कहा—"अब क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते. किसी समय मैं तुमको प्यार करती थी।" अचलाके जीवनमें एक मूलभूत असंगति थी। सुरेशका प्यार उसकी विडम्बना था, उसकी सम्पत्ति था, उसका संबल था। इसमें अगौरव रह सकता है किन्तु इसमें मिथ्याकी प्रतारणा नहीं है। नारी-हृदयका जो यह विरोध और असंगति है, उसके विश्लेषणमें ही शरत्चन्द्रकी विशेषता है।

देना-पावना'की षोडशीमें भी यही द्वन्द्व यही विरोध और यही एक व्यर्थता है। एक तो क्योंकि प्रेमसे अलकाके साथ ब्याह करके जीवानन्द नवपरिणीता स्त्रीको त्याग करके ब्याहकी रातको ही भाग खड़ा हुआ। इसके बाद बीजगाँवके जमींदारकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी होकर उसने बड़ी ही उच्छृंखलताके साथ जीवन-यात्रा शुरू कर दी। प्रजाको सताना अविरत मद्यपान और स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करना—यही उसका काम हो गया। संसारकी ऐसी विचित्र गति है कि उसीके इलाकेमें चण्डीगढ़ गाँवकी चण्डी देवीके मंदिरकी भैरवी हुई वही अलका जिसे वह एक दिन ब्याहकर छोड़ भागा था। भैरवी होनेके बाद अलकाका नाम षोडशी हो गया। जीवानन्द षोडशीके पिताको सताकर रुपए पानेकी चेष्टा कर रहा था और इसी अन्यायके विरुद्ध प्रतिवाद करनेके लिए षोडशी जीवानन्दके पास गई। वहीं जीवानन्दने उससे पहले चाहे रुपए और उसके बाद चाहा उसकी देहपर अधिकार। उसी रातको जीवानन्द खूब अस्वस्थ हो पड़ा। लाचार होकर उसने षोडशीको एक छोटी कोठरीमें बन्द कर रखनेका हुक्म दे दिया, कहा—कल इसके सतीपनेका विचार होगा। दूसरे दिन प्रातःकाल एक अद्भुत घटना हो गई। षोडशीके बापके कहनेसे मैजिस्ट्रेट साहब, बलपूर्वक पकड़ धकड़कर रोक रखनेके अभियोगकी जाँच करनेके लिए, वहीं आ पहुँचे। प्रेमकी आरती तो उस

समस्त भावनाओंसे इस दुर्दान्त पशुसे बदला ले सकती थी। किन्तु मैजिस्ट्रेटके प्रश्नके उत्तरमें उसने केवल यही कहा कि वह अपनी इच्छासे जीवानन्दके डेरेपर आई है और अपनी खुशीसे वहाँ रात भर रही है।

उसका यह व्यवहार जैसा आकस्मिक है वैसा ही अद्भुत। जिस पाखंडीने उसे व्यापक त्रास दिया, नारीके कौमार्यका जिसके मनमें करुणा नहीं उत्पन्न होगी, पति-पुत्रवतीके समीप जिसका नाम लेनेमें किसे कुछ भी संकोच नहीं होगा, जिसने उसे नारीकी चरम लांछनाके लिए घेर कर रखा था उस व्यक्तिकी रक्षाका उपाय उसके मनमें क्यों आया? और क्या केवल इतना ही? यह तो केवल निःस्वार्थ परोपकार नहीं है। यह मिथ्या स्वीकारोक्ति है—यह उसी नारी उस कलंकिनीकी बहुत गहरी वेदनासे हुआ दर्द, तभी जानेंगे कि चण्डी देवीकी यह भैरवी कुलक्ष्य है, घर त्यागमयी है। किन्तु जीवानन्दके लिए इसके सिवा और कोई उपाय ही न था। बहुत दिनोंकी सोई हुई अलका उस दिन जाग उठी थी। वह संन्यासिनी है, किन्तु नारी है। उसके निर्वासित यौवनका स्वाभाव, उसकी उभारी हुई प्रकृतिकी प्रबलता और धर्मकार्यकी आड़में यह रमणीहृदय एकान्तमें आत्मरक्षा कर रहा था। धीरे धीरे आदान-प्रदानके द्वारा उसके हृदयमें प्रेमका संचार होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। कारण, वह संसार-त्यागिनी संन्यासिनी है। समस्त मर्मोक्तिसे उसने बार बार अपनेको अलग कर लिया है। इसीसे उसके हृदयकी वृत्ति पुरानी स्मृतियोंके स्पन्दनसे जाग उठी। वह हिन्दू-रमणी है और भैरवी होनेकी एक बात यह थी कि उसे सचेत होना चाहिए। अतएव संन्यासिनी होने पर भी अलक्ष्य मानस पतिके प्रति उसके मनमें एक आकर्षण रहता ही और इस अज्ञात मनकी पुकारसे ही उस दिन उसने अपनी हानि करके अपने पतिको बचाया। संन्यासिनीके जीवनमें प्रेमका अवकाश नहीं रह सकता, किन्तु उसका नैसर्गिक मनस पतिकी स्मृति कैसे दूर हो!

जीवानन्दके एक जीवनके भीतर ये दोनों परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। वह हिन्दू भी है। इसीसे पतिके अपमानकी कामना वह कभी नहीं कर सकती। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जिस पतिका संग उसे नसीब नहीं हुआ, जो पहले ही उसमें अब छोड़कर चला गया, जिसने अपनी उच्छृंखल असंयत वृत्तिको चरितार्थ

करनेके लिए उसे कोठरीमें बन्द कर रखा था, उस पतिके प्रति उसके मनमें घृणा और वितृष्णा होना ही स्वाभाविक है। उस सम्पत्का उपकार करनेकी इच्छा होनेका कोई संगत कारण नहीं रह सकता। किन्तु मानव-मनकी गति विचित्र है। जिन्होंने मनुष्य-चरित्रकी आलोचना की है, वे कहते हैं कि यौन आकर्षण बिल्कुल ही व्यक्ति-निरपेक्ष (Impersonal) होता है। यह आकर्षण घृणा, वितृष्णा डाह आदि सभी वृत्तियोंके साथ मिलकर रह सकता है। प्रत्येकके जीवनकी गति एक खास दायरेमें सीमा-बद्ध है। इसलिए अलकाका मन भी पार्थिव जगतके अनुरूप होता है। अलका और अभया दोनों—ये दोनों हिंदू-स्त्री हैं। पतिके साथ इनका जो सम्बन्ध हुआ, उसे इन्होंने भगवानका दिया बन्धन मानकर ही ग्रहण किया। अतएव इनकी प्रेमकी आकांक्षा पतिसे ही लिपटी रहेगी—वह पति चाहे कितना घृणाके योग्य हो, चाहे जैसा दुश्चरित्र हो। इसके अलावा षोडशी सब कुछ त्याग देनेवाली संन्यासिनी है। अतएव त्याग करनेकी छोड़ देनेकी मानसिक अनुशीलन उसने धर्मकी तरह किया है। अपमानित, उपेक्षित-पीड़ित, मर्मविद्ध नारी-हृदयका एक चरम वैराग्य होता है, जिसका परिचय हमने 'गृह-दाह' के उपसंहारमें अचलामें पाया है। वही वैराग्य था संन्यासिनी षोडशीके हृदयमें। उसने जीवानन्दका स्पर्श किया कि उसीके साथ उसके भैरवी-जीवनकी भी समाप्ति हो गई। निर्जन कोठेमें बंद रहकर उसने जीवानन्दकी बात सोची, अपनी बात सोची, पिता तारादासकी बात सोची। सब कुछ विचारकर देखा, किन्तु उसका कोई कूल-किनारा नहीं पाया। उसने जिधर नजर डाली, उस केवल घोर अन्धकार ही देख पड़ा; ऐसा अन्धकार जिसका रूप नहीं है गति नहीं है, प्रकृति नहीं है। दूसरे दिन उसी अत्यन्त निराशाके बीच—जिसमें आश्वासनका नाम-निशान न था—मैजिस्ट्रेटने जब उससे प्रश्न किया, उस समय उसकी बदला लेनेकी प्रवृत्ति बिल्कुल ही गायब हो गई। उस न दूर किये जा सकनेवाले अन्धकारको भेदकर प्रतिहिंसा कौन-सा प्रकाश ला देगी! इस चरम वैराग्यके दिन उसने आत्म-हानिको मिलाकर—लेखा-जोखा करके—नहीं देखा। उसने अपना स्वार्थ बिल्कुल ही छोड़ दिया और जीवानन्दको पूरी तौरसे बचा लिया। उसने स्वयं जीवानन्दसे कहा था—"मेरे जो गुरु हैं, वह अभी हाथमें कुछ

बनाकर दान नहीं करते। इससे आज उन्हींके चरणोंमें इस तरह अपनी भक्ति देनेमें भी मुझे कोई रुकावट नहीं हुई। ”

ये जो दो परस्परविरोधी शक्तियाँ हैं, जिन्होंने मिलकर उसे इस चरम वैराग्यकी राहमें ठेला था, उसका संघर्ष उसके सारे जीवन भर चलता रहा। इसके बाद उसके साथ घनिष्ठ भावसे हैमकी और उसके स्वामी निर्मलका परिचय हुआ। उसने उनकी शान्त, सुनिभृत जीवन-यात्राका चित्र देखा। जो नारी उसके भीतर गहरी नींदमें सोई हुई थी, वह आज एकाएक आहट पाकर अँगड़ाई लेकर जाग उठी और उसे प्रबल भावसे संसारके सुख-दुःखमय साधारण मार्गमें खींचने लगी। “ इतने दिन उसने जीवनको जिस भावसे पाया उसी भावसे ग्रहण किया। भाग्यनिर्दिष्ट उसी धाराके भीतरसे ही षोडशीके जीवनके बीस वर्ष बहते चले गये हैं। इसे उसने भैरवीका जीवन मानकर ही बिना किसी संशयके ग्रहण किया है, एक दिनके लिए भी उसने इसे अपना बोझ नहीं सोचा। चण्डीदेवीकी पुजारिनके रूपमें वह निकट और दूरके बहुत-से गाँवों और जनपदोंके असंख्य नर-नारियोंके साथ सुपरिचित है। कितनी ही बेशुमार स्त्रियोंके—जिनमें कोई छोटी है, कोई बड़ी है और कोई हमजोली है—कितने ही प्रकारके सुख-दुःख, कितने ही प्रकारकी आशा-आशंकाओं, कितनी व्यर्थताओं और कितनी सुंदर आकाशकुसुम-सी असंभव कामनाओंकी वह मौन और निर्विकार साक्षी बनी हुई है। उन स्त्रियोंने देवीकी कृपा पानेके लिए कितने दिनोंसे अपनी कितनी ही बातें एकान्तमें धीमी आवाजसे उसके आगे कही हैं। उन्होंने अपने दुःखी जीवनके अत्यन्त गुप्त अध्यायोंको निष्कपट भावसे उसकी आँखोंके सामने खोलकर रख दिया है और प्रसादकी—अनुग्रहकी भीख माँगी है। यह सब उसकी नजरमें पड़ा है, केवल यही नहीं नजरमें पड़ा कि स्त्री-हृदयके जिस अन्तस्तलको भेदकर इन सब करुण अभावों और अनुयोगोंका स्वर उठकर उसके कानोंमें पहुँचा है। षोडशीने कभी किसी दिन दूसरोंके साथ तुलना करके अपने जीवनको नहीं देखा। उसकी आलोचना करनेकी बात भी कभी उसके मनमें नहीं उठी। तो भी उसी मनके भीतर गृहिणीपनेकी सब जिम्मेदारियों, सारे बोझ जननीके सब कर्तव्य सारी चिन्ताओंको जैसे कोई न-जाने कब, बहुत निपुण हाथसे सम्पूर्ण रूपमें सजाकर रख गया है। इसीसे

करनेके लिए उसे कोठरीमें बन्द कर रखा था, उस पतिके प्रति उसके मनमें घृणा और वितृष्णा होना ही स्वाभाविक है। उस सम्बन्धका उपचार करनेकी इच्छा होनेका कोई संगत कारण नहीं रह सकता। किन्तु मानव-मनकी गति विचित्र है। जिन्होंने मनुष्य-चरित्रकी आलोचना की है, वे कहते हैं कि यौन आकर्षण बिलकुल ही व्यक्ति-निरपेक्ष (Impersonal) होता है। वह आकर्षण घृणा, वितृष्णा, डाह आदि सभी वृत्तियोंके साथ मिलकर रह सकता है। प्रत्येकके जीवनकी गति एक खास दायरेमें सीमा-बद्ध है। इसलिए अन्नदादीदीका चित्त भी पार्थिव बन्धनके अनुकूल होता है। अन्नदा और अभया दीदी—ये दोनों हिन्दू-स्त्री हैं। पतिके साथ इनका जो सम्बन्ध हुआ, उसे इन्होंने भगवानका दिया बन्धन मानकर ही ग्रहण किया। अतएव इनकी प्रेमकी आकांक्षा पतिसे ही लिपटी रहेगी—वह पति चाहे कितना घृणाके योग्य हो, चाहे जैसा दुश्चरित्र हो। इसके अलावा पीछेकी सब कुछ त्याग देनेकी संस्कारिणी है। अतएव त्याग करनेकी, प्रेम देनेकी प्रवृत्तिका अनुशीलन उसने अच्छी तरह किया है। अपमानित, उपहास-पीड़ित, लांछित नारी-हृदयका एक चरम वैराग्य होता है, जिसका परिचय हमने 'गृह-दाह' के उपसंहार अध्यायमें पाया है। यही वैराग्य था संन्यासिनी षोडशीके हृदयमें। उसने जीवानन्दका स्पर्श किया कि उसीके साथ उसके भैरवी-जीवनकी भी समाप्ति हो गई। निर्जन कोठेमें बंद रहकर उसने जीवानन्दकी बात सोची, अपनी बात सोची, पिता तारादासकी बात सोची। सब कुछ विचारकर देखा, किन्तु उसका कोई कूल-किनारा नहीं पाया। उसने जिधर नजर डाली, उसे केवल घोर अन्धकार ही देख पड़ा। ऐसा अन्धकार, जिसके रूप नहीं है, गति नहीं है, प्रकृति नहीं है। दूसरे दिन उसी अत्यन्त निरापद मौके—जिसमें आत्मरक्षाका नाम-निशान न था—मैजिस्ट्रेटने जब उससे प्रश्न किया, उस समय उसकी अदम्य तेजस्वी प्रकृति बिलकुल ही गायब हो गई। उस न दूर किये जा सकनेवाले अन्धकारको भेदकर भविष्य कौन-सा प्रकाश पता देगी! इस चरम वैराग्यके दिन उसने आत्म-हानिको छिपाकर—छल-कौशल करके—नहीं रखा। उसने अपना स्वभाव बिलकुल ही छोड़ दिया और जीवानन्दको पूरी तौरसे बचा लिया। उसने स्वयं जीवानन्दसे कहा था—"मेरे जो गुरु हैं, वह अपने हाथमें कुछ

स्वीकार दान नहीं करते। इससे आज उन्हींके चरणोंमें इस तरह अपनी भक्ति देनेमें भी मुझे कोई संकोच नहीं हुआ।”

ये जो दो परस्परविरोधी शक्तियाँ हैं, जिन्होंने मिलकर उस एक चरम वैराग्यकी राहमें ठेला था, उनका संघर्ष उसके सारे जीवन भर चलता रहा। इसके बाद उसके साथ घनिष्ठ भावसे हैमन्ती और उसके स्वामी निमाईका परिचय हुआ। उसने उनकी शान्त, सुनियत जीवन-यात्राका चित्र देखा। जो नारी उसके भीतर गहरी नींदमें सोई हुई थी, वह आज एकाएक आहट पाकर अँगड़ाई लेकर जाग उठी और उस प्रबल मानव संसारके सुख-दुःखमय साधारण मार्गमें खींचने लगी। ‘इतने दिन उसने जीवनको जिस भावसे पाया उसी भावसे ग्रहण किया। आत्मनिर्लिप्त उसी भावके भीतरसे ही षोडशीके जीवनके दिन बढ़ते चले गये हैं। इसे उसने भैरवीका जीवन मानकर ही बिना किसी संशयके ग्रहण किया है; एक दिनके लिए भी उसने इसे अपना जीवन नहीं समझा। चण्डीदेवीकी पुजारिनके रूपमें वह निकट और दूरके बहुत-से गाँवों और जनपदोंके असंख्य नर-नारियोंके साथ सुपरिचित है। कितनी ही बहुप्रकार स्त्रियोंके—जिनमें कोई छोटी है, कोई बड़ी है और कोई हमउम्र है—कितने ही प्रकारके सुख-दुःख, कितने ही प्रकारकी आशा-भरोसे, कितनी व्यथाओं और कितनी सुंदर आकाशकुसुम-सी असंभव कामनाओंकी वह मौन और निर्विकार साक्षी बनी हुई है। उन स्त्रियोंने वर्षोंकी हृदय [illegible] कितने दिनोंसे अपनी कितनी ही बातें एकान्तमें धीमी आवाजसे [illegible] कही हैं। उन्होंने अपने दुखी जीवनके अनन्त गुप्त अध्यायोंको निकाल उसकी आँखोंके सामने खोलकर रख दिया है और प्रशान्ति—[illegible] माँगी है। यह सब उसकी नजरमें पड़ा है, केवल [illegible] स्त्री-हृदयके जिस अन्तस्तलको भेदकर इन सब [illegible] ऊपर उठकर उसके कानोंमें पहुँचा है। षोडशीने [illegible] साथ तुलना करके अपने जीवनको नहीं देखा। [illegible] भी कभी उसके मनमें नहीं उठा। तो भी उसी [illegible] जिम्मेदारियों, सारे बोझ, जनजीवनके सब कर्तव्य, [illegible] बान्ध कर, बहुत निपुण हाथोंसे सम्पूर्ण [illegible] है। [illegible]

न सीखकर भी वह रमणीके सब कामोंको उसीकी तरह निपुणताके साथ कर सकती है—ऐसा उसे जान पड़ा।"

अपने पतिको उसने स्पर्श किया और उसीके साथ उसके संन्यासिनी-जीवनकी समाप्ति हो गई। उसके पतिने अपने उच्छृङ्खल जीवनको छोड़कर उसके हाथोंमें अपनेको पूर्ण रूपसे समर्पण कर दिया। जीवानन्दके मुखसे अलका नामकी पुकार उसके सारे जीवनको मथकर उसके मर्मस्थलमें प्रवेश कर गई। जीवानन्द इस बातको समझ गया। इसीसे उसने षोडशीसे कहा—'तुम्हारा जोर मैं जानता हूँ। पुलिस-दफ्तर लेकर मैजिस्ट्रेट साहब तक एक दिन उसका नमूना देख गये हैं। तुम्हारी मा एक दिन तुम्हें मेरे हाथमें सौंप गई हैं यह अस्वीकार करना तुम्हारे बसकी बात नहीं है—इतना साहस तुममें नहीं है।" प्रेम और निष्ठाके मधुर दाम्पत्य जीवनका उल्लेख करके उसने आप ही कहा है "यह जो कल्लोलमयी भैरवीका पद है, जिस पद हेतु अनेक लोगोंमें नोंक-झोंक चल रही है और जिसके लिए आप लोगोंने ... मरने तक पेश किया है, उसे तो मैं आज पुराने जीर्ण वस्त्रकी तरह त्याग किये जा रही हूँ। इसकी शिक्षा मैंने कहाँ पर आज जानती हूँ। इसकी शिक्षा मैंने इसी समय पाई है। नारीके लिए यह कितनी बड़ी प्रवंचना है, यह मैंने उन लोगोंको देखकर ही समझ पाया है।" जीवानन्दके विरुद्ध उसने शिकायतोंको उत्थित किया है—...पाया है; किन्तु इससे जीवानन्दकी क्षति हो सकती है यह बात मनमें आते ही ...सारा मुखमण्डल राखकी तरह सफेद हो गया है।

किन्तु इतना करके भी, जीवानन्दकी स्त्री होकर वह संसारमें प्रवेश नहीं कर सकी; क्योंकि वह सर्व...मिनी संन्यासिनी है। अलकाको जो प्रयोजन था, वह षोडशीको नहीं है। जो ...से एक बार उखाड़ डाली गई है, वह फिर संजीवित न हो सकेगी। जो जीवन निष्फल हो गया है उसका कौन जीवनदाता! जीवानन्दने व्याकुल होकर प्रश्न किया—'संन्यासिनियोंके क्या सुख-दुःख नहीं है? पृथ्वीमें ऐसा क्या कुछ भी नहीं है जिससे वह सुखी हो?" षोडशीने इसके उत्तरमें कहा—"लेकिन वह तो आपके हाथमें नहीं है।"

...सिर हिला ... षोडशीने फिर जीवानन्दसे कहा—
"मैं संन्यासिनी हूँ। पृथ्वीपर ... तुम

मुझे क्यों छेड़ना चाहते हो ?" इस तरह दो परस्परविरोधी शक्तियोंके द्वन्द्वने षोड़शीके जीवनको भर रक्खा है। यह सच है कि बाहरकी घटनाके द्वारा वह परिपुष्ट हुआ है; किन्तु वह बिलकुल ही षोड़शीके हृदयकी चीज है। शरत्चन्द्रने यह भी दिखाया है कि बाहरसे इसकी मीमांसा या निर्णय करनेकी चेष्टा कितनी भ्रान्त है। षोड़शीके मनकी बात न समझकर निर्मल उसकी सहायता करने आया और उसकी वह चेष्टा आप ही आप धूलमें मिल गई। बैरिस्टर साहबकी यह अर्थहीन अनावश्यक चेष्टा इस कहानीकी एकमात्र असंगति है। जनार्दन राय, शिरोमणि आदिने षोड़शीको गाँवसे निकालकर मठ लेनेकी बड़ी कोशिश की। सब बेकार गयी। किन्तु षोड़शीकी यथार्थ हार उसके अपने मनसे ही हुई। इन लोगोंकी सारी चेष्टा केवल एक बड़े भारी तमाशेके रूपमें बदल गई। षोड़शीके जीवनकी सारी समस्या उसके अपने हृदयसे ही आई, जहाँ संसारके लिए उन्मुख रमणीकी आकांक्षा और सन्यासिनीके वैराग्यके बीच एक समर चल रहा था। इन दोनों विरुद्ध शक्तियोंने एक साथ मिलकर जीवानन्दको बचा लिया और इन्हीं दोनों शक्तियोंके फिर मिलनेपर जीवानन्द षोड़शीका हाथ पकड़कर नए मार्गके लिए आगे बढ़ा।

शरत्चन्द्रकी अधिकांश प्रेम-कहानियोंके मूलमें एक व्यथा, एक अतृप्ति मौजूद है। सौदामिनीने अपने पतिके चरणोंमें आश्रय पाया था, कुसुम वृन्दावनमें मिली थी, षोड़शीका हाथ पकड़कर जीवानन्दने अपना नया जीवन आरम्भ किया था किन्तु इन सब मिलनोंमें परिपूर्ण आनन्द नहीं है। जिस हैपी एंडिंग (Happy ending) या सुखान्त मिलन कहा जाता है, वह केवल 'दत्ता', 'चन्द्रनाथ', 'नव विधान' और 'परिणीता' के उपसंहारमें हमें मिलता है। ये उपन्यास शरत्चन्द्रकी अन्यान्य रचनाओंसे कुछ भिन्न हैं। 'परिणीता' की कथाका पहले उल्लेख किया जा चुका है। अब 'दत्ता' की आलोचना करनी होगी। शरत्चन्द्रके अनेक उपन्यासोंके सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। किन्तु 'दत्ता' की श्रेष्ठताके बारेमें सबका एक मत है। इसने समानरूपसे सभी श्रेणियोंके पाठकोंको आनन्द दिया है। 'श्रीकान्त', 'गृहदाह' आदि उपन्यासोंकी आख्यायिकाके साथ इसके कथाभागका सादृश्य नहीं है; किन्तु इसकी नायिकाके मनमें भी वही एक ही प्रकारका द्वन्द्व चलता रहा है,

यद्यपि इस द्वन्द्वमें सामाजिक नीतिका कोई प्रश्न या समस्या नहीं है। विजया नरेन्द्रनाथको चाहती है और अपने प्रेमसे उसको वर लेना चाहती है। किन्तु अनेक कारणोंसे वह किसी तरह भी इस प्रेमको अच्छी तरह प्रकट नहीं कर सकती। एक तो सारे संसारको भूला हुआ भोला नरेन्द्रनाथ कुछ समझता नहीं है। इसके सिवा बहुत-सी गलती बाहरसे आई है। रासबिहारी और विलासबिहारीके नीच चरित्रसे वह अत्यन्त घृणा करती है। किन्तु बापके पत्रसे रासबिहारी है उसका अभिभावक और विलासबिहारी होगा उसका पति। इन दोनोंकी बातोंमें आकर, इच्छा न रहनेपर भी, उसने नरेन्द्रनाथको गृह-हीन कर दिया। किन्तु पहले ही कहा जा चुका है कि बाहरी शक्तिके साथ व्यक्तिके द्वन्द्व या संघर्षका चित्र शरत्चन्द्रने कहीं नहीं चित्रित किया। उनके उपन्यासोंमें बाहरी शक्तिने रूप ग्रहण किया है मानवके मनमें। उसीसे 'दत्ता' में बाहरी शक्तिकी ताड़ना बिलकुल गौण है, मुख्य वस्तु है विजयाके मनका द्वन्द्व। वह नरेन्द्रनाथको समझाना चाहती है कि आपकी भलाईके लिए जो उसकी सम्पत्ति ले ली है सो और एक संकटमें पड़कर। उसने माइक्रोस्कोप खरीदना चाहा है किन्तु इसके द्वारा उसने यही बात कहना चाही है कि यद्यपि उस माइक्रोस्कोपकी जरूरत नहीं है, पर वह इसकी मारफत नरेन्द्रनाथका काम आकर अपनेको सार्थक कर लेना चाहती है। वह जो आप न खाकर नरेन्द्रनाथको खिलाना चाहती है यह साधारण भद्रता या शिष्टाचार भी नहीं है, साधारण स्त्रीजातिका आचरण भी नहीं है। नरेन्द्रनाथके इसीके साथ भोजन करनेमें ही उसके जीवनकी सबसे बड़ी सार्थकता है। एक बार उसने पराये घरमें नरेन्द्रनाथको देखकर भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया—जैसे उसे वह जानती-पहचानती ही नहीं। नरेन्द्रनाथ इस अवहेलनाका कारण नहीं समझ सका। किन्तु विजयाने इस प्रकार यही कहना चाहा है कि यह अवज्ञा नहीं है, यह असहना नहीं है, बल्कि नरेन्द्रनाथ जो उसकी अवहेलना करके अन्य रमणीपर आसक्त हो रहा है, उसीके विरुद्ध यह गर्विता अनादृताका अभियोग है। नरेन्द्रनाथने जब उसका हाथ पकड़ कहा था—"सचमुच ही अगर यह अभिमान था या गलत खयाल तुम्हारे मनमें आया था तो तुमने कदम एक बार मुझसे क्यों नहीं कह दिया?" किन्तु यही तो नारी-जीवनका चरम प्रश्न

और श्रेष्ठ माधुर्य है। हृदयके भीतर गुप्त प्रदेशमें जो आकांक्षा जाग उठती है, उसे वह किसी तरह मुँहसे प्रकट नहीं कर सकती—दुनिया भरका सारा संकोच, सारी लज्जा उसका गला पकड़ लेती है। विजयाके हृदयकी आकांक्षाका संघर्ष उसकी धर्म-बुद्धिके साथ नहीं है—उसकी नारीजनोचित लज्जा, संकोच और दर्पके साथ है। इसमें दुविधाकी जीत नहीं है—बाहरकी और भीतरकी सारी बाधाको पराजित करनेके कारण यह मिलन अपूर्व माधुर्य-रससे भर उठा है।

४—शरत्-साहित्यमें नारी

जननीका स्नेह

शरत्‌चन्द्रने प्रेमकी अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उन सब चित्रोंकी बात पहले की जा चुकी है। किन्तु इसके अलावा पारिवारिक जीवनके सुख-दुःखकी बातें भी उन्होंने लिखी हैं। जो उस क्रूर कौशलसे काम लेनेवाले धर्मध्वजी लोग सामाजिक और पारिवारिक जीवनमें विष घोल देते हैं, उनके चित्र शरत् बाबूने निपुणताके साथ अंकित किये हैं। वेणी घोषाल, रासबिहारी, जनार्दन राय, स्वर्णमंजरी दिगम्बरी नयनतारा आदि कितने ही निष्ठुर, कपटी, निर्मम चरित्रोंकी उन्होंने सृष्टि की है। किन्तु इन्हींके पास उन्होंने और एक श्रेणीके नर नारियोंकी सृष्टि की है जिनके स्नेह और ममताकी कल्याणमयी किरणोंके पड़नेसे सारा संसार उज्ज्वल हो उठा है। दिगम्बरी नीच प्रकृतिकी और स्वार्थकी लोभमें रहनेवाली नारी है। उसके हृदयमें स्नेह और ममताका लेश नहीं है। किन्तु उसकी कन्या नारायणीके हृदयमें अपार स्नेह है। जनार्दन राय धनी जमींदार हैं। शिरोमणि उनसे भी अधिक दुनियादार ब्राह्मण पण्डित हैं। इन्हींके साथ कचरी-मठमें और एक आदमी रहते थे, जो जनार्दन रायकी तरह धनका गौरव तो नहीं कर सकते और शिरोमणिकी तरह कर्णभेद ब्राह्मण भी नहीं हैं। वह एक मुसलमान फकीर हैं। उनका मन बुद्धिसे उज्ज्वल है, स्नेह और करुणासे भरपूर है। जनार्दन कपट और कुबुद्धिकी प्रतिमूर्ति है। पर दयालके उतनी बुद्धि नहीं किन्तु हृदय है। ग्राम-समाजके सारे कुचक्र-चक्रका केन्द्र है वेणी घोषाल और अपने सारे भाग्यका सुधा-कलश हाथमें लिये हुए हैं उसकी माता विश्वेश्वरी।

शरत्‌चन्द्रने रमणीकी प्रेमकी भावनाओंको रूप दिया है; किन्तु इसके

साथ उन्होंने नारी-हृदयके वात्सल्यके भी बहुत-से चित्र खींचे हैं। इनमें भी उनकी विशेषता प्रकट हो उठी है। उन्होंने वात्सल्य रसके सहज साधारण चित्र अधिक नहीं अंकित किये। जननीका जो स्नेह बहुत-सी बाधाओं और विघ्नोंको लाँघकर प्रकट हुआ है उसीको उन्होंने माना ही है। एक चीज प्रायः ही देखी जाती है। वह यह कि उनके भेद विचारमें माताका स्नेह अपने गर्भसे उत्पन्न सन्तानके लिए उतना नहीं उमड़ता, जितना कुछ दूरका सम्बन्ध रखनेवाले पुत्रस्थानीय आत्मीयके लिए। नारायणी अपने पुत्र गोविन्दको प्यार न करती हो यह बात नहीं है; किन्तु उसके चरित्रकी विशेषता यही है कि उसके लिए गोविन्द और राममें कोई भेद नहीं रहा। बेनी, रमेश और रमाके बीच [illegible] अभाव न था किन्तु विश्वेश्वरीके हृदयमें इन सभीने बिना किसी विरोधके जगह पाई है। [illegible] भवानीका सौतेला बेटा है; किन्तु विमाता और सौतेले बेटेमें स्नेहका बन्धन ऐसा सुदृढ़ था कि निमाई रायकी कुबुद्धि मिलकर भी उसे शिथिल न कर सकी। मँझली दीदी हेमांगिनीका मातृस्नेह उसकी निष्ठुर बड़ी जिठानीके अभागे भाईके ऊपर वर्षित हुआ है।

प्रणय-चित्रकी तरह इस मातृस्नेहके चित्रणमें भी मेरा निपुणता उन्हीं चित्रोंमें परिलक्षित हुई है, जिनमें स्वार्थनिहित प्रवृत्तिसे बाधा उपस्थित हुई है। जहाँ नारीकी स्वाभाविक मातृस्नेहमें बाधा आती है, वहाँ मिथ्या समर्थके साथ साथ एक मिथ्या उपद्रवकी भी सृष्टि हुई है। अमूल्यधनको बिन्दो जैसे प्यार करती थी अन्नपूर्णा भी वैसे ही प्यार करती थी। बिन्दो जानती थी उसके जेठ देवतुल्य मनुष्य हैं, और बड़ी मालकिन (जिठानी) के साथ वह चाहे जितना झगड़ा करे, उनपर भी उसकी यथेष्ट श्रद्धा थी। इन दोनोंकी आर्थिक अवस्था चाहे जा रही हो, कहानी जिस समय शुरू हुई है उससे रुपए-पैसेकी कमीका कोई चिह्न नहीं देखा जाता। अतएव यथार्थ कलह और मनमुटावके लिए कोई अवकाश था, ऐसा नहीं जान पड़ता। अमूल्यधनकी शिक्षाके सम्बन्धमें एक मिथ्या संघर्ष इस बातको लेकर पैदा हुआ कि उसकी शिक्षाकी विधि-व्यवस्था कैसी हो, जिसमें आगे चलकर दस आदमी उसकी प्रशंसा करें—उसका सम्मान करें। अमूल्य धनकी शिक्षाके मामलेमें अन्नपूर्णा तटस्थ या [illegible] नहीं हो सकती। अतः बिन्दोने उनपर यह अद्भुत अभियोग लगाकर कि वह

पक्षेका सत्यानाश करने बैठे हैं, एक भारी झगड़ा ठान दिया। किन्तो अत्यन्त उग्र स्वभाव है जरासेमें रूठ जाती है। अतएव क्रुद्ध होने पर उसका आचरण अगर अस्वाभाविक-सा हो जाय तो इसमें विस्मित होनेकी कोई बात नहीं। किन्तु जिस साधारण कारणसे किन्तो और अपूर्वमें विच्छेद हो गया—बखान हो गए वह इतना तुच्छ था कि वह किन्तोके लिए भी अस्वाभाविक जान पड़ता है। और चाहे जो हो, किन्तो नासमझ नहीं थी। अतएव अमूल्य धनकी मा और अपने परम श्रद्धाभाजन जेठका अपमान करना उसके लिए बिलकुल ही असम्भव था। इस कहानीमें यथार्थ प्रेम और विच्छेदके लिए अवकाश नहीं है। इसीसे किन्तोका मातृस्नेह जो बापको नौंचकर फूट उठा है, वह एकदम मिथ्या और बेबुनियाद है।

चाई विश्वेश्वरी रमा और रमेशके प्रति अपने मनमें जो स्नेह रखती थीं, उसमें थोड़ी-सी विशेषता है। यती उनका इकलौता बेटा है और उसके लिए उनका मन सदा शंकित रहता है। रमेश कहीं वेणीका असम्मान करके उसे निमन्त्रित न करे, समाजके मुखियाके रूपमें उस उसके योग्य आसन न दे, इस डरसे उन्होंने रमेशसे अनुरोध किया कि वह वेणी आदि समाजके मुखियासे कहकर अपने पिताके श्रेष्ठकी साराकी व्यवस्था करे। रमेशन पर इस पर अपनी असम्मति बनाई तब वह उसे टोककर कह उठीं—"लेकिन यह भी तो तुमको जानना चाहिए था रमेश, कि अपनी सन्तानके विरुद्ध म नहीं जा सकती।" रमाकी मौसी उनके घर आकर उन्हें हजारों कटु वचन कह गईं। उन्होंने उसके जवाबमें कुछ नहीं कहा, इस आशंकासे कि कहीं इस चीजके मुखसे सबसे पहले उनके अपने बेटेके कर्मकी बात ही न निकल पड़े। किन्तु रमा और रमेशके लिए इनका स्नेह अलग था। रमेशके साथ वेणीकी चिरन्तन शत्रुता थी और रमाके साथ भी उसका सदा सौहार्द नहीं था। इसीलिए वेणीकी मा होनेके कारण रमा और रमेशके साथ विश्वेश्वरीके स्वाभाविक अपनत्व तो था ही नहीं बल्कि विरोध था। किन्तु वह ग्राम-समाजकी सारी हीनता और संकीर्णतासे बहुत दूर थीं। इसीसे, रमेशके पिताके श्राद्धके समय में रमाकी कोई सहायता न कर सकीं—यह जानकर भी उन्होंने रमेशका सारा काम शुरू कराया। रमाकी यह भक्ति माकी तरह ही

नहीं थीं, यथार्थमें मा थीं। रमाके ऊँचे आदर्शको मर्यादा वह समझती थीं। रमाके हृदयकी वेदनाका भी अनुभव करती थीं। किन्तु इस चित्रमें एक प्रधान दोष है। वह यह कि विन्ध्येश्वरीमें मनुष्योचित दुर्बलता नहीं है। केवल एक बार उन्होंने रमेशको स्मरण करा दिया था कि वह वेणीकी मा हैं और वह पुत्रके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकतीं किन्तु उनके किसी भी आचरणमें सांसारिक संकीर्णताका लेशमात्र नहीं देख पड़ता। उनके मनके भीतर किसी तरहका द्वन्द्व चल रहा है — ऐसा आभास भी कहीं नहीं है। मानव मात्रके लिए जो सब प्रकारसे वांछनीय है उस देशमें वे अनायास ही कर गई हैं। वह अशरीरी देवता बन गयी हैं, रक्त-मांसके बने मनुष्यकी कमजोरियोंसे वह परे हैं। शरत्चन्द्र प्रायः कभी आदर्श मनुष्यकी सृष्टि नहीं करते – कोई भी श्रेष्ठ वस्तुतान्त्रिक या यथार्थवादी साहित्यिक नहीं करता। कारण मनुष्यके जीवनका धर्म ही भ्रान्ति और असंगति है। इन्हें बाद देकर कोई श्रेष्ठ यथार्थ चित्र ही अंकित नहीं किया जा सकता। शरत्चन्द्रकी रचनाकी प्रधान विशेषता यही है कि उन्होंने नारी-हृदयकी दुर्बलताओंको अनन्त अक्षय सहानुभूतिके साथ समझा था। परन्तु विन्ध्येश्वरीके चित्रमें किसी दुर्बलताका आभास भी नहीं है। वह सभी सद्गुणोंकी प्रतिमूर्ति हैं। उनके आगे हम श्रद्धासे सिर नवाते हैं किन्तु कभी ममता उनके प्रति हमें नहीं होती। कारण साथ-साथ यह बात भी मनमें आती है कि वह पृथ्वीसे बहुत ऊपर हैं किसी स्वर्गकी रहनेवाली हैं; धरतीकी धूल इन्हें स्पर्श नहीं कर सकती।

'अरक्षणीया' में ज्ञानदाकी चाची खूब साधारण प्रकारके मनुष्योंमेंसे थी। विन्ध्येश्वरीके साथ उसकी तुलना ही नहीं हो सकती—वह काम करना नहीं पसन्द करती थी, उपन्यास-कहानी पढ़कर गपशप करके उसका सारा समय बीतता था। उसीके सामने उसकी बदनसीब देवरानी और उसकी कन्याके ऊपर जो निष्ठुर लांछना और अपमानकी प्रतिदिन वर्षा होती थी उसके विरुद्ध उसने थोड़ी-सी भी आपत्ति नहीं की—उन बेचारियोंकी सुख-सुविधाके लिए उसने रत्ती भर कष्ट नहीं स्वीकार किया। उसके चरित्रमें महत्त्वका लेशमात्र नहीं है। किन्तु वह कर्तव्यमें कुण्ठ, स्वार्थत्यागमें अक्षम, आलसी होकर बिलकुल हृदयहीन नहीं थी। उसके भावी दामाद अतुलने निःसहाय ज्ञानदा और उसकी

मामाके साथ जो रूखा व्यवहार किया था, उसका प्रतिवाद उन्होंने किया। ज्ञानदाकी करुण प्रेम-भिक्षाको अग्राह्य करके अतुल कह उठा—"सुन ली छोटी मौसी इनकी बातें! कैसी घोर लज्जाकी बात है!" स्वर्णमंजरीने ज्ञानदाको कुछ आश्वासन कहा—"रसोईघरकी नौकरानीकी ये बातें! यह घोर अविचार है।" इन दोनों पुत्रोंके इस निर्मम परिहासको अग्राह्य करके छोटी बहूने कहा—"घोर अविचार होनेहीसे तो बचाव है बेटा। नहीं तो और कोई कसर होता तो माथा फूटकर अबतक टुकड़ेसे पट जाती, अतुल।" स्वर्णमंजरीके अभागिन कुमारी ज्ञानदाको अधिक अपमानित करनेपर जोर करके मुँहपर प्रतिवाद करनेका सत् साहस उसमें नहीं था, किन्तु छिपकर उसे सान्त्वना देनेकी चाह उसमें भी है।

ज्ञानदाकी मौसी (पोड़ाकपाल या जली कलमी) का चरित्र विकट था, और उससे भी अधिक विकट उनके उस मुखकी हँसी थी। उनमें किसी तरहकी शिक्षा और संस्कृतिका लेश न था। लड़ाई-झगड़ा करनेमें वह असाधारण निपुण थीं। कोई कटु या रूढ़ बात उनके मुँहमें अटकती न थी। किन्तु उसकी विकट बातके भीतर फल्गुनदीकी * गुप्त धाराकी तरह स्नेहकी धारा सदा प्रवाहित रहती थी। अपने कपटी नीच-हृदय स्वामीके आचरणका उसने तीव्र प्रतिवाद किया है; उसने असहाय विधवा और उससे भी बढ़कर असहाय उसकी कन्याको लांछना और अपमानसे बचानेकी चेष्टा की है। उसने ज्ञानदाकी धोखेबाजीका तिरस्कार अवश्य किया है किन्तु इसी निरुपाय स्त्रीकी चिकित्साके लिए अपना एक मात्र गहना गिरवी रख दिया है। उसकी हँसी विकट है, किन्तु उसके हृदयके भीतर राम-पक्षके आँसू भी जमा थे जो उज्ज्वल, मधुर और पवित्र थे।

त्रिलोचनदीका अपना पुत्र बनी गोपालकी नौकरीके साथ उलझना पड़ता था। लेकिन यह ऐसी महत् थी कि बनी पारसकी भूमि स्वभाव उनके लिए और स्वभाव या बाधा नहीं पैदा कर सका। मातङ्गीके बारेमें भी यही बात लागू होती है। उसकी असली मा उस स्वार्थसिद्धिकी चर्चामें दर गयी रहती थी। इसके अलावा उसका स्वामी त्रिलोचन भी बुद्धिमान और होशियार आदमी

* फल्गुनदी गयाजीमें है।

था। वैमात्र भाईके प्रति अविचार भले ही न करे, उसे पालकर सुविधा करनेकी इच्छा उसकी बिलकुल न थी। इधर राम कुछ ऐसा उत्पाती लड़का है कि पूरे तौरपर उसका पक्ष लेना भी कठिन है। किन्तु नारायणीका स्नेह इन सब बाधा-विघ्नोंकी परवाह न करके उमड़ पड़ता है। रामके सारे उत्पातोंको उसने स्नेहके आवरणमें ढक रखा है उसे कभी सजा देकर वह बारबार पछताती है अपनी सगी माकी निष्ठुरतासे उसने अपने इस शिशु देवरको बचा रखा है। किन्तु अन्तमें राम जब मांको चोट पहुँचाकर अपमान किया, तब मौका पाकर श्यामलाल और दिगम्बरीने रामको उससे अलग कर दिया। रामने खाया नहीं, यह जानकर रोग-शय्यामें पड़ी हुई नारायणी अपने मुँहमें पथ्य नहीं डाल सकी और अन्तको उसने अपने आप रसोई बनाकर रामको खिला-पिलाकर सारा झगड़ा मिटा लिया।

सिद्धेश्वरी, नारायणी, हेमांगिनी आदिकी सारी समस्याएँ बाहरसे आई हैं। श्यामलाल और दिगम्बरीमें स्वार्थबुद्धि बहुत अधिक है। नारायणीको उनका धक्का भी सहन करना पड़ा किन्तु इससे मनमें उसका दाग नहीं पड़ा। कनीव? नरिमकी नीचता विन्ध्येश्वरीको छू तक नहीं गई। किन्तु सिद्धेश्वरीके बारेमें यह बात लागू नहीं होगी। यद्यपि उसे स्वार्थ सोचनेकी प्रेरणा बाहरसे मिली थी—नयनताराके जरिए—तथापि उसका अपना मन भी विचलित हुआ था। "सिद्धेश्वरीमें एक बहुत बड़ा दोष था, वह यह कि उसके स्वभावमें दृढ़ता नहीं थी। आदमी? दृढ़ निश्चयता बहुत साधारण कारणसे ही कदाचित् शिथिल हो सकती थी।" जिस शैलको उन्होंने पाल-पोसकर बड़ा किया, जिसकी बुद्धि, विचार और ईमानदारीके ऊपर वह जीवन भर भरोसा करती आई, उसी शैलपर उसे एकाएक सन्देह हुआ कि उसने उनका रुपया-पैसा हड़प कर ठग लिया है। इसीसे वह शैलको कड़ी बातें कहने लगी और शैल भी इसका अपमान समझकर उनका आश्रय छोड़कर चली गई। सिद्धेश्वरीके विश्वासकी रीढ़ मजबूत नहीं थी—वह कुसुम-सी कोमल ज़रूर थी—किन्तु वह अस्थिर थी। स्वार्थबुद्धिकी आड़को ठेलकर मातृस्नेहका झरना उच्छ्वसित हो उठा है। कन्या, पुत्र, उनकी मा शैल — इन सबोंके लिए उनमें असीम ममता थी और यही ममता अपनी क्षणिक कुबुद्धिको लाँघकर या दबाकर उमड़ पड़ी है।

ऊपर जिनके बारेमें आलोचना की गई है, उनमें सिद्धेश्वरी, विश्वेश्वरी बड़ी-बहू अम्बी-मा, बिन्दो, नारायणी, हेमांगिनी, बड़ी बहू व मझली गृहस्थ घरकी बहुएँ हैं, संसारके साधारण पथपर चलनेवाली हैं। कुसुम और राजलक्ष्मीकी बात दूसरी है। इनके जीवनकी गति असाधारण है और इनकी वात्सल्य-वृत्ति प्रणयकी आकांक्षाके साथ मिल जानेसे जटिल हो गई है। कुसुमने अपने स्वामी वृन्दावनके स्नेहसे अपनेको दूर रखा है। वृन्दावन सैकड़ों उपायोंका सहारा लेकर भी उसे अपने हाथमें नहीं कर सका। ऐसे ही समय वृन्दावन एक दिन चरनको लेकर उपस्थित हुआ और कुसुमके मनमें एक विश्वग्रासी क्षुधाका तूफान उठ खड़ा हुआ। जो सन्तान उसके पैदा नहीं हुई, उसके लिए उसका मातृ-हृदय उमड़ पड़ा। 'यह मनोहर सुन्दर शिशु उसका हो सकता था किन्तु क्यों नहीं हुआ? किसने इसमें बाधा डाली? माताको सन्तानसे वंचित करनेका इतना बड़ा अधिकार संसारमें किसे है? चरनको वह जितना ही अपनी छातीके ऊपर अनुभव करने लगी उतना ही उसे बराबर यही बात खटकने लगा कि उसके अपने धनको दूसरेने जबरदस्ती, अन्याय करके छीन लिया है।" वह स्त्री-पुरुष प्रेमकी आकांक्षाको दबानेके लिए प्राणपणसे चेष्टा करती थी, किन्तु सन्तानकी भूखको वह कैसे रोके? फिर इन दोनों ही आकांक्षाओंका उद्गम एक ही आधार है। जो उसके पेटसे पैदा नहीं हुआ, उस बच्चेके लिए जो स्नेह उसे असह्य पीड़ा दे रहा था वही दुर्निवार वेगसे उसे ठेलकर उसी पतिके पास ले गया जिसे उसने इतने दिन अति यत्नसे दूर हटा रखा है। किसी किसी दार्शनिकने सन्तानकी कामना और यौन प्रवृत्ति नामकी दो स्वतन्त्र मौलिक वृत्तियोंको अलग अलग माना है। किन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि मनुष्यके हृदयमें, विशेष रूपसे स्त्रीके हृदयमें ये दो वृत्तियाँ अलग नहीं रह सकतीं। प्रेमकी परिणति सन्तानकी कामनामें है और सन्तानकी कामनाका मूल यौन मिलनमें है। कुसुमके मनमें इन दोनों वृत्तियोंने एकसाथ जागकर उसकी शिक्षा और अभिमानपर प्रहार किया। रवीन्द्रनाथने कहा है—इन वृत्तियोंका सम्मिलन भारतीय नारीत्वका मूल मन्त्र है। शकुन्तला और दुष्यन्तके प्रेमकी परिणति सर्वदमन (भरत) के जन्ममें हुई थी शकुन्तलाके प्रत्याख्यानकी व्यथा इस परिपूर्णताके आगे गौण बात है।

मदन-दहन और पार्वती-उमाकी तपस्याको दीजिए—इसका फल था कुमारका जन्म।

राजलक्ष्मी और श्रीकान्तके प्रेममें एक प्रधान विघ्न यह था कि उसमें कुमार-सम्भवकी सम्भावना न थी। राजलक्ष्मीके हृदयमें माता होनेके लिए एक बहुत बड़ी आकांक्षा थी। उस अपरितृप्तिकी दीनताके आगे उसका सारा ऐश्वर्य और धन बेकार था—उसका सारा जीवन व्यर्थ था। उसने आप ही कहा था कि बंकूके पिताके साथ ब्याह होनेके फलस्वरूप अगर वह सन्तानकी जननी होती और उसे भीख माँगकर भी खिलाती तो इस बातकी होनेसे कहीं अच्छा होता। हैमवतीके दाम्पत्य जीवनको देखकर षोड़शीने समझा था कि भैरवीके जीवनका 'त्याग' नारीके लिए कितना बड़ा झूठ है। राजलक्ष्मीने अभयाके परिपूर्ण प्रेमकी कहानी सुनकर अपने ऐश्वर्यकी निष्फलता और संयमके दैन्यको जान लिया। उसने पहले सोचा था कि श्रीकान्तकी सेवा करके, उसका संग पाकर ही उसका जीवन सार्थक होगा। क्रमशः उसने देखा कि श्रीकान्तके लिए उसका जो प्रेम है उसे सन्तानकी आकांक्षासे जुदा करना होगा। श्रीकान्त उसके लिए सब कुछ त्याग करने पर भी मान-मर्यादा छोड़ नहीं सकता, और स्वयं उसे भी उसकी मान मर्यादा, संस्कार और धर्मबुद्धि रोकेगी। यह प्रेम महत् हो सकता है, किन्तु इसमें तृप्ति नहीं है, परिणति या परिणाम नहीं है। अतः इस आकांक्षाकी निवृत्ति नहीं है। इसीसे समस्याका भी निराकरण नहीं हो सकता। श्रीकान्तका मन यह बात सोचकर कम्पित हो उठा है, "आज उसके परिपक्व यौवनके बहुत गहरे तलसे जो यह मातृत्व तृष्णा जाग उठा है, नींदसे तुरन्त जागकर उठे हुए कुम्भकर्णकी तरह उसकी अपरिमित क्षुधाका आहार उसे कहाँ मिलेगा? उसके अपनी सन्तान रहने पर जो सहज और स्वाभाविक हो उठ सकती थी, वह समस्या इस समय इसीके अभावमें अत्यन्त जटिल हो उठी है। उस दिन पटनेमें उसके जिस मातृरूपको देखकर मैं मुग्ध अभिभूत हो गया था, आज उसके इसी मातृरूपको स्मरण करके अत्यन्त व्यथाके साथ केवल यही सोचने लगा कि इतनी बड़ी आग फूँक मारकर बुझाई नहीं जा सकती, इसी लिए आज पराये लड़केको अपना लड़का मानकर कन्नौजिसे सिंहासनसे राज-

रमणीके हृदयकी प्यास किसी तरह नहीं मिटती। इसीसे आज एकमात्र वेणु ही उसके लिए यथेष्ट नहीं है आज दुनिया भरके कितने लड़के हैं, उन सबके सुख-दुःख ही उसके हृदयको मथते हैं।" इससे कठिन और प्रश्न नहीं है, इससे बढ़कर ट्रेजेडी भी नहीं है। परिपूर्ण संभोगकी सामग्री हाथके पास है किन्तु उसके उपभोगकी सामर्थ्य नहीं है। माताकी भूख है, किन्तु उसकी परितृप्तिकी आशा नहीं है। शकुन्तला और पार्वतीका जीवन जैसे सफल प्रेमका चरम आदर्श है, राजलक्ष्मी भी वैसे ही रमणी-जीवनकी व्यर्थताका ज्वलन्त निदर्शन है।

अब तक मातृस्नेहकी जिन सब कहानियोंके बारेमें आलोचना की गई है, उनकी एक विशेषता यह है कि यह मातृस्नेह उमड़ा है अपना निज सन्तान नहीं अथवा जिनके लिए यह स्नेह उमड़ा है वह सन्तानस्थानीय होनेपर भी सन्तान नहीं है। माताके अपनी सन्तानके लिए स्नेहके जो सब चित्र हैं उनमें दुर्गामणि और ज्ञानदाकी बात सबसे पहले याद आयेगी। नाना प्रकारके उत्पीड़नोंसे मातृस्नेह कैसा विकृत हो जाता है, इसका तीव्र चित्रण इस कहानीमें किया गया है। ज्ञानदा दुर्गामणिका एकमात्र सहारा थी दुःखकी घड़ियोंमें आशा और आनन्दका झरना थी। किन्तु हिन्दू समाजमें अनूढ़ा लड़कीका कलङ्क माताके ऊपर ऐसा भयङ्कर दारुण बोझ है कि सन्तान-स्नेहका सारा माधुर्य उससे नष्ट हो जाता है। दुर्गामणिकी गरीबी, समाजकी ओरसे कलङ्कका भय, परलोकमें शान्तिकी आकांक्षा—इन सबने ही ज्ञानदाके साथ दुर्गामणिके सम्बन्धको कटु कर दिया है। वह सभी प्रकार असमर्थ होकर केवल परलोककी ओर दृष्टि रखकर अपनी एकमात्र कन्याको एक बूढ़ेके हाथमें सौंपनेको तैयार हुई और उसका दुःसह अपमान तक उन्होंने किया। यह चित्र इस तथ्यका ज्वलन्त निदर्शन है कि समाज और संस्कारका उत्पीड़न स्वाभाविक प्रवृत्तिको भी विकृत कर सकता है। कथाकारने यह कहानी कहींपर हलकी या कोमल नहीं बनाई है, इसका सारा चित्र निर्मम करके खड़ा किया है। अनुभूतिकी तीव्रता और अभिव्यक्तिकी अकुण्ठित यथार्थतामें यह चित्र बेजोड़ है। इस सम्बन्धमें डाक्टर श्रीकुमार बन्द्योपाध्यायका मत उल्लेखके योग्य है। वह लिखते हैं — " 'अरक्षणीया' में ज्ञानदाका अपमान असहनीयताकी चरम सीमामें जा पहुँचता है, जब उसकी

स्नेहशीला माता तक भ्रान्त संस्कारके आगे अपने स्वाभाविक अपत्य-स्नेहका विसर्जन करके इस विश्वव्यापी उत्पीड़नके केन्द्रस्थलमें जाकर खड़ी होती है। ममत्वका क्रूरतम निर्वासन यहींपर है जहाँ उसके जहरीले प्रभावसे माताका स्नेह तक निष्ठुर विषादमें बदल जाता है। सप्तपदीकी की हुई निष्ठुर लांछना भर्त्सना किसी तरह सही भी जा सकती थी, किन्तु नरकके सबसे बड़ी हुई दुया-मयिक कठिन अनुयोग और कठिनतर चरण-प्रहारसे धैर्यके बन्धनका बिल्कुल कर ह्रास।”

५–शरत्-साहित्यमें पुरुष

शरत्चन्द्रने जो नारी-चरित्र अंकित किये हैं, उनका प्रधान लक्षण यह है कि प्रचलित आदर्शोंसे विचार किये जानेपर उनमेंसे बहुतोंको सती नहीं कहा जा सकता। राजलक्ष्मी, अभया, सावित्री, रमा, पार्वती, माधवी इन सबका प्रेम समाजकी दृष्टिमें अवैध है और ये स्वयं भी इस बारेमें सचेत हैं। अभया और कमलाने समाजकी पर्वा नहीं की किन्तु और सबोंने अनुभव किया है कि उनकी दुर्दम प्रेमकी आकांक्षा केवल सामाजिक विचारसे हेय ही नहीं धर्म-विरुद्ध भी है। अभया दीदी सतीकुल-चूड़ामणि हैं, पतिके लिए उन्होंने सब कुछ त्याग किया था; किन्तु उन्हें भी अन्तमें कुलटा गृहत्यागिनी बनना। प्रीतिहीन धर्म और क्षमाहीन समाजके विचारमें जो सब स्त्रियाँ कुलटा हैं, उनके हृदयमें जो दुर्निवार प्रेमाकांक्षा जाग उठती है उसकी विशुद्धताका चित्र शरच्चन्द्रने खींचा है। पाप-पुण्यका जो मापदण्ड समाजने मान लिया है उसकी संकीर्णता, विचार-मूढ़ता सिद्ध करना शरत्-साहित्यका एक विशेष उद्देश्य है।

शरत्-साहित्यमें नारीकी प्रधानताको सब लोग जानते हैं। उपन्यास-साहित्यमें उनकी प्रधान कीर्ति या उनका महत् कार्य यही है कि उन्होंने नारीको एक नई दृष्टिसे देखा है। उन्होंने देखा है कि नारीका श्रेष्ठ परिचय यह नहीं है कि वह सती-साध्वी है। उसका असल परिचय यह है कि वह नारी है। उसका स्वभाव नम्र है उसका लोकनिन्दासे भय तीव्र है, वह स्वभावतः अनुशासनसे नियमित है, किन्तु इन सभीके ऊपर उसका दुर्दम प्रेम छा गया है। शरत्-साहित्यमें पुरुषोंका स्थान नारीकी अपेक्षा गौण है। अधिकांश उपन्यासोंमें नारी चरित्रके विकासके लिए सहायक रूपमें पुरुषचरित्रकी अवतारणा हुई है। इन सब पुरुषोंकी स्वतन्त्र सत्ता न हो, यह बात नहीं है। तो भी बात पक्की

है कि उनकी कहानी अलग अलग करके अगर लिखी जाती तो उनकी सृष्टि करनेवालेकी प्रतिभाको बचा नहीं सकती। उनमेंसे प्रत्येकने एक प्रखर व्यक्तित्व रखनेवाली रमणीके चित्तको उद्वेलित किया है यही उन पुरुषोंके जीवनकी सबसे बड़ी बात है। अवश्य ही शरत्चन्द्रके पुरुष-चरित्रोंमें भी उनकी प्रतिभाकी विशेषताकी छाप है। पर संसारके विचारमें इन लोगोंमेंसे अनेक पुरुष ऊँचे स्थानको नहीं पा सके, सम्मान नहीं पा सके; किन्तु उनके अगौरवके भीतर या अगौरवकी आगमें जो व्यक्तित्व मौजूद है वह श्रद्धाके योग्य है, जो हृदय मौजूद है, वह सहज ही दूसरोंको अपनी ओर आकृष्ट करता है। सांसारिक बुद्धि या होशियारीमें नीलाम्बर अपने भाई पीताम्बरकी अपेक्षा बहुत निकृष्ट है अधिक यह कि वह गाँजा पीता था और किसी तरहका कोई लाभजनक काम या धन्धा नहीं करता था। अथच उसके चरित्रमें जो महत्त्व था वह भले मानुस कहे जानेवाले लोगोंमें नहीं पाया जाता। गोकुल और प्रियनाथ डाक्टरको बुद्धिमान् और विचक्षण आदमी नहीं कहा जा सकता किन्तु उनकी निर्बुद्धिताकी आड़में उदारता और स्नेहशीलताकी जो फल्गु धारा* निरन्तर बहती थी उसकी तुलना कहाँ है? शरत्साहित्यमें ये एक श्रेणीके नायक हैं। ये सभी सरल प्रकृतिके लोग हैं और दुनियाके लाभ-हानिके सम्बन्धमें वैसे सचेत नहीं हैं। किन्तु शरत्चन्द्रने और भी कई एक नायकोंके चरित्र अंकित किये हैं। वे केवल निकम्मे या निठल्ले ही नहीं हैं, उनका चरित्र भी कलंकित है। पहले ही देवदासका नाम याद आयेगा। प्रतापके साथ देवदासका अवस्थामें सादृश्य है। दोनों ही भाग्यचक्रके अभिशाप द्वारा सताये गये हैं। किन्तु प्रतापकी कहानी चित्त-जयकी कहानी है। उसकी मृत्युमें संयमकी विजयकी घोषणा है। पर देवदासकी कहानी चित्तकी दुर्बलताकी कहानी है। उसमें असंयमका कलंक और पराजयकी ग्लानि मौजूद है। तो भी ग्रन्थकारने उसीको नायक बनाया है—उसके प्रति पाठककी प्रीति और सहानुभूति खींची है। 'चरित्रहीन' में ग्रन्थकारने और भी साहस दिखाया है। उन्होंने उपन्यासका नाम सतीशको लक्ष्य करके रखा है। साधुसमाजमें, चरित्रवान् लोगोंकी मण्डलीमें सतीशको जो कहा जायगा, उन्होंने भी उसे यही विशेषण दिया है। यहाँ प्रसंगमें

* गयामें फल्गु नदी है जिसका पानी ऊपरकी रेतीके नीचे छिपा रहता है। ऐसे ही बहनेसे निरन्तर नाम है।—अनुवादक।

प्रचलित नीतिके ऊपर किया हुआ व्यंग है। देवदासके लिए शरत्‌बाबूने उपन्यासके अन्तमें कृपाकी भीख माँगी थी। किन्तु सतीशके सम्बन्धमें उनका यह मनोभाव नहीं है। वह जैसे जोर देकर कहना चाहते हैं कि प्रचलित नीति जिसको चरित्रहीन कहकर घृणा करेगी, वह मनकी उदारतामें, मनकी गहराईमें, अनुभूतिकी व्यापकतामें असाधारण है; यहाँ तक कि उपेन्द्र जैसा चरित्रवान् और महत् मनुष्य भी उसके आगे निष्प्रभ है।

हमने अन्य एक अध्यायमें दिखाया है कि शरत्‌साहित्यकी प्रधान विशेषता यही है कि उसके भीतर रमणी-हृदयमें आजन्मार्जित संस्कारों और उच्छृङ्खल दुरतिक्रम हृदयके आवेगोंमें निरन्तर गहरा संघर्ष चलता है। जिस पुरुषको लेकर इस संघर्षकी सृष्टि हुई है, उसके चरित्रकी विशेषताने भी इस संघर्षको पुष्ट ही किया है उसे समाप्तिकी राहमें आगे नहीं बढ़ाया। शरत्‌साहित्यमें जो सब प्रेम-कहानियाँ हैं उनके नायक अनुभूतिशील हैं किन्तु उनमेंसे अनेक ही अन्यमनस्क या उदासीन हैं। वे नायिकाओंके मनकी बात नहीं समझते अथवा समझनेपर भी सम्पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण करना नहीं चाहते। देवदास पार्वतीके मनकी बात जानता था पार्वतीने भी सारा संकोच त्यागकर उसके आगे आत्मनिवेदन किया, किन्तु देवदासने उसकी उपेक्षा की। अवश्य ही इस उपेक्षाके मूलमें मान था—अन्यमनस्कता या उदासीन भाव नहीं। अन्यमनस्कता हदको पहुँच गई थी 'बड़ी दीदी' के सुरेन्द्रनाथमें, यद्यपि सुरेन्द्रनाथको ठीक उदासीन नहीं माना जा सकता। वह बड़ी दीदीके स्नेहकी आकांक्षा रखता है, केवल बड़ी दीदीके हृदयकी खबर नहीं रखता। और एक आदमीकी अन्यमनस्कताने अनेक भ्रान्तियाँ पैदा कर दी थीं—वह है 'दत्ता' का नायक नरेन्द्रनाथ। विजयाके हृदयमें प्रणयकी आशंका और कौतूहल संकोचके बीच संघर्ष हुआ था। वह संघर्ष नरेन्द्रनाथकी अन्यमनस्कताके कारण ही इतना लम्बा हुआ और इतने मधुरतासे चला। किन्तु वह संघर्ष ऐसा न था जिसका अतिक्रम न हो सके, जिसकी बाधा दूर न हो सके। इसीसे इसका अन्त विवाहके आनन्द-मिलनमें हुआ है।

शरत्‌चन्द्रकी नायिकाओंमें सावित्री सबसे अधिक आत्मत्यागकी भावना रखती है इसलिए कविने सतीशको यदि अन्यमनस्क या उदासीन बनाकर

नहीं थी। इसीलिए सब तरहसे सम्पूर्ण हृदयसे मानिनीकी कामना करता है तो भी उसे नहीं पाता। श्रीकान्तके लिए यह बात सच नहीं होती। श्रीकान्तको राजलक्ष्मी पाना चाहती है अपने सम्पूर्ण मन और हृदयसे किन्तु धर्म-विश्वास और मातृत्वका गौरव श्रीकान्तको दूर हटा देता है। शरत्चन्द्रने श्रीकान्तको भी अत्यन्त अनुभूतिशील हृदय बहुत तीव्र स्वसम्मान-बोध और घुमक्कड़ मन दिया है। मुक्त-स्वच्छन्दताका, भोगको वह अनायास छोड़कर चला जा सकता है। प्रथम भागमें राजलक्ष्मीने अपने मातुलके सम्मानकी रक्षाके लिए श्रीकान्तको विदा कर दिया था। किन्तु द्वितीय पर्वके आरम्भमें ही हम देखते हैं कि राजलक्ष्मीके सारे ऐश्वर्यको पैरोंसे ठेलकर श्रीकान्त बर्माको चला गया। बर्मासे लौट आनेके बाद उन दोनोंका मिलन जरूर हुआ किन्तु राजलक्ष्मीको क्षमा लेकर प्रणाम पाना जब श्रीकान्तने अस्वीकार कर दिया तब राजलक्ष्मी जो भ्रम कर बैठी उससे श्रीकान्तने समझा कि उनके सम्बन्धके बीच कहींपर असम्मानका बीज छिपा हुआ है। इसीसे वह अस्थान मुझसे छोड़कर चला गया। गंगामाटीमें राजलक्ष्मी सुनन्दाके निकट सिमटती और श्रीकान्तका मन बर्मामें अभयाके लिए उड़ गया, उसने आफिस-कामके लिए बर्मा जानेकी बात सोची। राजलक्ष्मी निकली तीर्थदर्शनके लिए और श्रीकान्त चला गया सतीश भरद्वाजको मृगया करने। चतुर्थ पर्वके प्रारम्भमें यह उदासीनता इस हदपर पहुँच गई कि श्रीकान्तने पूँटूसे ब्याह करनेका प्रस्ताव कर दिया। इसके बाद सारा व्यवधान मिट गया। श्रीकान्तका बर्मा जाना स्थगित रहा और राजलक्ष्मीकी उत्कट धर्मचर्चा ठंडी पड़ गई। यह अंश सबसे निगूढ़ है। कारण, इनके बीचका व्यवधान गायब हो गया, अब भी इनका प्रेम फूल-फलकर सार्थक नहीं हुआ। राजलक्ष्मीके कमलका महात्म्य अज्ञात है। अनायास क्षणमें उसने श्रीकान्तको अनुग्रह कल्पना करके आनन्द-कल्पनाकी हद कर दी है। श्रीकान्तने भी वैसे अपना व्यक्तित्व खो दिया है—यह जैसे राजलक्ष्मीके अवसर-विनोदनका, मन बहलानेका खिलौना हो गया है। यह व्यक्तित्व, यह वैराग्य यह घुमक्कड़पन, सभी कुछ लुप्त हो गया है।

गहरी अनुभूतिशीलताकी आगमें वैराग्य छिपा रहनेसे कम सुन्दर परिणतिकी सृष्टि होती है, यह हम 'गृहदाह' उपन्यासमें देख पाते हैं। सुरेशका हृदय

केवल आवेगसे भरा हुआ ही नहीं है, वह भोग-लोलुप भी है। भोगका अर्थ वह खाली शारीरिक संभोग ही समझता है। वह आत्माको नहीं मानता भगवान्पर उसे विश्वास नहीं है वह पाप-पुण्यकी खोजमें दोहाई नहीं देता। अचलाको भी उसने चाहा था, उसमें हृदय-विनिमयकी आकांक्षा थी; किन्तु उसके लिए उससे भी बढ़कर कामनाकी वस्तु अचलाकी देह थी। और इस रमणीको पानेके लिए ऐसा कौन-सा काम था जिसे करनेको वह तैयार न था। पहले ही उसने अपने मित्रके साथ विश्वासघात किया। उसके बाद अचलाके निकट अपनेको एकान्त भावसे समर्पण कर दिया। उसकी प्रवृत्ति जैसी उद्दाम उच्छृंखल है उसका आत्मसमर्पण भी वैसा ही एकाग्र, अकुण्ठित है। इसके बाद उसने अपने बीमार बन्धुकी सेवा छुड़ाकर उसके साथ परम विश्वासघात किया। दिल्ली पहुँचकर अचलाको पाकर उसकी समझमें आया कि यह पाना सच्चे पानेसे कितनी दूर है। किन्तु उसका उपेक्षित प्रणय-निवेदन, परस्त्रीलुब्धता और विश्वासघातकताकी आगमें छिपा हुआ था एक वैरागी मन, जो सारी संभोग-लालसाको अनायास छोड़ जा सकता है, जो चरम पापके पंकमें डूबकर भी अपनी महत्ताकी रक्षा कर सकता है। जब वह रोगी था, तब दो बार अपने प्राणोंकी परवाह न करके उसने महिमको बचाया था। फिर जब अचलाने उसे जवाब दे दिया, तब उसने प्लेगसे पीड़ितोंकी चिकित्सा करने औरोंके प्राण बचानेके लिए दूर चले जाकर अपनेको विपत्तिमें डाल दिया। यह केवल स्वार्थ प्रेमीकी आत्महत्याकी निष्फल चेष्टा न थी इसमें साहस और परोपकारकी इच्छा भी थी और उसे वही दिखा सकता है जिसका मन सभी पार्थिव कामनाओं और सुखोंको पार छोड़कर उनसे बहुत ऊपर रहता है। दिल्ली स्टेशनपर उतरते ही उसने समझ लिया था कि अचलाको उसके पतिके पाससे छीन लानेकी चेष्टा वृथा है। इससे महिमको ठगा जा सकता है; किन्तु स्वयं उसे कुछ लाभ न होगा। इसीसे अचलाको उसी समय छुट्टी दे दी, कठिन बीमारीके बीच भी उसमें अचलाको रोक रखना नहीं चाहा। जान पड़ता है, इस कठोर वैराग्यने ही अचलाके हृदयको सब तरहसे उसकी ओर आकृष्ट किया और दोनोंने पति-पत्नीके रूपमें राम बाबूके घर आतिथ्य ग्रहण किया। वहीं सुरेश अनेक उपायोंसे अपने हृदयकी अत्यन्त कातर प्रार्थना अचलाको जताने लगा और इसका यह कलुषित मिलन एक आँधी-पानीके दुर्योगकी रातको हद तक पहुँच गया जिस दिन

उसने अचलाको सीमाहीन अन्धकारकी राहमें खड़ा किया। किन्तु उसके बाद ही सुरेशकी समझमें आ गया कि यह मिलन विच्छेदसे भी भयंकर है। यह आकांक्षाको पास न लाकर दूर ही हटा देता है। यह समझ पानेके फलस्वरूप उसका वैरागी मन फिर पुकार सुनकर जाग उठा। इतने दिन उसने यह चाहा की थी कि किस तरह अचला प्राप्त हो, अब वह यह चेष्टा करने लगा कि किस तरह वह अचलासे पीछा छुड़ावे। उसने बीमारों-पीड़ितोंकी सेवामें फिर अपनेको लगा दिया और इस सेवाकी मार्फत मृत्यु उसके पास उपस्थित हो गई। उस मृत्युको उसने बुलाया न था यह भी सच नहीं है। किन्तु अकुण्ठित चित्तसे आलिंगन किया—मृत्युको गले लगाया। कारण कामुक और परस्त्रीलुब्ध होनेपर भी उसके हृदयके अन्तस्तलमें एक चरम वैराग्यका भाव मौजूद था, जहाँ भोगकी लेलुपता पहुँच नहीं सकती। उसकी मृत्यु आत्महत्या नहीं आत्मत्याग है। महमूदपुरमें जब अचलाने उसे रोगशय्यापर पड़ा पाया उस समय वह नितान्त एकाकी था। यह अकेलापन केवल बाहरका ही नहीं यह विशेष रूपसे अन्तरंगका था। पृथ्वीपरकी समस्त काम्य वस्तुओं और कामनाओंसे अपनेको उसने अलग कर लिया है। उसका धर्ममें आस्था न होना भी इसी कठिन निरालम्ब भावका एक अंग है। धर्म और परलोकपर विश्वास सबोंका एक अवलम्बन होता है निरवलम्ब व्यक्तिका यही चरम सम्बल है। किन्तु इस आश्रयको भी उसने ग्रहण नहीं किया। विशुद्ध वैराग्यके साथ, अत्यन्त निर्भय भावसे उसने उस मौतको गले लगाया जिसके लिए उसने रत्तीभर भी कामना नहीं की थी।

'गृहदाह' उपन्यासका दूसरा नायक महिम दूसरी तरहका आदमी है। मुख्य बाहरसे अत्यन्त उच्छ्वासित भावविह्वल दास है किन्तु उसके उपयुक्त भोग-लोलुपताकी आगमें चरम वैराग्य मौजूद है। महिमके चरित्रका आवरण निर्विकार उदासीनतासे भरा है, किन्तु इस कठोर रूपके पीछे न छुपाई जा सकनेवाली कर्तव्यपरायणता है। वह अचलाको प्यार करता है और उसका प्यार भी उसे मिला है; किन्तु इस प्यारके लिए वह कर्तव्य-पथसे तिलभर भी हटनेके लिए तैयार नहीं है। केवल यही नहीं, भीतर और बाहर वह बिलकुल ही अचल है। वह किसीको भी अपनी चिन्ता, अपनी कामनाका साथी नहीं

बना सकता। जीवनको वह भोग करना नहीं चाहता। उसका सम्पूर्ण उद्वेलित प्रवृत्ति नहीं, अभिव्यक्ति धर्म है। इस तरहके लोगोंपर श्रद्धा सहज ही की जा सकती है, प्यार भी किया जा सकता है; किन्तु उस प्यारको बनाये रखना बहुत कठिन होता है। कारण प्यार आदान-प्रदानके रससे सजीवित रहता है। जो निर्विकार संयम कभी चञ्चल नहीं होता जो गोपनता कभी प्रश्न नहीं करती कभी प्रश्नका उत्तर नहीं देती वह केवल सामाजिक जीवनमें नहीं चलती इतना ही नहीं वह पीड़ा भी देती है। भूपालकी सहज प्रगल्भता और संयमताके भीतर एक विद्रोहका सुर छिपा हुआ है। उसने शैशवसे दादाको प्रेम किया है और उनसे स्नेह पाया है किन्तु वह उनके हृदयका प्रकाश नहीं कर सकी। विवाहके बाद अचला पतिके विरुद्ध क्यों विरूप हो रही है, यह समझानेकी चेष्टा महिमने नहीं की। समझाने पर भी उसका कोई प्रतिकार करनेकी चेष्टा नहीं की। अथच यह प्रतिकार करना उसके लिए कितना सहज था। सुरेश-की मृत्युके कुछ ही पहले और बादका उसने जो व्यवहार किया, उसमें भी यह शान्त निष्करुण भाव प्रकट हुआ है। उसने अचलाके मनकी बात समझने की चेष्टा नहीं की उस घरको छोड़कर चला गया। इस आचरणकी कठोरता एक बार उसके मनमें उदित हुई थी किन्तु वैसे ही उसने इस चिन्ताको दूर हटा दिया। महिम सहन कर सकता है सामञ्जस्य नहीं कर सकता, दे सकता है, पर ले नहीं सकता।

कुसुमके पति वृन्दावनमें और सौदामिनीके पति घनश्याममें भी उदासीनताने निर्विकार सहनशीलताका रूप ले लिया है। उपन्यासके हिसाबसे गृहदाहकी अपेक्षा पण्डितजी और स्वामी बहुत निकृष्ट हैं। गृहदाहके नर-नारियोंके हृदयकी क्रिया-प्रतिक्रियामें जो विचित्रता और जटिलता है वह कुसुम और सौदामिनीकी कहानीमें नहीं है। वृन्दावनके चरित्रका प्रधान गुण उसकी प्रशान्त सहनशीलता और क्षमाका लक्षण है। उसके जीवनमें जो दुःख आया है उसके लिए उसकी अपनी जिम्मेदारी बहुत कम है। अवस्थाके चक्र और कुसुमकी न सुधार या सुधरनेवाली हठधर्मिताके कारण उसे मनका कष्ट सहने पड़े हैं। किन्तु उसका प्रशान्त गाम्भीर्य प्रायः कभी विचलित नहीं हुआ। वह अपने आदर्शसे नहीं डिगा। कुसुमको वह कभी जोर दिखाकर अपना नहीं ले गया।

कारण, उसके मनमें भी वही वैराग्य था, जो शरत्चन्द्रके नायकोंकी एक प्रधान विशेषता है। कुसुमके आनेसे वह सुखी होता, किन्तु नहीं आई तो इसके लिए उसे मनमें कोई क्षोभ नहीं हुआ। चरनकी मृत्युशय्यापर जब कुसुम उपस्थित हुई तब एक क्षणके लिए उसके प्रति वितृष्णाका सञ्चार हुआ था, किन्तु फिर बहुत शीघ्र ही वह भाव दूर हो गया। वृन्दावनके मनमें एक विराट् क्षमा और उदारता थी इसीसे चरनकी मृत्युके बाद कुसुमके साथ उसका परिपूर्ण मिलन हुआ। 'परदार' में इस मिलनका एक क्षीण आभास मात्र है— [illegible] भर है। सौदामिनीका पति था परम वैष्णव। वह अपनी [illegible] साथ करता था—वह इस जो मौसी-ननदीके उत्पात-उत्पीड़नको चुपचाप सह लेता है। उसकी इस सहनशीलताका सौदामिनीके क्षणिक स्खलनका एक दूसरा कारण है। फिर बादको उसकी असीम क्षमा-शीलताने ही सौदामिनीका मन अपमानसे क्षमा किया। उसकी कहानीके साथ महिमकी कहानीका सादृश्य है किन्तु ग्रन्थकारने उसका जो चित्र खींचा है वह अनुपम है। महिम उसकी अपेक्षा कम क्षमाशील है किन्तु महिमका चरित्र अनेक पहलुओंसे विचित्र रूपमें खिल उठा है—अतएव अधिक सत्य है।

मम-कहानीके नायकमें जो निःस्वार्थ उदासीन भाव देखा जाता है वह अन्यान्य अनेक पुरुष-चरित्रोंमें भी पाया जाता है। प्रियनाथ डाक्टर, गोकुल और नीलाम्बरकी बात पहले लिखी जा चुकी है। निष्कृतिका गिरीश अत्यन्त आप-भोला आदमी है। वह विशुद्ध कौतुकका झरना है। किन्तु उसके चरित्रका सबसे अधिक उल्लेखनीय गुण है सांसारिक लाभ-हानिसे औदासीन्य। वह रुपया कमाता था, लेकिन खर्च करते थे दूसरे। इसीसे अपने-परायेका अन्तर उसे अज्ञात रह गया। जिसके साथ मुकदमा चल रहा था उसीके बीचके नाम उसने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी। इस निर्बुद्धिताके लिए उसे बहुत लोगोंने बुरा-भला कहा, किन्तु सिद्धेश्वरीने उसके निर्लोभ और अपने पराये भेद ज्ञानसे शून्य वैराग्यको ठीक समझ लिया। श्रीकान्तके बाल-बन्धु गौहरके प्रसंगकी चर्चा वर्णन और उल्लेख आभास मात्र किया गया है। गौहर प्रधानतः कवि है। किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उसमें कोई विशेष प्रतिभा थी। उसे इसका एक नशा भर जान पड़ता है। श्रीकान्तने उसकी 'वैकुण्ठके दफ्तर' के वैकुण्ठके साथ तुलना की है। गौहरके चरित्रमें जो एक प्रधान और सबसे उल्लेख-

प्रशंसनीय गुण है, वह है सांसारिक सौभाग्यके प्रति उदासीन भावना। उसका पिता उसके लिए सम्पत्ति छोड़ गया था, लेकिन उसके बाबा फकीर थे। उसे इस फकीरका ही चरित्र मिला था। वह जमींदार, कवि, प्रेमी, परोपकारी है, किन्तु सर्वोपरि वह फकीर है। उसके प्रेम-निवेदनके भीतर भी फकीरकी निर्लिप्तता थी, ऐसा जान पड़ता है। वह द्वारिकादास बाबाजीके आश्रममें आया करता था—जान पड़ता है, कमललताका सान्निध्य पानेके लिए ही। किन्तु कमललताको पानेके लिए उसमें आग्रहकी अत्यन्त अधिकता नहीं है, जबरदस्ती नहीं है। मृत्युशय्यापर कमललताने उसकी असाधारण सेवा की थी, लेकिन यह सेवा कमललताने अपने आग्रहसे की थी, गौहरने किसी दिन इसके लिए उसपर भार नहीं डाला। उसकी अन्तिम इच्छामें भी यही भाव व्यक्त हुआ है। उसने कमल लताको रुपए देना चाहा है, इस खयालसे कि अगर वह उन्हें ले ले, अगर वे रुपए उसके काम आ जावें। यहाँ भी कोई जबरदस्ती या दबाव नहीं है।

निर्विकार निर्लिप्तताका मधुरतम परिचय हम स्वामी वज्रानन्दमें पाते हैं। वज्रानन्द शरत्चन्द्रकी अपूर्व सृष्टि है। वह अमीरका लड़का था। लेकिन संसारका कोई भी आकर्षण उसे पकड़कर नहीं रख सका। जवानीके प्रारम्भमें जब मनुष्यकी भोगकी आकांक्षा बहुत उग्र रहती है, वह बहुत छुटपनमें सब त्यागकर, एक अनिश्चितके आह्वानसे, देशका और दस आदमियोंका काम करनेको निकल पड़ा। अब भी संसारके प्रति उसकी कोई वितृष्णा नहीं है। वह ईश्वरोपासक संन्यासी नहीं है। भोजनपर उसकी विशेष रुचि है। राजलक्ष्मीकी एकान्त निष्ठा परिचर्यामें, उसने अपनेको बहुत सहज ही सुप्रतिष्ठित कर लिया है, राजलक्ष्मीकी अतिथि-सेवाका अनुव्यवहार वह खूब करता है। श्रीकान्तके लिए राजलक्ष्मीकी व्याकुलतामें अधिक चिन्ता, श्रीकान्तका रूठना—इन सबको लेकर वह समस्त बखत हास्य-परिहास करता है। यह सब होने पर भी किसीके लिए वह वैसा नहीं है। उसके मनमें सभीके लिए ममता है। किसीके लिए विशेष उससे माया-मोह नहीं है। वह जैसे अनायास पास आता है, वैसे ही अनायास दूर हट जाता है। राजलक्ष्मीने उसे बाँध रखनेकी चेष्टा की है, श्रीकान्तके भाई-बहनोंके लिए उसका हृदय नित्य स्नेहसे भरपूर है, किन्तु किसी खास बन्धनके लिए कोई स्थान रखा नहीं है। वीरभूम जिलेके एक गाँवमें जाकर वहाँ एक स्कूल खोलकर रोगियोंकी चिकित्सा करके, अनेक उपायोंसे उसने देशकी उन्नति करनेमें अपनेको

लगाता है, किन्तु वहाँ भी उसमें वही निर्लिप्त भाव है। जिस दिन काम पूरा हुआ, बस, वह वहाँसे चल दिया। उसकी प्रशंसापूर्ण कृतज्ञता एक दिन भी उसे पकड़कर रख नहीं सकी। वह सभीको प्यार करता है, इसीसे किसी खास आदमीके साथ वह बँधा नहीं रह सकता। उसने संसारको छोड़कर ही संसारको गहरी घनिष्ठताके साथ पाया है। उसमें अतिथिकी घनिष्ठता, गृहस्थकी आसक्ति और संन्यासीकी निर्लिप्तताका समन्वय हुआ है। 'अतिथि' में तारापदका वर्णन करके रवीन्द्रनाथने कहा है—'वह इस संसारमें पंकिल जलके ऊपर श्वेत-पंख राजहंसकी तरह घूमता फिरता था। कौतूहलवश जितनी ही बार वह जब जलमें गोता मारता था उसके पंख न तो भीगते थे और न मलिन हो सकते थे।" अगर किसी ऐसे शुभ्र पंख पक्षीकी कल्पना की जा सकती है जो कौतूहलवश नहीं, गहरे आकर्षणके कारण जलके अन्तरतम प्रदेशमें गोता लगाकर उसकी पंकिलतामें अपनी निष्कलंक शुभ्रता दान करे, जो केवल जलके ऊपर ऊपर तैरता न घूमे, भीतर भी संचरण करे, तभी उसके साथ वज्रानन्दकी तुलना हो सकती है।

२

शरत्चन्द्रने पुरुष-चरित्रकी कठोर अनुभूतिशीलताके चित्र खींचे हैं साथ ही पुरुषकी निर्मम निष्ठुरताकी ओर भी हमारी दृष्टि आकृष्ट की है। इस प्रसंगमें 'अरक्षणीया' का अतुल, ममतामय पति और वो युवक रंगपुरमें समास् करीदन बरसोंके बहानेसे अपनी एकान्त अनुगत पत्नी कीको छोड़कर चला गया—इनका स्मरण स्वतः ही आ जाता है। 'श्रीकान्त' में वर्णित ऊपर कहे गये दोनों चित्र सम्पूर्ण नहीं हैं लेकिन तो भी ये सब चित्र अत्यन्त निपुणताके साथ खींचे गये हैं। अतुलका चरित्र विस्तारसे दिया गया है। उसने ज्ञानदाके भीतर लज्जासे नम्र, सेवासे स्निग्ध कुमारीकी जो मूर्ति देख पाई उससे वह मुग्ध हो गया और निष्कपट चित्तसे उसे अपना प्रेम जताया। इसके बाद रूपके मोहसे, बाहरकी चमक-दमकसे उसका तरुण चित्त उद्भ्रान्त हो गया। इस अकृतज्ञ, विलासपरायी युवकने चरम निष्ठुरताके साथ पहलेकी प्रतिज्ञा अस्वीकार करके उसी किशोरीको लांछित किया, जिसने एकाग्रचित्तसे उसे प्यार किया था। ज्ञानदाकी माके मरनेपर

श्मशानमें उसने नये सिरेसे ज्ञानदाका जो परिचय पाया, उससे उसका वह पहलेका प्रेम फिर जीवित हो उठा और ज्ञानदाने भी उसे ग्रहण किया। अतुलके हृदयमें जो परिवर्तन और पुनःपरिवर्तन या पतन हुआ वह आकस्मिक है। यह वर्णन नहीं किया गया कि किस तरह दो परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ उसके हृदयमें परिपुष्ट हुईं। इसीसे उसका चरित्र अनेक अंशोंमें संभाव्यताकी सीमाका अतिक्रमण कर गया है।

शरत्-चन्द्रने बंगालके ग्रामीण समाजके अनुसार स्वार्थपरता, पदलोलुपता प्रीतिहीन तथा उदारताविहीन धर्म-निष्ठाके बहुत-से चित्र खींचे हैं। सर्वजया रास-मणि बामनी आदिके चरित्र अंकित करनेपर भी, शरत्चन्द्रने ग्रामीण समाजका कलंक विशेषकर पुरुष-चरित्रपर ही आरोपित किया है। बामनकी बेटीका गोलोक चटर्जी ग्रामीण समाजके नेताका स्थान रखता है। बाहरके आचार-विचारमें वह धर्मनिष्ठ भी बनता है। किन्तु यथार्थ धर्मका बोध उसे बिलकुल ही नहीं। अनाथ विधवाका परमार्थिक सर्वनाश करके भी उसे उसके प्रति रत्तीभर भी सहानुभूति नहीं। इस पाखण्डी नीचको जोर-ज़बर्दस्तीमें भी संकोच नहीं है, जीवका सर्वनाश करनेमें दुविधा नहीं है। जिसे उसने पापकी गहरीसे गहरी दलदलमें डुबा दिया, उसपर भी उसे करुणा आती नहीं। जिस धर्मने केवल बाहरी आचारका ही सहारा रखना सीखा है, उसकी परिणति इसी धर्महीन निष्ठुरतामें होती है। 'पण्डितजी' उपन्यासका तारिणी चटर्जी और 'बैकुण्ठका दानपत्र'का मधुसूदन चटर्जी—ये गोलोक चटर्जीकी तरह हीन कर्ममें प्रवृत्त नहीं हुए। किन्तु ये भी अत्यन्त निष्ठुर और स्वार्थपरायण हैं। तारिणीके चरित्रमें ब्राह्मण जमींदारी संकीर्णता, अपनी दाम्भिकता और निर्ममता अत्यन्त मुखर हो उठी है। जिस समाजमें आचारने मकड़ीकी जाल-राशिकी तरह विचारके जीवनकी राहको रोक लिया है, उसमें तारिणीके षड्यन्त्रसे वृन्दावनका पुत्र बिना चिकित्साके मर जाय तो इसमें विस्मय क्या है! अमरनाथके चाचा मणिशंकर अभिज्ञ व्यक्ति हैं। उन्होंने अमरनाथसे कहा था—"जिसके पास धन है, वही समाजपति या समाजका मुखिया है। मैं चाहूँ तो तुम्हें जाति-बाहर कर सकता हूँ।" और इस समाजके शिखर निरीह अर्थव्याकुल अमरनाथ जैसे लोग हैं; विनय अनुभूति है, पर निष्ठा नहीं; सद्बुद्धि है, पर साहस नहीं। ये खोखले बाहरे हुए घुनकी तरह हैं, बहुत बनाना ही इनकी सार्थकता है।

देहातियोंकी नीचताके कई चित्र ग्रामीण समाजमें खींचे गये हैं। इस सम्बन्धमें सबके आगे बेनी घोषाल और गोविन्द गांगुलीके नाम याद आवेंगे। दुनियाका ऐसा कोई बुरा काम नहीं बचा जो उन्होंने न किया हो—चोरी जुआचोरी जाल, घरमें आग लगवा देना, झूठी निन्दा फैलाना, स्त्रियोंका धर्म नष्ट करना इत्यादि इनके बाएँ हाथके खेल हैं। देहाती समाज इन सब पापाचारियोंके कुकर्मोंके बोझसे दबा हुआ है। शरत्चन्द्रने इनके पापोंका जो वर्णन किया है वह जैसा स्पष्ट है वैसा ही तीव्र भी। लेकिन तो भी लगता है कि इन दोनों पुरुषोंका चित्र सम्पूर्ण सजीव नहीं हो सका। ये जैसे अन्याय काम करनेकी कल भर हैं। ये यंत्रकी तरह चलनेवाले हैं किन्तु यंत्रकी तरह ही इनके प्राण या हृदय नहीं है। लगता है अकारण-अकारण केवल दूसरोंका अमंगल करनेके लिए ही इनकी सृष्टि की गई है। इनके मनमें कोई दुविधा नहीं है, कुछ इनका कोई उद्देश्य नहीं है। अवस्था बदलनेके साथ इनके मनमें किसी नये भावकी क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं होती व्यवहारमें भी कोई विविधता नहीं देख पड़ती। शेक्सपियरने इयागोके चरित्रमें लगभग उद्देश्य-हीन पाप-प्रवृत्तिका चित्र अंकित किया है किन्तु इयागोके मनमें भी उद्देश्यके सम्बन्धमें प्रश्न उठा है अवश्य और थोड़ा-सा संकोचका भाव भी आया है। वह दुर्बलता मानवोचित है। वह दुर्बलता न होती तो वह पक्का दानव या पशु होता। बेनी घोषाल और गोविन्द गांगुली रक्त-मांसके बने अनुभूतिशील मनुष्य नहीं लगते। दत्ता के रासबिहारीका कार्यक्षेत्र उनके कार्यक्षेत्रकी अपेक्षा छोटा है किन्तु वह इनकी अपेक्षा अधिक सजीव है। वह मिथ्याचारी कपट षड्यंत्रकारी है। किन्तु उसके सारे मिथ्या आचरणके पीछे विजयाकी जमींदारी हथियानेकी प्रचेष्टा है। इसे लक्ष्य करके ही उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे एक बहुत बड़ा जाल फैलाया है। अपनी वास्तविक मंशाके बारेमें वह सजग है। यह भी वह जानता है कि उसकी आर्थिक स्थिति वैसी अच्छी नहीं है। उसके अपने मनमें कोई सुकुमार प्रवृत्ति नहीं है। परन्तु वह दूसरोंके सेंटीमेंटपर कौशलसे आघात कर सकता है। अथ च अपने हृदयकी कोमल वृत्तियोंको पीस डालनेके कारण वह यह नहीं स्वीकार करता कि अन्य किसीके भी हृदयका आवेग स्थायी और दृढ़ हो सकता है या होता है। वह जानता है कि किसी तरह विजयाका विवाह अपने पुत्र विलासबिहारीके साथ करके उसकी सम्पत्ति हस्तगत कर लेनेपर फिर कोई खटका

था जगता नहीं रहता। बुद्धिके ऊपर भरोसा करके उसने बहुत कुछ उपलब्धि प्राप्त कर ली है; अतएव अपने कौशल और क्रियाकलापके ऊपर उसकी असीम आस्था है। किन्तु उपन्यासमें यह बुद्धिजीवी सम्पूर्ण रूपसे पराजित हुआ। यह उपन्यास नरेन्द्र और विजयाके प्रणयका रोमान्स है; साथ ही रासबिहारीके पराजयकी ट्रेजेडी भी है।

मानव-चरित्रकी प्रधान विशेषता उसकी विविधता है। उसमें नाना प्रवृत्तियोंका समावेश है। इस पक्षसे विचार किया जाय तो शरत्चन्द्रके उपन्यासोंका सर्वप्रधान पुरुष-चरित्र जीवानन्द है। जीवानन्द चौधरी जमींदार है, शराबी है, लम्पट है, धर्म-ज्ञान-शून्य है। प्रजाको सताना, पति-पुत्रवती स्त्रियोंका सतीत्व नाश करना, उसके रोजमर्राके काम हैं। अपनी असत् प्रवृत्तियोंको पूरा करनेके लिए उसे सर्वदा रुपयोंकी जरूरत रहती है। वह डाका डालकर, अत्याचार करके वसूल करनेमें उसे तनिक भी संकोच नहीं। जीवके छलबलको वह बाजारका सौदा समझता था, जिस चीजका अस्तित्व उसके लिए असुविधा पैदा करता था, उसे वह अपने सिपाहियोंके कमरेमें बन्द देता था। उसके सारे पापाचारमें कहींपर संकोच नहीं, लज्जा नहीं, छिपानेकी इच्छा नहीं। अतएव जिस धर्मका वह निरपेक्ष ऐतिहासिक है। कारण, उसे धर्म-अधर्मका बोध नहीं है। साधारणतः पापाचारियोंमें थोड़ा-सा न्याय-अन्याय बोध होता है। अपने अन्यायकी भयानकतासे वे अभिभूत होते हैं। वे केवल दूसरोंको ही नहीं ठगते, अपनेको भी ठगनेकी चेष्टा करते हैं। धर्मपर विश्वास न रहने पर भी धर्मभीरुता उन्हें दुर्बल बना डालती है। किन्तु जीवानन्दमें धर्मभीरुताका लेशतक नहीं है। इसीसे पाप उसके लिए सहज हो गया है। वह इस भाँति स्पष्ट दृष्टिसे देख सकता है, इसीसे उसकी निर्लज्जता घृणाका उद्रेक नहीं करती। वह प्रफुल्ल जैसे रसिकोंको आकृष्ट करती है। शिरोमणि, जनार्दन राय आदि कपटी, हृदयहीन लोग इससे चक्करमें पड़ जाते हैं। यह स्पष्टवादी, संकोच-हीन, पापाचारी दूसरोंपर ही अत्याचार नहीं करता, अपने सम्बन्धमें भी इसे रत्तीभर ममता नहीं है। वह जानता है कि जिस राहपर मैं चल रहा हूँ वह मौतकी राह है—इसमें शान्ति नहीं है; सम्मान है, सन्तोष नहीं है। अतएव उसे अपने लिए तनिक सी पश्चात्ताप नहीं है। दूसरोंको सतानेमें जैसे वह कुछ

संकोच नहीं करता, वैसे ही अपने ऊपर अत्याचार करनेमें भी उसे कोई दुविधा नहीं होती।

इसी कारण जीवानन्दमें एक ऐसा लक्षण देखा जाता है जो अधिकांश पापाचरण करनेवालोंमें नहीं मिलता। यह उसका सुतीक्ष्ण हास्य-रस-बोध है। हास्यरसको अनेक संज्ञाएँ, अनेक नाम दिये गये हैं। एक हास्यके लक्षण बहुत-से दार्शनिकोंने व्यक्त किया है। हास्यरसके मूलमें हास्यरसिकका अपने भेद होनेका बोध रहता है। जो पैर फिसलनेसे गिर पड़ा है, उसको लेकर वही परिहास कर सकता है जो खुद गिर नहीं पड़ा। दो पक्षोंकी मार-पीटमें वही कौतुकका अनुभव कर सकता है जो उस मार-पीटसे बिलकुल अलग या निर्लिप्त है। साधारणतः पापीमें यह लक्षण नहीं रहता। उसका विवेक उसे हरघड़ी स्मरण करा देता है कि वह सबके नीचे है। प्रलोभनके निकट प्रतिदिन पराजित होनेसे उसका अपने सम्मान और प्रतिष्ठाका बोध विनष्ट हो जाता है। वह प्रलोभनसे दूर नहीं रह सकता, इसीसे निरन्तर यह अनुभव करके ही पीड़ित होता है कि वह पापके अत्यन्त गहरे दलदलमें गले तक डूब रहा है। पर जीवानन्दकी बात अलग है। वह पापकी अन्तिम सीमापर पहुँच गया है; किन्तु उसका अपनेको भेद समझना विलुप्त नहीं हुआ। कारण वह जानता है कि अधिकांश लोग अन्यायका आचरण करते हैं। जनार्दन रायमें और उसमें अन्तर यह है कि वह तथाकथित भले लोगोंकी तरह कपटका सहारा नहीं लेता। उसके पापाचरणमें भी क्षमायाचना नहीं है। जिस स्त्रीको वह काबूमें नहीं ला सकता, उसे सम्पूर्ण निर्विकार चित्तसे सिपाहियोंके पास भेज देता है। मजिस्ट्रेटके सामने आनेसे वह भागना चाहता तो भाग सकता था किन्तु निष्फल दैन्य दिखाना या कातर वचन कहनेकी उसमें रुचि नहीं है। इसीसे वह केवल दूसरोंपर ही व्यंग नहीं करता, अपने बारेमें भी उसके कौतुकका अन्त नहीं है। जान पड़ता है, उसके भीतर दो सत्ताएँ पास-पास बसती थीं। एक पापमें डूबी थी और एक कुछ दूरपर खड़ी होकर मजा देखती थी। एकने 'के' साहबके चंगुलसे बचनेकी राह खोजी है और एकने साहबकी बहुत दिनोंसे पोषित उसे फँसानेकी आकांक्षाके व्यर्थ होनेकी कल्पनामें कौतुकका अनुभव किया है। एकने षोड़शीकी चरम

साधनाका निष्ठुर प्रत्याख्यान बिना किसी संकोचके किया है और पकड़ जैसे ही निःसंकोच भावसे षोडशीके हाथसे विष ग्रहण कर लिया है।

इसी कारण जीवानन्दका परिवर्तन आकस्मिक होनेपर भी सामंजस्य रहित नहीं है। कोरी स्वच्छन्द-वृत्तिमें एक दैन्य है। एक अवकाशका परितृप्तिके अभाव-ही भाव और एक अतृप्ति बनती है उसके निवृत्त होनेपर और एक—इस तरह आत्मीयताका न चुकनेवाला एक अकेलापन रह जाता है। एकका साथ दूसरेका ग्रहण नहीं है; किसी प्रकार सुखका स्थायित्व नहीं है। इसीसे जिसने केवल कामनाका दमन ही सुखा है, वह अपने जीवनमें एक भारी खोखलापन भी देख पाता है। षोडशीसे खानेको माँगनेपर षोडशी जब कह उठी थी कि 'आपने दिन भर कुछ खाया नहीं और घरमें आपके भोजनकी कुछ व्यवस्था नहीं है—यह क्या कभी हो सकता है!" तब जीवानन्दने उत्तर दिया था कि "मैंने ऐसी व्यवस्था तो कर नहीं रखी कि मेरे न खानेके कारण और एक आदमी उपवास करके मेरे लिए थाली परोसे मेरी राह देखता बैठा रहेगा।" यह उत्तर सरल अवश्य है; किन्तु इसके भीतर एक गहरी वेदना छिपी हुई है। अपने जीवनका यह दैन्य षोडशीके संसर्गमें आकर ही उसने स्पष्ट करके समझा है। उसने अब तक नहीं जाना था कि स्त्रीका सतीत्व अधिकांश स्थानोंमें संकोचका एक आवरण मात्र ही है; इसीसे उसने व्यंग्य करके इस सतीत्वको कहा था। उसने जिन सब स्त्रियोंमें इसकी अपनी भारी अनुभूति देखी है वे पति-पुत्रवती थीं। जीवानन्दके निकट उनका सतीत्व भी एक प्राकृतिक स्वार्थ (Vested interest) का दूसरा नाम भर था। किन्तु षोडशीके संपर्कमें आकर उसने जाना कि स्त्रीका सतीत्व एक अत्यन्त सत्य है। इसके साथ सन्तोषका अथवा पति-पुत्रलोभका संबंध गौण है। उसकी व्यापक दृष्टि और भी स्पष्ट हो गई, उसकी नजरोंमें अपरूप रूप ही बदल गया। अब न यह षोडशी उसीकी भी अपना है। यह उसे ऐसा कुछ दे सकती थी, जो और कोई स्त्री नहीं दे सकी। जो आज मिल नहीं सकती उसीको उसने एक दिन अवहेलना करके, तुच्छ समझकर, छोड़ दिया था। इसके बाद उस निरभिमानका रूपान्तर अथवा कातर अनुनय-विनय। मनोहर राय आदिका उपद्रव उसने चाहे जिस तरह बंद किया है, अपने हाथ पकड़ होनेकी संभावनापर भरोसा किया है, किन्तु उसके इस परिवर्तनमें अब यह तत्त्व।

नहीं है। निर्मलके ऊपर उसे ईर्ष्या हुई है। षोडशीको उसने एकान्त मनसे अपनी करके पाना चाहा है। सम्पत्ति दान करते समय कहा है ' मैं संन्यासी हूँ? यह झूठ बात है। संसारमें अब मैं कुछ भी नष्ट न कर सकूँगा। यहीं मैं जीवित रहना चाहता हूँ—मनुष्योंके बीच मनुष्यकी तरह जीना चाहता हूँ। मुझे घर-बार चाहिए, स्त्री चाहिए, बाल-बच्चे चाहिए और जिस दिन मैं मरनेको रोक न सकूँ, उस दिन उनकी आँखोंके सामने ही चले जाना चाहता हूँ।" यह वही जीवानन्द है! जिस उच्छृंखल धनवान षोडशीके हाथसे विष पी लिया था और जो सबसे सर्वत्यागी जमींदार रोगशय्यापर हाथ पकड़कर सारे मोह-विश्वाससे दूर चला गया, इन दोनोंमें कितना अन्तर है अथ च दोनोंके भीतर कितनी फिर असंयम आकांक्षा और वैसा ही खूब गहरा निर्विकार वैराग्य है।

३

शरत्-साहित्यमें एक विशेष गुण यह है कि उसमें साधारणतः किसी अति-मानव और अतिमानवीकी सृष्टि नहीं की गई। शरत्चन्द्रने साधारण नर-नारियोंको चित्रित किया है। उनमें महनीय प्रवृत्ति है, तो भी उनकी व त्रुटियों-च्युतियों — भूल-चूकें अंकित की हैं, जो साधारण मनुष्यकी सीमाको लाँघकर असाधारणकी सीमा तक पहुँच गये हैं। वे वीर हैं, दूसरोंके वरेण्य आदर्श हैं। पुरुष-चरित्रोंमें जो कई एक खल-चित्र हैं, उनमें अकबर लठैत, धागा सरदार और फकीर साहबका नाम उल्लेखयोग्य है। बंगाल डकैतोंका देश है, यह अपवाद सर्वत्र सुना जाता है। किन्तु इन निन्दित पेशेवर अप्रसिद्ध योद्धाओंमें कैसी दक्षता और कैसी बहादुरीका परिचय प्राप्त होता था, इसका निदर्शन अकबर लठैत है। राजाकी सनातन सेवामें क्षमता बाहरसे आती है। वह युद्ध चाहे जो हो, जितने दिन तक नौकरीपर कायम रहता है, उतने दिन तक उसे मानना ही पड़ता है। कारण उनके पीछे समग्र राजशक्ति और कड़ा सामरिक आइन होता है। किन्तु अकबर जो पार-गाँवके योद्धाओंकी सरदारी करता है, उसकी बाहुमें किसी बाहरी शक्तिका आवेश नहीं, उसका अपना परिक्रम है। उसका बाहु-बल साधारण नहीं है, प्राण देनेसे भी वह पराङ्मुख नहीं है। किन्तु वह

किसी प्रलोभन या भयप्रदर्शनसे बेईमानी करनेको तैयार नहीं है। किसी शत्रुके पराक्रमको माननेकी उदारता और साहस भी उसमें है। राजाकी सम्पत्तिको वह अपना नहीं करता, किन्तु वहाँ जाकर अपने पराक्रमका चिह्न दिखाकर विचारकी भीख माँगनेकी दीनता उसमें नहीं है। वह रमाका आश्रित है किन्तु उसके अनुरोधसे भी कोई नीच काम करने, किसी ग़रीबका सहारा छीननेके लिए तैयार नहीं है। षोड़शीका सागर सरदार भी अक्षय सरदारके ही अनुरूप-चरित्रका आदमी है किन्तु उसका चरित्र उस तरह स्पष्ट नहीं हो पाया। वह षोड़शीका अनुचरमात्र है। वह षोड़शीके आश्रममें पला है। षोड़शीकी छायामें उसका व्यक्तित्व दब गया है—ढक गया है। फकीरसाहबके बारेमें भी यही बात लागू होती है। वह षोड़शीके अनुचर नहीं हैं, उसके गुरु हैं और षोड़शीके जीवनके सभी कामोंकी प्रेरणा उन्हींके पाससे आती है। किन्तु षोड़शीसे निकटसे हम उन्हें पृथक् करके नहीं देख पाते। एक दिन षोड़शी उनसे सब बातें कहनेमें कुंठित हुई थी और वह भी कुछ संदेहमें पड़कर कहीं चले गये थे। वह फिर नहीं मिले। इसके बाद जब दोनोंमें फिर भेंट हुई, तब संदेह और असन्तोष दूर हो गया है उनका गुरु-शिष्य-सम्बन्ध फिर स्थापित हो गया है। इसके बाद वह स्वतंत्र भावसे नहीं देखे गये। उनका जो व्यक्तित्व उनकी अपनी चीज था वह अस्पष्ट ही रह गया।

रमेश और विप्रदास—इन दो चरित्रोंमें शरत्‌चन्द्रने आदर्श पुरुषका परिपूर्ण चित्र खींचा है। इनके आचार-व्यवहारोंमें कुछ अन्तर है। रमेश आजकलका युवक है। वह जात नहीं मानता प्राचीन हिन्दूके अन्यान्य संस्कारोंपर भी उसकी दृढ़ आस्था नहीं है। विप्रदास प्राचीनपंथी या कट्टर हिन्दू है। हिन्दूके सनातन आचरणमें उसके अकुंठित विश्वासने ही वन्दनाके संशय निस्सार कर दिया है और उसीकी शान्त संयत, अविचलित धर्मनिष्ठा देखकर वन्दना उसकी ओर खिंची है। रमेशका चरित्र अंकित करनेमें शरत्‌चन्द्र विशेष निपुणता नहीं दिखा सके। रमेश एक आदर्शका प्रतीक मात्र है, वह सजीव मनुष्य नहीं जान पड़ता। उसने उच्च शिक्षा पाई है, गाँवमें आकर ग्राम्य-समाजका दोष दूर करना चाहा है और उसकी नीचताके विरुद्ध कमर बाँधकर खड़ा हुआ है। व्यर्थ मामलेमें फँसकर वह जेलखाने गया है; किन्तु इससे भी उसका उत्साह कम नहीं हुआ। बल्कि जेलमें उसे जो

अभिव्यक्ति प्राप्त हुई, उसने उसमें नए प्रकाशका पता पाया और रमा तथा तार्कीन उसे आश्वासन दिया है कि यह प्रकाश कभी नहीं बुझेगा। किन्तु मनुष्य तो केवल मर्त्य या मात्र काम करनेका यन्त्र नहीं है, वह अन्याय आत्माओंकी मशीन भी नहीं है। दूसरोंके उपकार या अपकारमें मनुष्यका सारा परिचय ही बिना मालूम मिलता है। उसका यथार्थ परिचय उसका हृदय या अन्तःकरण देता है जो शरत्के सब पात्रोंमें। आंशिक मात्रमें अपने रंगमें रँग सका है। अतएव यह नाट्यकारगण कहते हैं कि मानव-चरित्रकी मूल वस्तु कोई विचार या आदर्श नहीं—प्रकृतिकी भावमें भिन्न समय स्वतः स्फूर्तिकी प्राप्त अनुभूति है। और ये सूक्ष्म हैमन्तकी अनुभूतियाँ बिल्कुल भली या बिल्कुल बुरी नहीं होतीं। रमाके हृदयके अन्तरालमें हम प्रवेश नहीं कर पाते। उसका जितना कुछ परिचय पाते हैं उससे वह परोपकार करनेकी इच्छुका अवश्य जान पड़ती है रक्त-मांसके इस मनुष्यकी परिपूर्णता और वैचित्र्य उसमें नहीं है। नायक रमेश और प्रतिनायक वेणीको शरच्चन्द्रने परस्पर विरुद्ध प्रवृत्तियोंका प्रतीक बनाकर उनकी सृष्टि की है। इसका फल यह हुआ कि दोनों ही चरित्र अपूर्ण रह गये।

समाज-संस्कारोंके अन्तरालमें अनुभूतियोंका मानव-हृदय रहता है—इसका एक क्षीण आभास हमें रमाकी प्रेम-कहानीमें मिलता है। किन्तु यह कहानी भी सम्पूर्ण रूपमें परिस्फुट नहीं हुई। रमा केवल इतना कहती है कि उसने रमेशको बस एक मिनट दिया और रमेश तो रमाके मनकी बात समझ ही नहीं पाया। प्रथम बाल्यकालमें जिस दिन दोनोंकी भेंट हुई, उस दिन रमाने रमेशके हृदयका घनिष्ठ परिचय पाया था और उसने विश्वास किया था कि इस विलम्ब रमाके वर्षमानको बापको बदल दिया है। किन्तु भागकी कहानीमें इस कल्पनाका कोई प्रमाण नहीं देख पड़ता। रमाने अनेक उपायोंसे—यहाँ तक कि अनुमान द्वारा भी—अपने मनका भाव प्रकट करनेकी चेष्टा की है। किन्तु रमेशका मन क्या हुआ है मनुष्य खोजनेमें, गाँवके पथोंके जंगलोंमें, पानीका निकास बनानेमें। इन सब भारी कार्योंके कारण उसके मनकी बात नीचे दब गई है।

शरच्चन्द्रका श्रेष्ठ उपन्यास कौन-सा है, इस बातपर मतभेदकी गुंजाइश है। इस प्रसंगमें 'पराशर, 'श्रीकान्त'के प्रथम तीन पर्व, 'देना-पावना',

'चरित्रहीन', — इन उपन्यासोंकी याद याद आयेगी। किन्तु इस विषयमें मतभेदकी गुंजाइश कम है कि 'विप्रदास' शरत्चन्द्रकी सबसे निकृष्ट रचना है। पुराने आचारधर्मकी निष्ठा और चरित्रगौरवका चित्र 'विप्रदास' में खींचा गया है। किन्तु इसका आर्ट बहुत नीचे दर्जेका है। उपन्यासके प्रथम अंकमें विप्रदास और द्विजदासके बीच मतभेदका आभास है किन्तु यह आभास अर्थहीन है। कारण द्विजदास अपने दादा (भाई) और मामीका अन्धभक्त है। जो अरिस्टोक्रेटोंका उपासक है, वह प्रजा-विद्रोही नेता हो इससे बढ़कर हँसने लायक बात क्या हो सकती है? इसके बाद रंगमंचपर वन्दना आती है। वन्दनाने बहनके यहाँ जो तस्वीर पाई वह खूब मुखरोचक नहीं है। स्टेशनपर शराबके नशेमें चूर साहबोंसे घूँसेबाजी करके विप्रदासने इस लड़कीकी प्रशंसा आकर्षित की किन्तु बाहुबल और सम्मानित साहस मनुष्य-चरित्रकी गौण सामग्री है। कलकत्तेके घरमें जाकर विप्रदासने मेहमानोंके साथ एक पात्रमें भोजन नहीं किया। होटलसे साहबी खाना मँगाकर मेहमानोंके भोजनका प्रबन्ध कर दिया। इसे उपयुक्त अतिथि सत्कार भले ही मान लिया जा सकता है किन्तु इस चरित्रकी उदारताके रूपमें कल्पना करनेके बराबर भूल और क्या हो सकती है! आचारकी यौक्तिकताको लेकर वन्दनाने दो-एक बार प्रश्न उठाया है। विप्रदासने उन सब प्रश्नोंको मुसकाकर टाल दिया है और इस बारेमें अपनी माताकी दुहाई दी है। इन सब मामलोंमें दयामयीने जो व्यवहार किया है उसमें यथेष्ट कटुता है—कर्कशता है; किन्तु यह सब होने पर भी विप्रदासने कहा है कि उसकी माताकी आचार निष्ठामें संकीर्णता नहीं है। अन्धविश्वास कोई युक्ति नहीं है। यह मनके उदार या उदारताका भी परिचय नहीं देता। वन्दना जो विप्रदासकी ओर आकृष्ट हुई सो उसकी युक्तिके कारण नहीं उसके कामोंको देखकर भी उतना नहीं, जितना कि उसकी ध्याननिरत मूर्तिकी उज्ज्वल महिमाको देखकर। जान पड़ता है शरत्चन्द्र नारीकी सहज विश्वासपरायणताको लेकर व्यंग कर रहे हैं। विप्रदास प्राचीन आचारमें निष्ठा रखता है, किन्तु शिक्षित, तरुणी कुमारीका प्रणय-निवेदन सुनना उसकी रुचिको नहीं जँचता और निर्जन एक घरमें उस रमणीकी मर्यादारहित सेवा ग्रहण करके उसने अति-आधुनिकताका परिचय भी

दिया है। विप्रदास और बन्दनाका मामला अत्यन्त कुत्सित है। यह केवल नीतिके विरुद्ध ही नहीं रुचिविगर्हित भी है।

विप्रदासकी मातृभक्ति और दयामयीके पुत्रस्नेहका जो चित्र उपन्यासके प्रथम अंशमें दिया गया है वह अत्यन्त कौतुक उत्पन्न करनेवाला है। अब न जाने कितने वर्षोंका सुप्रतिष्ठित सम्बन्ध जिस दिन विप्रदासके साथ उनके मतभेदोंका कारण हुआ उस दिन टूट गया। घटनाक्रमने विप्रदासके साथ शठता की थी— उसे धक्का दिया था। धनकी हानिके फलस्वरूप देखा गया कि यह बात एकदम बेबुनियाद है कि अगाध निर्भीकता विप्रदासके चरित्रका प्रधान गुण है। बाहरकी सुदृढ़ताके आवरणके भीतर उनका जो मन है, वह ऐश्वर्य या आर्थिक हानिसे सहज ही विचलित हो जाता है। वह क्षमा करना नहीं जानता, सामंजस्य नहीं कर सकता। यहाँ तक कि उपन्यासके उपसंहारमें संदेह होता है कि पहलेके अंशमें जो चारित्रिक परिणतिकी सृष्टि की गई है उसे भंग करनेके लिए ही इस अंतिम अंशकी रचना हुई है। यह उपन्यास पहलेसे ही अन्तःसार-शून्य है। इसे हठात् चमत्कारपूर्ण बनाकर समाप्त करनेके लिए ही घटनाको रखा गया है। घटनाके साथ विप्रदासकी मित्रता, बन्दनाके साथ ब्याह, अपमान और विश्वासघातकता, सब कुछ एक साँसमें वर्णन कर दिया गया। इसके बाद उनके ऊपर एक भारी झगड़ा या हो-हल्ला खड़ा कर दिया गया जिसकी समाप्ति माता और पुत्रके विच्छेद, सतीकी मृत्यु और माता-पुत्रके पुनर्मिलनमें हुई। इससे चमत्कार अवश्य उत्पन्न हुआ, किन्तु यह परिणति कहानीकी अवश्यंभावी परिणति नहीं है और उपन्यासके पहलेके अंशमें दयामयी और विप्रदासके स्नेहके आदान-प्रदानकी जो कहानी कथन की गई थी, वह इसके बाद कोरा अभिनय ही जान पड़ती है।

६—शरत्-साहित्यमें शिशु

बाल-हृदयके अन्तस्तलमें छिपी बातोंको अभिव्यक्त करना वर्तमान युगके साहित्यका एक प्रधान लक्षण है। बंगलाके साहित्यमें भी यह विशेषता देख पड़ती है। रवीन्द्रनाथने शिशुओंके चित्तमें प्रवेश करनेकी चेष्टा की है। उनका 'डाकघर' शिशु, 'शिशु भोलानाथ' आदि इस प्रयत्नके निदर्शन हैं। शिशुके मनकी आशा, आकांक्षा और वेदनाको शरत्चन्द्रने अपने कई ग्रंथोंमें व्यक्त किया है—प्रकट किया है। यह प्रचेष्टा केवल रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र तक ही नहीं रह गई। इनके बाद बंगलामें जो साहित्य रचा गया है, उसमें सबसे अधिक उल्लेख-योग्य है विभूतिभूषण बंद्योपाध्यायकी 'पथेर पाँचाली'। पथेर पाँचालीमें 'अपू' की छवि अपूर्व है।

शिशु-चित्तकी निर्लिप्तता, सुदूरके लिए उसकी आकांक्षा, प्रकृतिके और नानी-दादीके मुखसे सुनी कहानियोंके साथ उसका संयोग—इन्हीं सब बातोंको रवीन्द्रनाथने विशद रूपसे लिखा है। जहाँ शिशुने खूब साधारण चीज माँगी है वहाँ भी हम देख पाते हैं कि शिशुके चित्तने साधारणके माध्यमसे विस्तीर्ण वस्तुकी आकांक्षा की है। पथेर पाँचालीमें विभूतिभूषणने बंगालके गाँवोंका चित्र खींचा है। यह चित्र अपूको केन्द्र करके खींचा गया है फिर भी, अपूकी अपेक्षा अपूकी पारिपार्श्विक अवस्थाने प्रधानता प्राप्त की है। अवश्य ही अपूके क्रमशः बढ़ रहे मन, शिशुके कौतूहल और उसके विस्मयका चित्र भी मनोज्ञ बना है।

शरत्चन्द्रने शिशु-मानसके अन्तरतम अन्तःप्रदेशमें प्रवेश करके उसकी विचित्र प्रवृत्तियोंको विचित्र रूप दिया है। शिशु-हृदयकी जो विशेषता

सर्वप्रथम उनमें एक यही, वह है उसकी तन्मयता। शिशु अपने सुख, यदि सुख जगत्‌में ऐसा डूबा है कि बाहरका कोई विषय उसे आकृष्ट ही नहीं कर सकता। बिन्दाके मनकी बात थी प्रकट न करने की। वह सयानोंके आगे कोई बात कह न पाती थी, इसी लिए बीच बीचमें परेशकी सहायता लेती थी। प्रलोभन दिखाकर उसने परेशको अपने काममें लगानेकी चेष्टा की है, किन्तु परेशके लिए वह उपलक्ष्य ही मुख्य हो गया है। बिन्दाने नरेन्द्रनाथकी खबर लेनेको उसे दो पैसेके बताशे खरीदनेके बहाने भेजा है, किन्तु वे बताशे खरीदना ही उसकी नजरमें इतना प्रधान हो गया—इसी बीच वह इस काममें ऐसा तन्मय हो गया कि उसे इसकी कोई खबर ही नहीं रही कि उधर बिन्दा कांटोंमें तन्मय हो रही है। और एक बार इंजनके वेगसे दौड़कर मैदान पार करके वह नरेन्द्रनाथको पकड़कर ले आया किन्तु वह भी हार-पत्ती पानेके लोभसे। बल्कि पहले मिल जाती तो वह निश्चय ही पतंग उड़ाने चल देता और नरेन्द्रनाथकी बात भूल जाता। रामलालके प्रिय दोनों रोहू मत्स्योंमें कौन कार्तिक है और कौन गणेश यह और कोई नहीं बता सकता था यहाँतक कि उनका एकान्त अनुगत भोला भी नहीं। किन्तु राम इन्हें ठीक ठीक पहचानता था। कारण, इनकी जो विशेषता थी, उसमें वह तन्मय रहता था। जिस तरह ज्योतिर्विद्याका पंडित एकाग्र निविड़ चित्तसे आ नक्षत्रोंकी विचित्रताको देखता है, साधारण दृष्टिसे जो सब पदार्थ एक ही जातिके जान पड़ते हैं उनके पार्थक्यका वैज्ञानिक जैसे निर्णय करता है, वैसे ही रामने भी इन दोनों मछलियोंके स्वभाव पुंखानुपुंख रूपसे जाँच रखे थे। हमारे लिए मछली खानेकी चीज है; दो मछलियोंमें अगर कोई भेद होगा तो वह स्वाद या नापका। रामके लिए कार्तिक और गणेश परम आत्मीय, भय व परम विस्मयकी वस्तु है। इसीसे उसने इतने घनिष्ठ भावसे उनका निरीक्षण किया है।

यहाँपर शिशु-चित्तकी एक विशेषतापर लक्ष्य करना होगा। शिशुके कामोंसे सयाने लोगोंके कामोंमें अन्तर है। और मौलिक सदृशता भी है। शिशुकी चिन्ता-धारा सयाने लोगोंकी चिन्ता-धारा जैसी ही होती है, केवल उसकी राह दूसरी है। शिशुकी अनुभूतियाँ अवश्य मानवोंकी अनुभूति जैसी ही हैं। केवल उनके विषय हम सयानोंकी दृष्टिमें तुच्छ हैं। बिन्दाने परेशको जब नरेन्द्रनाथकी खबर लेनेको भेजा था उस समय वे दोनों

ही उत्पन्न थे, किन्तु दोनोंकी उत्पत्तिका कारण एक ही न था। रमेशकी पत्नी शैल और हरीशकी भी नयनतारा, दोनों रुपये-पैसेके लिए, गृहस्थीके प्रभुत्वके लिए आपसमें झगड़ा करती थीं। घरके लड़के भी झगड़ा करते थे। पर उनका कारण बड़ी माके बिछौनेपर उनके साथ सोना था। वीरत्वकी प्रशंसा करना मनुष्यका धर्म है। श्रीकान्तने बड़े होनेपर अलेक्जेंडर और नेपोलियन आदिकी वीरताकी प्रशंसा की होगी किन्तु बचपनमें उसका मन उस वीरकी शक्तिपर मुग्ध हुआ था, जिसने स्टेशनपर केवल तीरसे ही युद्ध किया था और उस युद्धमें प्रतिद्वंद्वी पक्षको परास्त कर दिया था। शिशु सभी वस्तुओंको सरल निष्कपट चित्तसे देखता है। इसीसे वह स्टेशनकी वीरताकी तुच्छता या असारता नहीं समझ सकता। शिशुका सम्मान-बोध और स्वाभिमान वयस्क लोगोंसे कुछ कम नहीं होता, यद्यपि उसकी अभिव्यक्ति तुच्छ नगण्य पदार्थोंको लेकर होती है। पंचांगमें जो यह लिखा है कि मंगलवारको पीपलके पेड़को न छूना चाहिए और मंगलके दिन पंचांग नहीं देखना चाहिए, इस बातको रामने किसी तरह नहीं मानना चाहा। किन्तु जब सुना गया कि मोक्षद भी इस बातको मानता है तब फिर उसने कोई बहस नहीं की। कारण वह मोक्षदके आगे अपना अज्ञान प्रकट होनेकी सम्भावनाको सहन नहीं कर सकता था। किसी प्रियजनके साथ विच्छेद होने पर मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारके भावोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया होती है—आत्माभिमान, पश्चात्ताप, लज्जा क्षोभ रोष आदि ऐसे ही न जाने कितने भाव। हर एक आदमी मन-ही-मन विगत बातोंको फिर दुहराता है और एक मामलेको अलग पहलुओंसे घुमा-फिराकर देखता है। इस पर्यालोचनाके बीच अनेक मिथ्या, अनेक झूठे वाक्य, अनेक युक्तिहीन तर्क मिश्रित हो जाते हैं। अपनी माताको कच्चा अमरूद खींच मारनेके बाद उसका जो भीषण परिणाम हुआ, उससे पहले तो राम अभिभूत हो गया। इसके थोड़ी देर बाद ही उसने इस मामलेको तरह तरहसे सोचकर—पर्यालोचना करके—देखा। उसकी युक्ति गलत है, जिस मिथ्याके द्वारा उसने अपनेको और दूसरोंको बहलानेकी चेष्टा की, वह बहुत ही स्पष्ट है। उसका अभिमान या रूठना भी क्षण-भर ही ठहरनेवाला है लेकिन तो भी उसके मनमें अनेक भावोंका वही अभिनय हो गया, जो अभिनय सयाने आदमीके मनमें वैसी अवस्थामें हुआ करता है। केवल शिशुके मनमें भावकी जो क्रिया-प्रतिक्रिया होती है, वह साफ

और सोचो है और यही उसका शिशु-संबन्धी सारी [illegible] [illegible] [illegible] जाती है।

उसके चरित्रमें शिशुकी और एक विशेषता [illegible] हुई है। वह है उसकी चंचलता। शिशु किसी भी चीजको सम्पूर्णरूप [illegible] नहीं गह सकता [illegible] विस्तृत नहीं गह सकता। उसका उत्सुक मन किसी चीजमें [illegible] नहीं करता। शिशु जो कुछ एक बार [illegible] देखता है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए चलता है। अस्थिरता और [illegible] [illegible] [illegible] शिशु-[illegible] एक [illegible] स्वभाव है। [illegible] कभी पासे पर [illegible] हुए और [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] रोता है, और फिर वही [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करता है और [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] जीवनके जो कुछ [illegible] [illegible] [illegible] हैं, उनमें [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है। अपनी [illegible] [illegible] [illegible] पर एक [illegible] का [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] ही उसके विरुद्ध [illegible] कर बैठता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] न करनेकी प्रतिज्ञा करता है, और [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देखते हैं कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि अब उसे [illegible] [illegible] है, अब वह और कुछ [illegible] नहीं करता। [illegible] विश्वास है कि यह प्रतिज्ञा भी और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं हुई होगी। [illegible] दिन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिन [illegible] [illegible] [illegible] न हो पायेगा।

शिशुके इस [illegible] साथ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मनमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चीज है, [illegible] एक [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो गये थे, और यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न होगा।

२

इन्द्रनाथ शरत्चन्द्रकी बहुत सुन्दर सृष्टि है। उसे ठीक शिशु कहा जा सकता है या नहीं इसमें सन्देह है। श्रीकान्तके साथ जब उसका परिचय हुआ, तब वह शैशवको नाँघकर किशोरावस्थाकी सीमामें पैर रख चुका था। किन्तु, तो भी, उसके भीतर जिन सब वृत्तियोंने समधिक विकास प्राप्त किया है वे विशेष मात्रासे शैशव-कुसुम अर्थात् बच्चोंकी-सी ही हैं। परिणत अवस्थाकी परिपक्वता उसमें नहीं है। यदि कहा जाय कि शिशु-हृदयका साहस, निर्भीकता, चंचलता, परोपकार करनेकी इच्छा आदि विशेषताओंके जितने चित्र हैं, उनमें इन्द्रनाथ अतुलनीय है, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। बैरीके पीटर पैनकी एक कथा इस सम्बन्धमें याद आती है। किन्तु पीटर पैनके लिए बैरीने जिस परिमण्डलकी सृष्टि की है वह बच्चोंकी कहानीके इन्द्रजालसे भरा हुआ है। उसका ऐश्वर्य ऐसा है कि उसमें किसी मतभेदकी गुंजाइश नहीं है। उसकी लोकोत्तरता कल्पनाको आन्दोलित करती है। तो भी वास्तव जगत्के साथ उसका लगाव बहुत कम है और उसके रूपपर मुग्ध होने पर भी हमारी सन्देहन परायण बुद्धि नहीं मानती। लेकिन इन्द्रनाथ नानी-दादीकी कहानियोंके राज्यमें वास नहीं करता; वह हमें संकेतोंकी व्यापकतासे चकित नहीं करता। उसका कारोबार ठोस वास्तवके साथ है। अथ च इन्द्रनाथके कामोंमें भेदवाकी ऐसी एक छाप है जो अति मानवके आचरणमें पाई जाती है। किसी भी समय वह सर्वसाधारण मनुष्योंकी कोटिका नहीं जान पड़ता। रोमांसका क्रम यह है कि वह विस्मयका उद्रेक करेगा। इन्द्रनाथका सभी कुछ — हरएक काम — विस्मय पैदा करनेवाला है। उसकी कहानीमें वास्तवकी सरलता है, और रोमान्सकी परम आश्चर्यमय सुन्दरता भी है।

इन्द्रनाथकी जो विशेषता सबसे पहले हमारी दृष्टिको खींचती है वह यह है कि इन्द्रनाथ सचमुच महामानव है। वह अनेक प्रतिकूल अवस्थाओंमें पड़ा है फुटबालके मैदानमें मार-पीट, गंगाके प्रवाहमें ज्वार आनेके समय प्रचण्ड प्रतिकूल धारामें जाकर मछली चुराना, मछुओंके सजग रहने पर भी उनकी नावसे मछलियाँ ले भागना और साँप, बाघ, शुअर आदि वन्य हिंस्र पशुओंसे भरे मार्गोंमें घूमना, इत्यादि कार्य उसकी नित्यकी अभ्यस्त जीवनचर्याके अंग हैं। सभी विरोधोंके

ऊपर वह अपनी विजय-पताका उड़ाता चला गया है। जीवन-संग्राममें उत्पीड़ित दल-विगलित और पराजित मानवके लिए उसकी सहज करुणा, उसकी न चुकने-वाली परोपकारकी प्रवृत्ति, उसकी अम्लान सेवकिता सहयोग है— प्रेमकी वस्तु है सम्मानकी सामग्री है। इन्द्रनाथने कठिन प्रतिकूलताके विरुद्ध संग्राम किया है किन्तु वह इतने सहजमें अनायास ही उस विपत्तिसे अछूता निकल गया है कि जान पड़ता है कि जो दूसरोंके लिए प्रतिकूल है, वही उसके लिए अनुकूल है जिस राहको और लोग काँटोंसे भरी समझेंगे, उसी राहमें उसके लिए फूल बिछे हैं। मछलियाँ चुराकर लौटते समय मछुओंके आक्रमण करने पर तेज बहाववाली गंगाकी धारामें अपनी रक्षा करनेका सहज उपाय उसका जाना हुआ था और वही अति सरल सहजभावसे उसने श्रीकान्तको समझाया था—"अरे उन्हें मालूम हो गया तो क्या डर है? पकड़ लेना क्या कोई हँसी-खेल है? देख श्रीकान्त, कोई डर नहीं है। सालोंकी चार डोंगियाँ जरूर हैं, लेकिन अगर देखना कि घेर लिये गये, अब भागनेकी कोई राह नहीं है, तो झपसे पानीमें कूद पड़ना और एक गोतेमें जितनी दूर जा सको उतनी दूर जाकर फिर पानीके ऊपर आ जाना—बस। इस अन्धकारमें फिर देख पानेका सवाल नहीं है। उसके बाद सतुआके 'चर'* पर चढ़कर सवेरा होनेपर तैरकर इस पार आकर, गंगाके किनारे किनारे घर लौट आनेसे सब काम बन जायगा।" श्रीकान्त इस प्रस्तावसे विस्मित हो उठा, सन्नाटेमें आ गया; किन्तु इन्द्रनाथके लिए यह तो मजेकी चढ़ाई थी।

इन्द्रनाथके चरित्रका एक प्रधान लक्षण उसका असीम साहस है और यह साहस ही शिशु-चरित्रकी एक प्रधान विशेषता है। मनुष्य आगे-पीछे सोचना-विचारना सीखकर, लाभ हानिकी संभावनाका हिसाब लगाना शुरू करनेके बाद ही डरना शुरू करता है। शिशुके लिए यह सब झगड़ा नहीं है। लाभ और हानिके संबंधमें वह निर्लिप्त है। अतएव विपत्तिको वह विपत्ति नहीं समझता, अनिश्चितको सन्देह करके सावधान नहीं होता; बल्कि अनिश्चितके संबंधमें उसे एक कौतूहल होता है और वह उसके रहस्यको खोलनेके लिए आगे बढ़ता है। बेकनने कहा है—मनुष्यका मृत्युसे डरना बच्चेके अन्धकारसे डरने जैसा है। बालक या प्रौढ़

* नदीके भीतर धारमें बह कर आई हुई मिट्टी या बालूके जमा होनेसे जो एक टापू-सा बन जाता है उसे बंगालमें चर या चड़ कहते हैं।—अनुवादक।

होनेपर मृत्युका भय स्वाभाविक है कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकता; किन्तु यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि शिशुका अंधकारसे डरना उसकी सहजात (साथ पैदा हुई) वृत्ति नहीं है। अज्ञात अंधकारके भीतर क्या है, यह जाननेके लिए उसका न दबाया जा सकनेवाला भी कौतूहल और जाननेकी इच्छा है, उसे भूतकी कहानी कहकर और मृत्युका भय दिखाकर निवृत्त किया जा सकता है। मृत्यु क्या है यह वह जानता नहीं और भूतको उसने देखा नहीं। किन्तु इनके सम्बन्धमें उसने जो कहानी सुनी है, उससे उसके मनमें हुई धारणाने जड़ पकड़ ली है कि अंधकारमें बाहर निकलना खतरेसे खाली नहीं है। जो लोग अज्ञात रास्तेपर रहते हैं वे मनुष्यके लिए अनुकूल नहीं हैं। किन्तु इन्द्रनाथका मन इस संस्कार और झूठी शिक्षाके द्वारा पंगु नहीं हुआ था। इसीसे वह किसी भी विपत्तिकी परवाह नहीं करता, किसी भी दशामें संकुचित नहीं होता। वह मसानके पाससे आधी आधी रातको अनायास नाव निकालकर ले जाता है; जब उसे यह जान पड़ता है कि मछुओंको उसका पता चल गया है तब वह भुट्टेके खेतमें छिप जाता है वहाँसे ठेलकर नाव बाहर निकालनेके लिए सरपतोंहीके साथ आसानीसे उतर जाता है। शरत्, जैसे ही घाटके पर निशीथ निरीह बिल्कुल सीधे-सादे बालकी इधर उधर और अति निकटमें और कुछ नहीं, यही साँय-साँय है। गंगाके पानीमें भँवर पड़ रहे हैं और बालू बहा रहा है पासके कगारे धम-धमकर गिर रहे हैं। अगर मछुओंने पकड़ ही पाया, तो भी डरकी कोई बात नहीं है—६–७ कोस आराम बहते जानेसे ही काम बन जायगा। भले उसका चाहे जितना अनुचित काम करें, जो काम उन्हें उठा ले गया है, उस पापपर आक्रमण करना होगा और संभव हो तो नया रास्ता बनाना होगा। यह असम्भव आस्फालन या जबानी जमा-खर्च नहीं है, शुष्क व्यक्तिका आकाश-कुसुम नहीं है; यह वीरका सहज सरल संकल्प है। जो आदमी अत्यन्त धीरप्रकृति और हिंस्र पशुओंका सामना हो जानेसे तनिक भी विचलित नहीं होता, उसको नगरमें शुद्ध मनुष्य अगर किसी गिनतीमें न हो तो इसमें विस्मयकी क्या बात है! उन्मत्त धारमेंसे कोसों ऊपर चोर भी थी कुण्डल-मनको मार-पीटमें विशाल जनसमूहने उसे घेर लिया था। वह अगर तनिक भी विचलित हो जाता तो सहजमें वहाँसे छुटकारा न पाता। उसने फुर्तीके साथ

शत्रुपक्षको परास्त कर दिया है, अथ च इस लड़ाई-झगड़ेमें वह प्रशान्त है, अविचलित है। अपनेको बचानेकी अपेक्षा दूसरेकी रक्षापर ही उसकी दृष्टि अधिक है।

बड़े बड़े मामलोंकी अपेक्षा छोटे छोटे मामलों या बातोंमें ही अक्सर मनुष्यका सच्चा परिचय मिलता है। खेलके मैदानमें प्रतिपक्षके साथ कुश्तीमें और मछलियाँ पकड़नेके बारेमें साहसकी जरूरत थी—इन सब कामोंमें साहस न दिखानेसे अभीष्टकी सिद्धि न होती अथवा विपक्षी इससे अपना बचाव नहीं किया जा सकता। छिदाम बहुरूपियेकी कहानी कौतुक उत्पन्न करने वाली है। किन्तु इसमें इन्द्रनाथके साहसका श्रेष्ठ परिचय मिलता है। इन्द्रनाथ रातको भी गोसाईं-बागके भीतर होकर घूमता फिरता था। इस बागमें साँप और बाघ भरे पड़े थे। रातको इस राहसे आनेका कोई प्रयोजन भी न था। यद्यपि साँपों और बाघोंके भयसे और कोई आदमी इस राहसे निकलनेका साहस न करता था, लेकिन यही सीधी राह थी, इसीलिए वह इसी राहसे आता-जाता था। एक दिन रातको श्रीकान्तके घरमें बड़ी हलचल मच गई। आँगनके कोनेमें अनारके वृक्षके नीचे एक बड़ा भारी जानवर देख पड़ा। कोई कहता था, भालू है, कोई कहता था रॉयल बेंगाल टाइगर (बंगालका सिंह) है। सभी ओर जोरसे चीख-चिल्ला रहे थे, किसीको बचनेकी राह नहीं सूझ रही थी। उसी समय इन्द्रनाथ वहाँ आ पहुँचा। सारा हाल सुननेके बाद उसके मनमें केवल कौतूहल उत्पन्न हुआ। वह न तो वहाँसे भागा न स्त्रियोंके आर्तनादसे विचलित हुआ और न उसने मर्दोंकी चीख-चिल्लाहटपर ही ध्यान दिया। वह धीर शान्त भावसे यह जानने गया कि अनारवाले कोनेमें वह क्या चीज है और उसने बहुत संयत शान्त भावसे अपना अनुमान प्रकट किया। वहाँ छिदाम बहुरूपियेके निकलनेके पहले जो डरे हुए लोगोंका आर्तनाद और शोरगुल मचा था, उससे इन्द्रनाथका कोई ध्यान न था और बादको जो उपहासका वातावरण उठा उसमें भी वह शामिल नहीं हुआ। वह केवल निडर ही नहीं, निर्लिप्त भी है। उसकी इस निर्लिप्त निर्भीकताके मूलमें उसका यह सहज सरल ज्ञान था कि एक दिन मरना तो होगा ही। यह ज्ञान उसने दर्शनशास्त्र पढ़कर नहीं पाया यह उसकी अभिज्ञता और आन्तरिक अनुभूतिका फल है। यह उसके निकट प्रत्यक्ष है। बारबार मृत्युके सामने पड़कर—मृत्युका सामना

करके—उसने मृत्युको सहज कर लिया है। जो एकदिन अवश्य होनेवाला है, उसे उसने बाधा नहीं देना चाहा। इसीसे उसके चरित्रमें आस्फालन नहीं है, आडम्बर नहीं है। उसमें है शिशु-सुलभ निःशंक भाव, शिशु-सुलभ सरलता।

इन्द्रनाथका साहस उसके चरित्रका प्रधान गुण है; किन्तु वह केवल साहसका ही प्रतीक नहीं है। अगर वह केवल एक ही गुणका आधार होता तो उसमें परिपूर्ण मानवताका अभाव होता। शिशुकी निर्भीकता और निर्लिप्तताके साथ सहज सरल विश्वासका सामंजस्य भी उसमें है। इन्द्रनाथ निर्भय है; किन्तु उसमें शिशु-सुलभ बहुत-से अन्ध-विश्वास भी हैं। शाहजीके सब अद्भुत किस्सों और गप्पोंपर वह विश्वास करता है, साँप पकड़नेवाले मदारियोंका मंत्र प्राप्त करनेके लिए उसके आग्रहकी सीमा नहीं है। जिस विष उतारनेवाले पत्थरसे तीन दिनके भीतर साँपके काटे आदमीको जिलाया जा सकता है उसे हथियानेके लिए उसने शाहजी और अन्नदा दीदीसे बहुत अनुरोध-उपरोध किया है, खुशामद की है। उसकी धारणामें काफी प्रश्रय देखता है, उन्हें यदि गुरुदेवका फूल चढ़ाकर सन्दूक रखा जाय तो सारी विपत्तियोंसे, गुरुजनकी डाँट-डपटसे यहाँ तक कि शरीरकी अस्वस्थतासे भी छुटकारा मिल जाता है। जिस महामानवने नैसर्गिक और अनैसर्गिक किसी भी विपत्तिको कुछ नहीं समझा—तृणतुल्य माना—उसके हृदयमें निश्चल आत्मनिर्भर शीलताके साथ ही इन सहज सरल विश्वासोंकी धारा बहती थी। वह साहस, बहुत-सी बाधाओंको लाँघकर वह मछलियोंका संग्रह कर सका है कोई पार्थिव विपत्ति उसे संकुचित नहीं कर सकी। किन्तु अपार्थिव भूत-प्रेत आदिके सम्बन्धमें वह निश्चिन्त नहीं हो सका। मगर हाँ, एक भरोसा यह है कि यद्यपि भूत-प्रेत बहुरूपिए हैं तथापि वे स्वयं मछली नहीं उठा ले जा सकते। अन्धविश्वास मनुष्यकी आत्मनिर्भरशीलताको कमजोर करता है; किन्तु इन्द्रनाथका मन उनके युक्तिहीन विश्वासके द्वारा कुंठित नहीं हुआ। तीन बार रामका नाम लेनेसे भय भाग जाता है यह खूब सरल संस्कार है; किन्तु डरकर राम नाम लेनेसे रक्षा नहीं होगी क्योंकि वे जान जाते हैं कि यह डर गया है। इस तरह संस्कारने उसके चित्तको दुर्बल नहीं किया, बल्कि उसकी स्वाभाविक शक्तिको, विश्वासका सहारा देकर, संजीवित और परिपुष्ट ही किया है।

इन्द्रनाथ निर्भीक है, निर्भय है, किन्तु सबके ऊपर वह परोपकार करनेकी इच्छा रखनेवाला है। परोपकार करनेकी इच्छामें उसके चरित्रकी जिस दृढ़ निष्ठाका परिचय पाया जाता है वह हर किसी आत्मीयके मनमें विस्मय उत्पन्न करनेवाला है। बचपनके विषयमें पराया उपकार करनेकी क्षणिक उत्तेजना होना स्वाभाविक है; किन्तु इस प्रवृत्तिका सतत और सक्रिय रूपमें इन्द्रनाथमें जिस शक्तिका परिचय दिया है उसकी संयम-मति शिशुसे प्रत्याशा नहीं की जाती। सबकी विपत्तियोंमें मरे सामने चाकर दिया है उसकी संयम-मति भारी चाबा किया है विपत्तियोंमें कोई स्वार्थ नहीं है। पहलवानके लिए उसने भारी चाबा किया है। इसमें उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं है, चोरी उसका स्वभाव नहीं है। विपत्तिका वह डरता नहीं, विपत्तिके सामने जानेमें वह दहलता नहीं है, विपत्तिका वरण करनेके लिए उसने कोई आग्रह नहीं अपने लिए विपत्तिका वरण करनेके लिए, सबकी दीदीकी सहायता करनेके लिए, असहाय बालकको अस्पताल पहुँचाने लिवाना। दारिद्र्यसे पीड़ित अन्नदादा ... रक्षा करनेके लिए, असहाय बालकको सेविकाके उपायसे भूमिके परिवारके नये डाकाकी रक्षा करनेके लिए, पड़ोसियोंके घरके लोगोंको मैजिस्ट्रेटके उपायसे बारीक हाथसे बचानेके लिए, पड़ोसियोंके घरके खोलकर प्रस्तुत हुआ है। दुष्कारा देनेके लिए वह खुशीसे माता-पीता न सोचकर अविमृश्यकारिताके उसके काम अविमृश्यकारिता भरे हैं; किन्तु इस दुःसाहसिक अविमृश्यकारिताके पीछे बहुत गहरी परोपकार करनेकी इच्छा मौजूद है। उसने जो कुछ किया है उसके साथ पूरी ममता बसी हुई है। वह दैनिक नहीं है गरीबकी सन्तान नहीं है। विपत्तिका सत्कार करना दयनीय-मैत्रीके लिए भवतव्य समझना उसके लिए जरूरी नहीं। फिर भी वहीं दूसरेका कर देना वहीं समझकर भी न ठहर कर वह विपत्तिमें कूद पड़ा है।

इन्द्रनाथकी परोपकारकी इच्छा इतनी विश्वव्यापिनी है कि वह केवल जीवित प्राणियों तक ही सीमित नहीं। अज्ञात शिशुके नदीमें बह गए शवको भी उसे आग्रह किया है। उस शिशुका उसने बच्चेकी भाँति मातृक बाहुसे हाथसे उठाकर ले लिया और फिर वैसे ही स्नेहके साथ स्नेहके साथ अपनी नावमें उठाकर रख लिया और फिर वैसे ही लोटके साथ बालकके ऊपर सुला दिया। मृत-मृत शिशुको देखकर उसका कोमल हृदय और अधिक हिल और करुणाम द्रवित हो गया। मैं, बन्धुकी सुमर और उनम से अधिक हिंस प्रकृतिके पशुओं आदिके भयसे जो अभियान, उसने कुछ नहीं किया, उसकी इतना भी समझके लिए पानी गए हैं। यहाँ भी हम फिर शिशुजन्य भेदभाव-रहित सी समझके लिए पानी गए हैं। इन्द्रनाथकी धारणा यह है कि वह उसने शिशुके शवको छूकर परिचय पाया है।

मनमें मानो उस समय वह 'भैया' कहकर रो उठा था और उसकी प्रेतात्मा ठीक पीछे ही बैठी थी। इन्द्रनाथके चरित्रकी एक विशेषता यह है कि उसमें महामानवकी महिमा तथा शिशुकी चंचलता और सरलता एक ही समय पास-पास मौजूद रहती हैं। काली मांकी गुड़हलके फूलमें आसक्ति, रामनामकी महिमा, भूत-प्रेतोंका अस्तित्व आदि हिंदूके सभी संस्कारोंपर उसका अटल विश्वास है। अब ज्यों ही उसकी परोपकारकी वृत्ति जाग उठती है त्यों ही वह बहुत ही सहजमें इन सब संस्कारोंसे मुक्त हो जाता है। जिस लड़केको उसने नावपर उठा लिया था उसके बारेमें श्रीकान्तने जब आपत्ति उठाई कि न जाने किसी छोटी जातिके लड़केकी हो सकती है तो इन्द्रनाथ वैसे ही कह उठा—अरे वह तो मुर्दा है। मुर्देकी जाति क्या? यही जैसे हमारी यह डोंगी—इसकी क्या कोई जाति है? यह आमकी या जामुनकी चाहे जिस पेड़की लकड़ीसे बनी हो—समझा न? यह भी वैसा ही है।" उसकी इस युक्तिमें शिशुकी सरलता, निष्कपटता और तर्कशास्त्रकी अनभिज्ञता झलकती है; किन्तु इसके साथ ही सत्यकी भीतरी तह तक प्रवेश करनेमें जिस अनायासप्राप्त शक्तिका परिचय मिलता है वह केवल महामानवमें ही हो सकती है। अन्नदा दीदीके साथके प्रसंगमें भी बच्चों जैसी चंचलता बीच-बीचमें झाँक उठती है। वह अन्नदा दीदीको बहुत प्यार करता है। उनके लिए वह कोई भी कष्ट उठानेको तैयार है, अब वह साधारण कारणसे ही बच्चोंकी तरह नाराज हो उठता है। अन्नदा दीदीके गोपन इतिहासके बारेमें वह एक बच्चेकी तरह ही अनजान है। उसकी दीदी मुसलमान है यह उसे अच्छा नहीं लगा और क्रुद्ध होकर उसने उसके लिए दीदीको गाली दे डाली। अब वह उसने न जाने किस तरह यह भी अनुभव कर लिया कि जो बाहर प्रकट हो रहा है, वही एकमात्र सत्य नहीं है इसके भीतर बहुत गहरा रहस्य छिपा है। उसकी अनुभूतिकी यह अस्पष्टता भी बिल्कुल बच्चोंकी-सी है। अन्नदा दीदीको उसने कितना प्यार किया है यह वह जानता न था। इसीसे सहसा क्रोधित होकर उसने शाहजी और अन्नदा दीदीको गालियाँ दी हैं। साँपका मंत्र, जड़ी और सिद्ध [illegible] स्तम्भन मन्तर (पारस्माहरा) के बारेमें सब बात मालूम होनेपर उसकी बहुत दिनोंकी आशा धूलमें मिल गई है और इस आशा-भंगमें वह बच्चेकी तरह क्रोधित हो उठा है। दीदीकी इस सांत्वनापर भी कि 'यह सब झूठ है' जितनी करुणा, जितनी सत्यनिष्ठा और स्वार्थत्याग था—यह न समझकर

उसने अन्नदा दीदीको लगातार सैकड़ों रुपये खर्च कर डाले और फिर अवसर पर ही दीदीका पक्ष लेकर शाहजीके साथ मार-पीट भी की। किन्तु शाहजीके प्रति दीदीके पक्षपातका संदेह करके वह फिर क्रोधित हो उठा। उसके हृदयकी स्वच्छता, सरलता और बलिष्ठता, उसकी अनभिज्ञता, भय व सबकी राहमें प्रवेश करनेकी सहज क्षमता आदि उसकी सभी मानसियाँ अत्यन्त विस्मयजनक और एकान्त मनसे शिशु-सुलभ है।

इन्द्रनाथके चरित्रमें बलिष्ठता और कोमलता, दृढ़ता और चंचलता हृदयकी उदारता और बुद्धिकी संकीर्णताका जो समावेश हुआ है, उसकी बात पहले ही कही जा चुकी है। अब जिन दो आपस-विरुद्ध विशेषताओंका समावेश उसमें हुआ है, उनका भी उल्लेख करनेकी जरूरत है। पराया उपकार करनेमें वह सदा सक्षम है, उससे होनेवाले किसी भी कष्टको स्वीकार करनेके लिए सदा प्रस्तुत है, भय व अपने सम्बन्धमें वह सम्पूर्ण रूपसे उदासीन है। हेडमास्टरकी पीठके ऊपर असम्मान-सूचक कोई हरकत करके वह स्कूलसे भागा तो फिर वहाँ कभी नहीं गया। 'यह उसने ठीक समझा था कि स्कूलसे रेलिंग फाँदकर घर आनेकी राह तैयार कर लेनेपर फिर वहाँ और जानेकी राह [illegible] नहीं रहती।" किन्तु इसके लिए उसे कोई क्षमा या पश्चात्ताप नहीं, और न वहाँ लौटकर जानेके लिए आग्रह ही है। और इसी तरह एक दिन बहुत उसके घर-द्वार, विषय-सम्पत्ति, आत्मीय-सज्जन, सबको छोड़कर वह चला गया, फिर नहीं लौटा।" इस प्रकार भी लोग नहीं—दुःख नहीं, विलाप नहीं, आडम्बर नहीं। जितने दिन वह संसारमें, समाजमें था उतने दिन विजयी वीरकी तरह सारे प्रचलित शिक्षा-संस्कारोंको अमान्य करके पर्वत-प्रमाण बाधा-विपत्तियोंको तुच्छ मानकर चलता रहा। जिनके सम्पर्कमें वह आया, उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया, और उनकी ओर आकृष्ट भी हुआ। किन्तु जिस दिन वह चला गया, उस दिन मेहमानकी तरह निर्लिप्त भावसे चला गया, कोई बन्धन, कोई प्रलोभन उसे रोककर नहीं रख सका।

७–समस्याकी खोजमें

१

शरत्चन्द्रके 'पथेर दावी' और 'शेष प्रश्न' उपन्यास प्रकाशित होनेके बाद बहुत तर्क-वितर्क और आलोचनाएँ हुई हैं। इन दोनोंके साथ शरत् बाबूके अन्यान्य उपन्यासोंका मौलिक अन्तर है। कारण, ये तर्कमूलक हैं, अर्थात् इनकी प्रधान वस्तु कोई घटना नहीं है। जान पड़ता है कितने ही विचारोंका प्रचार ही इन दोनोंका उद्देश्य है। इब्सनके युगसे इस प्रकारके तर्कमूलक नाटकों और उपन्यासोंका यूरोपीय साहित्यमें प्रचार हुआ है। अनेक लोगोंके मतसे साहित्य है रूपकी सृष्टि। मनुष्यके चरित्र और अनुभूतिको लेकर ही उसका कारोबार है। तर्क और आलोचनाका प्रयत्न [illegible] है। हमारे देशमें तर्कप्रधान नाटक और उपन्यास यदि कहा जाय कि नहीं हैं, तो चल सकता है। रवीन्द्रनाथके 'गोरा', 'घरे बाइरे' और 'चार अध्याय' आदि उपन्यासोंमें आलोचनाका प्रवेश हुआ है किन्तु कवि स्वयं ही उस आलोचनाको मुख्य नहीं मानना चाहते। उनका विश्वास है कि प्रचारमूलक साहित्य क्षणिक समस्याको लेकर उसीमें मग्न रहता है, वर्तमानसे अतीत नित्य वस्तुकी खोज नहीं करता।

शरत्चन्द्रने यह युक्ति स्वीकार नहीं की। वरन् वे यह मानते हैं कि प्रत्येक उपन्यासमें एक छिपी हुई समस्या या प्रश्न रहता ही है। यह समस्या होती है कहानीकी समस्या, परिवारकी समस्या और उसके साथ रहती है और अनेक समस्याएँ। साहित्यिकका काम है कि वह उन समस्याओंको स्पष्ट करके समझे और उन्हें परिपूर्ण अभिव्यक्ति दे। साहित्यिक लोग कभी कभी

समस्याको प्रकट करते हैं अथवा समाधानका प्रयत्न करके उसे दबा देते हैं। दृष्टान्तस्वरूप उन्होंने रवीन्द्रनाथके 'योगायोग' उपन्यासका उल्लेख किया है, जिसमें ऐसी बाधाके आनेपर कहानीकी समस्याका अन्त हो गया है। दूसरे, शरत्चन्द्रने यह दिखाया है कि रामायण महाभारतसे आरम्भ करके पृथ्वीकी सभी चिर-स्मरणीय रचनाओंमें मतका प्रचार किसी-न-किसी रूपमें दिखाई देता है। इसके बाद उन्होंने यह भी स्मरण करा दिया है कि अगर यह मान भी लिया जाय कि आर्टका एकमात्र काम मनोरंजन करना है, तो भी यह स्वीकार करना होगा कि जिसे हम चित्त कहते हैं वह चीज परिवर्तनशील है, और एकका चित्त दूसरेके चित्तका अनुगामी नहीं भी हो सकता। चित्तकी जिस अवस्थामें बंकिमचन्द्रने 'कपालकुण्डला' की रचना की थी, उसी अवस्थामें उन्होंने 'आनन्द मठ' या 'देवी चौधरानी' उपन्यास नहीं लिखे। जिस व्यक्तिका चित्त 'गुल-बकावली' में अनुरक्त है, वह बर्नार्ड शाके नाटक पढ़कर खुश या सन्तुष्ट न होगा।

तत्त्व-मूलक या समस्या-प्रधान उपन्यासों और नाटकोंने साहित्यकी महफ़िलमें जगह घेरी है और जगह पाई है। इसीसे यह विशुद्ध या खरा साहित्य है कि नहीं यह प्रश्न करनेकी अब वैसी गुंजाइश नहीं है। यहाँपर केवल एक बात कह देनेसे ही काम चल जायगा। साहित्य उसके स्रष्टाके मनकी अभिव्यक्ति है। स्रष्टाका मन कभी विचार-बुद्धिसे हीन नहीं हो सकता। उद्देश्यहीन अभिव्यक्ति उन्मत्तका प्रलाप है। शरत्चन्द्रने ठीक ही कहा है कि साहित्यमें जो चिरस्मरणीय हुआ है, जो केवल रसकी सृष्टिके लिए ही रचित हुआ है—ऐसा जान पड़ता है, उसके भीतर भी मतवादकी आलोचना छिपी रही है। जो सब उपन्यास और नाटक प्रचार-मूलक हैं, उनके भीतर तर्क और आलोचना खूब प्रबल और प्रधान हो उठती है। प्रचलित साहित्यके साथ उनका यही एकमात्र भेद है। तत्त्वमूलक साहित्यकी एक विशेष कसौटी है। वह यह कि तर्क और आलोचनाके रस-सृष्टिमें विघ्नरूप होनेसे काम न चलेगा बल्कि तर्क और आलोचनाके भीतरसे ही वर्णित चरित्रको सजीव होना होगा। 'पथेर दाबी' और 'शेष प्रश्न', इन दोनों उपन्यासोंकी आलोचना करनी हो तो देखना होगा कि वे तत्त्वमूलक साहित्यके इस अवश्य स्वीकार्य शासनको मानकर चले हैं या नहीं।

२

'पथेरदावी' की एक विशेषतापर हमें पहले ही नजर रखनी होगी। शरत्चन्द्र दार्शनिक नहीं थे। जीवनके चरम सत्यका आविष्कार करना, विश्लेषण करना, प्रमाणित करना, दूसरे पक्षकी युक्तियोंका विचार करना उनका काम नहीं है। समस्यामूलक उपन्यास लिखनेपर भी, उन्होंने समस्याका समाधान देनेकी चेष्टा नहीं की। अथवा, अगर चेष्टा की हो तो उस प्रचेष्टाको सम्पूर्णांश जीवन-वेद मान कर ग्रहण किये जानेमें सन्देह है। वह सृष्टि करनेवाले हैं। उन्होंने कल्पना और अनुभूतिके द्वारा जीवनके चित्र खींचे हैं, उनके मूल्यका विचार नहीं किया। किन्तु कल्पना और अनुभूति काल्पनिक पदार्थ नहीं हैं, वे जीवन-बोधके ही अंग हैं। वे बुद्धिसे सम्पूर्ण रूपसे अलग भी नहीं हैं। अतएव कल्पना और अनुभूतिसे जो चित्र खींचा जाता है, उसमें जीवन-वेदका संकेत पाया जा सकता है और वह संकेत शायद कोरे बुद्धि-मात्र प्रमाणकी अपेक्षा अधिक सत्य है। 'पथेर दावी' उपन्यासमें, खासकर उसके नामकरणमें शरत्चन्द्रके जीवनका बहुत ही स्पष्ट इशारा मिलता है। धर्महीन नीतिहीन समाज और धर्मके द्वारा जो नारी लांछित और उत्पीड़ित हुई है उसके प्यार प्रेम करनेके अपराजेय अधिकारको शरत्चन्द्रने स्वीकार किया है। यही उनके उपन्यासकी विशेषता है और उनकी यह स्वीकृति 'गृहदाह' उपन्यासमें यहाँ चरम सीमातक पहुँच गई है जहाँ एक ही नारीके हृदयमें परस्पर-विरोधी प्रणयका संचार हुआ है। नारीके इस अधिकारको पथेर दावी (राहका दावा) कहकर अभिनन्दित किया जा सकता है और यह राहका दावा ही शरत्साहित्यकी मूल बात है। 'पथेर दावी' राजनीतिक विषयका उपन्यास है, किन्तु इसकी व्यंजना बहुत व्यापक है। 'शेषेर परिचय' के प्रथम परिच्छेदमें हम देखते हैं एक नारी अपने पतिको छोड़कर अपना जीवन दूसरेके हाथमें अर्पण करना चाहती है। उसके पतिका एक मित्र विरक्तभावसे आचार मर्यादाकी दुहाई देकर उस मेयरको उसे वापस फिर लाया है। लेखककी जो सहानुभूति है, उसकी दृष्टिमें स्त्रीत्वका कोई मूल्य नहीं है उसने नयनताराका व्यक्ति-स्वातंत्र्यका दावा स्वीकार कर लिया है। 'पथेर दावी' समितिका लक्ष्य बतलाते हुए सव्यसाचीने कहा है—" जीवन-यात्रामें मनुष्यका राह चलनेका अधिकार जितना बड़ा और

कितना पवित्र है, इस सम्पूर्ण सत्यको ही मानो मनुष्य भूल गया है। आप लोग, अथवा जो इस दलके सभ्य हैं, वे अपने सारे जीवनद्वारा यही बात मनुष्यको स्मरण करा देना चाहते हैं।" भारतीने कहा है—"हम सभी पथिक हैं। हमारे बाद जो लोग आयेंगे, वे जिसमें बिना किसी उपद्रवके चल सकें, उनकी अबाध मुक्त गतिको कोई न रोक सके, इसलिए हम मनुष्यमात्रकी राहपर चलनेके मनुष्यके सब प्रकारके दावेको स्वीकार करके सब बाधाओंको तोड़-फोड़कर चलेंगे। यही हमारी राह है।"

यह जो राह चलनेके अबाध अधिकारका दावा है, इसीकी घोषणा शरत्चन्द्रने पार्वती रमा सावित्री, राजलक्ष्मी आदिका पक्ष लेकर की है। यही राजनीतिक और सामाजिक उपन्यासोंके बीचका संयोग सूत्र है। 'पथेर दाबी' राजनीतिक विप्लवका उपन्यास है, किन्तु इसका एक और तात्पर्य है, जो सामाजिक है। अपूर्व एक पुण्याचारी बंगाली ब्राह्मण है। यह उसकी व्यक्तिगत प्रकृति है, जिसका 'पथेर दाबी' के सभ्य अत्यन्त सम्मान करते चलते हैं। किन्तु इस निष्ठावान ब्राह्मणके अति निष्ठावान पाचक ब्राह्मणके जीवनकी रक्षा ईसाई भारतीके हाथका पानी पीकर हुई है। इसके अलावा भारती अपूर्वको प्राणोंसे भी बढ़कर चाहती है और भारतीके ऊपर अपूर्वका हृदय भी आकृष्ट हुआ है। यह जो दोनोंका परस्पर एक दूसरेके प्रति अनुराग है, उसके बीच अपूर्वके धर्मविश्वासने व्यवधान खड़ा कर दिया है। अगर प्रेमके दावेको शिरोधार्य करना हो तो अपूर्वकी व्यक्तिगत प्रकृतिका सम्मान नहीं किया जा सकता। अपूर्व और भारतीकी इस समस्याके अंतिम समाधानका कोई चित्र नहीं खींचा गया। सामाजिक आचार व्यक्तिकी राहको किस तरह कंटकाकीर्ण कर देता है, इस ओर केवल इशारा करके ही ग्रंथकारने उपन्यासका परदा खींच दिया है।

सामाजिक समस्याका उल्लेख रहनेपर भी 'पथेर दाबी' राजनीतिक विप्लवका उपन्यास है, और उसी भावसे इसपर विचार करना होगा। राजनीतिक विप्लवके विषयको लेकर बंगला-साहित्यमें बहुत-से उपन्यास लिखे गये हैं। बंकिमचंद्रके 'आनन्दमठ' रवीन्द्रनाथके 'चार अध्याय' और शरत्चन्द्रके 'पथेर दाबी' का नाम इस संबंधमें सबसे पहले आता है। आधुनिक उपन्यास-लेखकोंने

२

'पथेरदाबी' की एक विशेषतापर हमें पहले ही नजर रखनी होगी। शरत्चन्द्र दार्शनिक नहीं थे। जीवनके चरम मूल्यका आविष्कार करना, विश्लेषण करना, प्रमाणित करना दूसरे पक्षकी युक्तियोंका विचार करना उनका काम नहीं है। समस्यामूलक उपन्यास लिखकर भी उन्होंने समस्याका समाधान देनेकी चेष्टा नहीं की। अथवा, अगर चेष्टा की हो तो उस प्रचेष्टाको सम्पूर्ण जीवन-दर्शन मान कर ग्रहण किए जानेमें सन्देह है। वह सृष्टि करनेवाले हैं। उन्होंने कल्पना और अनुभूतिके द्वारा जीवनके चित्र खींचे हैं, उनका मूल्यका विचार नहीं किया। किन्तु कल्पना और अनुभूति स्वाधीन पदार्थ नहीं हैं वे जीवन-स्रोतके ही अंश हैं। वे बुद्धिसे सम्पूर्ण रूपसे अलग भी नहीं हैं। अतएव कल्पना और अनुभूतिसे जो चित्र खींचा जाता है, उसमें जीवन-वेदका संकेत पाया जा सकता है और वह संकेत शायद कोरे बुद्धि-मात्र प्रमाणकी अपेक्षा अधिक सत्य है। पथेर दाबी उपन्यासमें जानकर उसके नामकरणमें शरत्चन्द्रके जीवनका बहुत ही स्पष्ट इशारा मिलता है। क्षमाहीन प्रीतिहीन समाज और धर्मके द्वारा जो नारी वंचित और उत्पीड़ित हुई है उसका प्यार-प्रेम करनेके अपराजेय अधिकारको शरत्चन्द्रने स्वीकार किया है। यही उनके उपन्यासकी विशेषता है और उनकी यह स्वीकृति 'गृहदाह' उपन्यासमें यहाँ चरम सीमापर पहुँच गई है जहाँ एक ही नारीके हृदयमें परस्पर-विरोधी प्रेमका संचार हुआ है। नारीके इस अधिकारको पथेर दाबी (राहका दावा) कहकर अभिनन्दित किया जा सकता है और यह राहका दावा ही शरत्साहित्यका मूल स्वर है। 'पथेर दाबी' राजनीतिक विषयका उपन्यास है किन्तु इसकी व्यंजना बहुत व्यापक है। 'समिति' के साथके प्रथम परिच्छेदमें हम देखते हैं एक नारी अपने पतिको छोड़कर अपना जीवन पथके काममें अर्पण करना चाहती है। उसके पतिका एक मित्र निन्दात्मक आचार स्वीकारमें रोड़ा देकर उस लौटाकर ले जानेके लिए आया है। समितिकी जो मालकिन है उसकी दृष्टिमें सतीत्वका कोई मूल्य नहीं है, उसने नवयुवतीके व्यक्ति-स्वातंत्र्यका दावा स्वीकार कर लिया है। पथेर दाबी समिति का दावा करनेवाले सव्यसाची कहते हैं—"जीवन-यात्रामें मनुष्यका राह चलनेका अधिकार कितना बड़ा और

कितना पवित्र है, इस सम्पूर्ण सत्यको ही मानो मनुष्य भूल गया है। आप लोग, अर्थात् जो इस दलके सभ्य हैं, वे अपने सारे जीवनद्वारा यही बात मनुष्यको स्मरण करा देना चाहते हैं।" भारतीने कहा है—"हम सभी पथिक हैं। हमारे बाद जो लोग आवेंगे वे जिसमें बिना किसी उपद्रवके चल सकें, उनकी अबाध मुक्त गतिको कोई न रोक सके, इसलिए हम मनुष्यत्वकी राहपर चलनेके मनुष्यके सब प्रकारके दावेको स्वीकार करके सब बाधाओंको तोड़ फोड़कर चलेंगे। यही हमारी राह है।"

यह जो राह चलनेका अबाध अधिकारका दावा है, इसीकी घोषणा शरत्चन्द्रने पार्वती रमा सावित्री, राजलक्ष्मी आदिका पक्ष लेकर की है। यही राजनीतिक और सामाजिक उपन्यासोंके बीचका संयोग सूत्र है। 'पथेर दाबी' राष्ट्रनीतिके विषयका उपन्यास है, किन्तु इसका एक और तात्पर्य है, जो सामाजिक है। अपूर्व एक धर्माचारी बंगाली ब्राह्मण है। वह उसकी व्यक्तिगत प्राप्ति है जिसका 'पथेर दाबी'के सभ्य अत्यन्त सम्मान करके चलते हैं। किन्तु इस निष्ठावान ब्राह्मणके जीवनकी रक्षा ईसाई मालतीके हाथका पानी पीकर हुई है। इसके अलावा मालती अपूर्वको प्राणोंसे भी बढ़कर चाहती है और मालतीके ऊपर अपूर्वका हृदय भी आकृष्ट हुआ है। यह भी दोनोंमें परस्पर एक दूसरेके प्रति अनुराग है, उनके बीच अपूर्वके धर्मविश्वासने व्यवधान खड़ा कर दिया है। अगर प्रेमके दावेको शिरोधार्य करना हो तो अपूर्वके व्यक्तिगत धर्मनिष्ठाका सम्मान नहीं किया जा सकता। अपूर्व और मालतीकी इस समस्याके अंतिम समाधानका कोई चित्र नहीं खींचा गया। सामाजिक आचार व्यक्तिकी राहको किस तरह कंटकाकीर्ण कर देता है, इस ओर केवल इशारा करके ही ग्रंथकारने उपन्यासका परदा खींच दिया है।

सामाजिक समस्याका उल्लेख रहनेपर भी 'पथेर दाबी' राष्ट्रनीतिक विषयका उपन्यास है, और इसी भावसे इसपर विचार करना होगा। राजनीतिक विषयको लेकर बंगला-साहित्यमें बहुत-से उपन्यास लिखे गये हैं। बंकिमचन्द्रके 'आनन्दमठ' रवीन्द्रनाथके 'चार अध्याय' और शरत्चन्द्रके 'पथेर दाबी' का नाम इस संबंधमें सबसे पहले आता है। आधुनिक उपन्यास-लेखकोंमें

भी इस विषयको लेकर उपन्यासोंकी रचना की है। उनमें सर्वश्रेष्ठ गोपाल हलदारका 'एकदा' उपन्यास है। इस क्रममें 'चार अध्याय' सबसे निकृष्ट उपन्यास है। विप्लविक-पंथमें मनुष्यका कैसा पतन होता है, इसका चित्र रवीन्द्रनाथने इसमें अंकित किया है। किन्तु वह इस विषयकी अनुभूति या उपलब्धि गंभीर भावसे नहीं कर पाये—तह तक नहीं पहुँच सके। उनके नायक-नायिका देशप्रेमोंकी प्रेरणासे इस राहमें नहीं आये हैं। कोई कामके परिवारसे भागकर आया है; कोई लेबोरेटरीमें विज्ञानकी चर्चा न कर पाकर क्षोभ मिटाने आया है, कोई प्रेमकी पुकारका उत्तर देनेके लिए गुप्त समितिमें आ फँसा है। ये कोरे बड़े देशप्रेमी नहीं हैं। किसी व्यक्तिकी राह पाते कितनी विप्लविकामस्त हो, उनको स्वाधीनताकी आकांक्षासे प्रेरणा मिलती है। रवीन्द्रनाथ विप्लविक-पंथके स्वरूपको पहचान नहीं सके। अतएव उनका खींचा चित्र विकृत हो गया है। बंकिमचन्द्रने सत्यानन्दके देशप्रेमका उज्ज्वल चित्र खींचा है; किन्तु उन्होंने महापुरुषके मुखसे सत्यानन्दकी असफलताकी संकीर्णताका प्रचार किया है। महापुरुषने सत्यानन्दको नियुक्त किया था, कहानीमें वह संकल्पकी चरमसे पहुँच भी गये हैं; किन्तु उपन्यासकी घटनाके साथ उनका संयोग घनिष्ठ नहीं है। गोपाल हलदारकी अन्तर्दृष्टि बहुत पैनी और गहरी है उन्होंने एक नायकको केंद्र बनाकर विप्लविक-पंथकी अनिवार्य व्यर्थता और अनतिक्रमणीय आकर्षणका चित्र खींचा है। वह नायक सम्पूर्ण रूपसे विप्लविक-पंथी नहीं है, अथ च इसका मूल्य देना वह जानता है। उसका अनुभूतिशील हृदय इसकी ओर आकृष्ट हुआ है, किन्तु उसकी विचार बुद्धिके निकट विप्लविक-पंथी साधक आगमें फाँदनेको तैयार पतंग-सा प्रतीत हुआ है।

शरत्चन्द्रने अन्य रीतिका सहारा लिया है। विप्लविक-पंथके दोनों पहलू दिखानेके लिए उन्होंने दो चरित्रोंकी परिकल्पना की है। इस ग्रंथके प्रधान चरित्र सव्यसाचीने भारतमें अंग्रेजी राज्यके और यूरोपकी सभ्यताके विरुद्ध तीव्र विद्वेषका प्रचार किया है। किन्तु मार-काटकी विरोधी अनुभूति और मत भी इसी ग्रंथमें सबसे अधिक जोरदार ढंगसे प्रकट हुआ है। सव्यसाचीकी प्रति भारतीके रूपमें चित्रित हुआ है। उसीके साथ साथ अपूर्वरतन और एक

चरित्रकी सृष्टि की है जिसकी शक्ति कम है, जिसने समस्याओंके प्रबल प्रभावका अनुभव किया है, जो उनके प्रति भक्ति, श्रद्धा और ममतासे विचलित हुआ है किन्तु उनके हिंसाके मंत्रको शिरोधार्य नहीं कर सका। वह है भारती। इस ग्रंथके नायक हैं डाक्टर सव्यसाची और नायिका है भारती। परन्तु इन दो प्रधान चरित्रोंके बीच जो संबंध है, वह नायक-नायिकाका सम्बन्ध नहीं है—नायक और प्रतिनायकका सम्बन्ध है। भारती 'पथेर दाबी'की सेक्रेटरी है, किन्तु जब इस समितिका स्वरूप उसकी समझमें आ गया तब वह इससे दूर हट गई है और उसने बारंबार डाक्टरको स्मरण करा दिया है कि यह राह पापकी राह है, वह किसीका भी कोई कल्याण नहीं कर सकती। भारतीने कहा है—"तुम्हारी 'पथेर दाबी' समितिके पहलेकी मायसे मेरी आँख खुल रही है।" डाक्टरने जो काम करनेका ढंग निकाला है, उसकी संकीर्णता और नीचताके विरुद्ध भारतीका मन विद्रोही हो उठा है। उसने न रोकी जा सकनेवाली भाषामें व्यक्त किया है—"लेकिन मैं यह बात किसी तरह नहीं मानूँगी कि इसके सिवा और कोई राह नहीं है और मनुष्यकी सारी खोज ही एकदम समाप्त हो गई है। एक जनके मंगलके लिए, और एक जनका अमंगल करना ही होगा—इसे मैं किसी तरह चरम सत्य मानकर ग्रहण नहीं करूँगी—तुम्हारे कहनेसे भी नहीं।" भारतीने यह दिखाया है कि कोरी युक्तिके द्वारा विचार करनेपर भी डाक्टरका मतवाद चल नहीं सकता—इसमें न्याय-शास्त्रका अनवस्था नामका दोष आता है। डाक्टरने कहा है कि हिंसाको छोड़कर विप्लवकी दूसरी कोई राह नहीं है। इसपर भारतीने उसे स्मरण करा दिया है कि "रक्तपातका बदला अगर रक्तपात ही है तो उसका भी तो बदला रक्तपात होगा, और उसके भी बदलेमें इस एक रक्तपातके सिवा और कुछ नहीं मिलेगा।" इस तरह न चुकनेवाले वेगसे हिंसाकी धारा बहती जायगी और शान्ति तथा कल्याणकी राह चिरकाल तक अनाविष्कृत ही रह जायगी—उसका आविष्कार न होगा।

३

'पथेर दाबी' विप्लवका उपन्यास है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु इसका प्रधान उपक्रम या प्रयोजन विप्लवका प्रचार नहीं है। यह तो विभिन्न

दे सकूँगी। सुमित्रा मरने दे सकती है, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकती।" उसके अपने हृदयकी गूढ़ बात बहुत तरहसे प्रकाशित हुई है। सबसे अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति तब हुई है, जब 'पथेर दाबी समिति' की सेक्रेटरी भारतीने अपूर्वसे कहा है—'समझ तो मेरा सकता नहीं अपूर्व बाबू, कुछ-न-कुछ करनेको चाहिए। किन्तु आप जैसे अनात्मीय ऊपर अगर हुकुम चलानेको मिले तो मैं और सब कुछ छोड़ दे सकती हूँ।" भारतीके हृदयके इस रहस्यको पहचान सकनेके कारण ही 'पथेर दाबी' की सृष्टि करनेवाले डाक्टरने अपूर्वको छोड़ दिया था।

और एक दिशामें भी सव्यसाचीकी साधनाका रहस्य चित्रित हुआ है। वह विप्लवी हैं, किन्तु जीवनके वृहत्तर प्रयोजन और आदर्शके संबंधमें उदासीन नहीं हैं। उन्होंने आप ही स्पष्ट करके कहा है—"भारतकी स्वाधीनताके अतिरिक्त मेरा अपना और दूसरा काम नहीं है किन्तु यह समझनेकी गलती भी मैंने किसी दिन नहीं की कि मानव-जीवनमें इससे बड़ी कोई कामनाकी वस्तु नहीं है। स्वाधीनता ही स्वाधीनताका अन्त नहीं है। धर्म, शान्ति, काव्य, आनंद—ये और भी बड़ी चीजें हैं। इनके सम्पूर्ण विकासके लिए ही स्वाधीनता है, नहीं तो इसका मूल्य क्या है?" इस वृहत्तर आदर्शका परिचय देना ही शशीके उपाख्यानकी अन्यतम सार्थकता है। शशी शराबी है अमितव्ययी या विश्वप्रेमी है। किसीकी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य नहीं है और भारतीको यह विश्वास है कि किसी जीवको उस प्यार करना संभव नहीं है। उसे सबोंने गाली दी है, बुरा-भला कहा है किन्तु डाक्टर उसके बहुत दिनोंके सुहृद् हैं। उन्होंने कभी किसी भी दशामें उसका त्याग नहीं किया। डाक्टरने उसे केवल स्नेह ही नहीं किया, इस स्नेहके मूलमें बहुत गहरी श्रद्धा भी रही है और भारतीकी ऊपर स्नेह भी क्रमशः प्रीतिके रूपमें बदल गये हैं। और सबोंने शशीकी व्यक्ति कलंक और पराजयका ही देखा है किन्तु सव्यसाचीने उसके शक्ति-विकासको पहचाना है, जिसे कलंक छेद नहीं कर सका, जिसने शक्तिको परम अर्थपना मलिन नहीं कर सकी। शशीकी सम्पर्किनी मात्रता और अविवेचित उदासीनताकी चरम अभिव्यक्ति हुई है नवताराके प्रति उसके मनके भावमें और गुणोंका तथा परिचय अकेले सव्यसाचीने पाया है। इसीसे डाक्टरको शशीकी अत्यन्त आवश्यकता है। वह

जानते हैं कि किसी कामके लिए अगर वह कभी लौटकर आवें तो छातीसे ही अपमानकी भिक्षा माँगेंगे और उनके छोड़ देने पर भी वह छातीको नहीं छोड़ेंगे। इसी कारण इस विद्रोही नेताने कविको उद्देश करके कहा है—"तुम कवि हो, तुम देशके बड़े शिल्पी हो। तुम राजनीतिसे बड़े हो, इस बातको न भूलो। तुम्हारा परिचय ही तो जातिका सच्चा परिचय है। तुम्हारे बिना इसका बयान किस भाँतिसे होगा? एक दिन स्वाधीनता-पराधीनताकी समस्याका फैसला होगा ही—उस दिन इसके दुःख-दैन्यकी कहानीको अनुभूतिसे अधिक मूल्य नहीं मिलेगा किन्तु तुम्हारे कामके मूल्यका निरूपण कौन करेगा? तुम्हीं तो देशकी सब विच्छिन्न बिखरी हुई भाव-धाराको मालाकी तरह एक सूत्रमें गूँथकर दे जाओगे।" इस उच्छ्वसित उक्तिमें कविका परिचय पाया जाता है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु इससे भी अधिक स्पष्ट परिचय एक विस्मयी कलाका मिलता है।

'पथेर दाबी' में कल्पनाकी समृद्धि गठन-कौशल और रचनाकी निपुणताका परिचय प्रचुर परिमाणमें पाया जाता है, और इसके कई विलक्षण चरित्र बहुत ही सुन्दर ढंगसे अंकित हुए हैं। किन्तु इसमें अपरिणतिके निदर्शन भी यथेष्ट हैं। उन सब अपरिणतियोंपर दृष्टि आकृष्ट करनेके पहले, शरत्चन्द्रकी चिन्ताधारामें जो एक मौलिक मर्मभूमि है उसे जाननेकी जरूरत है। पहले ही कहा गया है कि 'पथेर दाबी' नाम रखनेमें शरत्चन्द्रके जीवन-वेदका संक्षिप्त सार मौजूद है। पथके दावाका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्यकी स्वतन्त्रताके अधिकारका दावा मान लेना होगा। प्राचीन आचार या सामाजिक नियम इस अधिकारको मान लेना नहीं चाहते, इसीसे उनके विरुद्ध विद्रोहका प्रयोजन है और इस विद्रोहकी वाणीने ही शरत्चन्द्रकी नारी-चरित्रोंकी परिकल्पनाको जगाया है। किन्तु प्रश्न यह है कि अगर सभी लोग स्वतन्त्रताका दावा करने लगें तो समाजकी व्यवस्था न बच सकेगी। बर्नार्ड शॉने जब इब्सनके नाटकोंकी समालोचनाके माध्यमसे अपने मत-वादका प्रचार शुरू कर दिया था, तब उन्होंने अबाध व्यक्ति-स्वातंत्र्यका जयजयकार किया था। किन्तु फिर सामाजिक आदर्शोंको सिंहासनच्युत करके उन्होंने ही एक प्राणशक्तिकी परिकल्पना की है जो निरंकुश है जो अप्रतिहत वेगसे व्यक्तिको चला रही है। इसी मामलेमें विद्रोहके पुरोहित व्यक्तिकी स्वाधीनताको

छोड़नेके लिए बाध्य हुए हैं। लांछित नारीके भीतर जो मिटी न पानेवाली शुभ्रता है, उसे शरत्चन्द्रने उद्घाटित किया है—खोलकर दिखाया है। किन्तु यदि समाज किसी स्त्रीके पदस्खलन या अथवा स्त्रीके पतित्यागका अभिनन्दन करे, तो फिर यह प्रश्न उठेगा कि क्या सभी तरहकी उच्छृंखलताको समाज मान ले? और अगर वह उसे मान न ले सके तो अनियन्त्रित समाज और सुनियन्त्रित चिन्ताके बीच वह कहाँपर लकीर खींचेगा? शरत्चन्द्रके साहित्यमें इस जिज्ञासाके ठीक उत्तरका कोई सूत्र नहीं पाया जाता। ऐसा नहीं जान पड़ता कि उन्होंने समस्याके इस पहलूपर नजर डाली है। 'पथेर दाबी' उपन्यासमें यह असंगति और तरहसे प्रकाशित हुई है। सव्यसाची 'पथेर दाबी-समिति'को कायम करनेवाले हैं। वह व्यक्तिकी स्वाधीनताको सुप्रतिष्ठित करके मनुष्यकी पैदल चलनेकी राहको निष्कण्टक बना देना चाहते हैं। किन्तु उनकी समितिमें हम देख पाते हैं कि यह आदर्श कहीं भी नहीं चलता। जो लोग समितिके शत्रु हैं, उनकी हत्या करनेके अधिकारका प्रश्न न उठाकर भी हम देखते हैं कि समितिके भीतर भी कोई स्वाधीन नहीं है। नवतारा किससे ब्याह करेगी, इस सम्बन्धमें उदारताका अवलम्बन करना सहज है। कारण, उससे सव्यसाचीके कामका सम्बन्ध नहीं है। किन्तु समितिके काममें वह किसीको भी स्वाधीनता देनेके लिए तैयार नहीं हैं। समितिके दो आईन हैं—(१) डाक्टरके पीछे या सामने डाक्टरके कामकी आलोचना नहीं की जा सकेगी। (२) डाक्टरके विरुद्ध बगावत खड़ी करना घोर अपराध है। इसका एकमात्र दण्ड मृत्यु है।

डाक्टरने राजशक्तिके विरुद्ध हिंसात्मक विद्रोहके अधिकारको स्वीकार कर लिया है किन्तु अपने विरुद्ध विद्रोह या अपने कामकी आलोचनाके अधिकारको स्वीकार करनेमें वह कुण्ठित हुए हैं। केवल एक बार अपूर्वने पथेर दाबीकी परिकल्पनाकी मौलिक अयौक्तिकताकी ओर उँगली उठाई थी; किन्तु डाक्टर इस प्रश्नको टाल गये हैं। डाक्टर एक विशेष प्रकारकी समितिके संस्थापक या स्रष्टा और नेता हैं। उनके प्रयोजनसे इस तरहका नियम बनाना पड़ा है। किन्तु यहाँपर हम जिस असंदिग्धताका परिचय पाते हैं, माय-बापकी ओरसे धारता-[illegible]की वही मौलिक [illegible] है। नियमकी शृंखला और स्वाधीनताके पक्षका

विचार—इन दोनोंका समन्वय किस तरह हो सकता है, इसका कोई संकेत शरत्‌चन्द्रकी रचनामें नहीं पाया जाता।

'पथेर दाबी' की कहानी रचनेमें जो सब त्रुटियाँ हैं, उनका उल्लेख करनेकी जरूरत है। सव्यसाची विस्मयजनक चरित्र है और उनके भावों और विचारोंका चित्र बड़ी ही निपुणताके साथ खींचा गया है किन्तु उपन्यासलेखक उनके जीवनके रहस्यको सम्पूर्ण रूपसे खोल नहीं सके हैं। पहले तो हम देखते हैं कि वह अपने कामके ढंगको कभी प्रकट नहीं करते। बर्मामें वह केवल कुछ दिनोंके लिए आये थे और वहीं सुमित्राकी सहायतासे उन्होंने एक समितिका संगठन किया था। किन्तु उनकी असल कार्यपद्धति क्या है, यह जाननेका उपाय नहीं है। हीरासिंह उनकी इस कार्यधारासे परिचित है किन्तु वह केवल खबर देता है, असल बात प्रकट नहीं करता। पथेर दाबीके सभ्योंमें कृष्ण ऐयर सुमित्रा डाक्टरके पुराने बन्धु हैं। वे कुछ कुछ खबर रखते हैं किन्तु जान पड़ता है कि उनकी जानकारी भी बहुत थोड़ी है। एक उदाहरण देनेसे ही यह बात स्पष्ट हो जायगी। डाक्टरने एक बार कहा था—"बस्ती सम्पत्ति भामोंकी राहमें और भी कुछ उत्तरमें है। कुछ सम्पदा करीब माफ है, सिपाहियोंके हाथ वह अच्छे हाथोंमें मिलेगा।" उन्होंने नीलकान्त जोशीके प्रसंगमें कहा है कि पल्टनके सिपाहियोंके नाम बता देनेसे फाँसी न होती और उसने सिपाहियोंको मित्र बनानेके लिए जानकर ही प्राण दिये थे, धर्मकी आज्ञापालनके मतलबसे नहीं। तैयब और सिराज् युद्ध-सामग्री आदिका उल्लेख करके डाक्टरने भारतीको आश्वासन दिया है कि "आज जो लोग हमारे शत्रु हैं, कल वे मित्र भी हो सकते हैं।" अन्यत्र हम देख पाते हैं कि उनके शिष्य महादेव और सुरेन्द्र रेजिमेंटमें थे और वहींसे फंदामें जाकर पकड़े गये हैं। इन सब आभास-इंगितोंसे जान पड़ता है कि भारतीय सैनिक दलमें विद्रोहकी वाणीका प्रचार करके उन्हें षड्‌यन्त्रमें सम्मिलित करना सव्यसाचीके अभियानका अंग है। किन्तु इन सब बातोंका कोई चित्र नहीं है। जो कुछ आभास और इंगित है, वह भी अस्पष्ट है।

और एक असंगतिपर भी ध्यान देना होगा। सव्यसाची सन् १९११ में टोकियोमें बम फेंकनेके मामलेमें लिप्त थे। उनके षड्‌यंत्रका जाल सियाम, चीन

और सिंगापुरतक फैला है। कामके सिलसिलेमें उन्होंने सेलेबिस, पैसिफिक महासागरके द्वीपोंको देखा और अमेरिका भी जा सकते हैं। इन सब बातोंकी गुप्त समितियोंके साथ भारतवर्षमें स्वाधीनताके उपार्जनका सम्बन्ध क्या है उसका उपन्यासमें कहीं भी उल्लेख नहीं। डाक्टरके जीवनकी दो-एक विस्मयमें डाल देनेवाली घटनाएँ हम सुन पाते हैं, पर उनका समग्र स्वरूप हमें नहीं मिलता। एक बार उद्दीप्त होकर—जोशमें आकर—डाक्टर कह उठे हैं—"सुनोगी सम्पूर्ण इतिहास? कैंटनकी एक गुप्त सभामें सन-यात-सेनने मुझसे एक बार कहा था—"। यहींपर सुमित्रा आदिके आ जानेसे यह प्रसंग दब गया और फिर उठाया ही नहीं गया। सन-यात-सेनके उल्लेखका एक अर्थ हो सकता है। सन-यात-सेनने स्वदेशकी स्वाधीनता प्राप्त करनेकी चेष्टा विदेशमें रहकर की थी और वह चेष्टा सफल हुई थी। सन-यात-सेन पश्चिमवासी थे। जान पड़ता है, उनकी बात याद करके ही शरत्चन्द्रने सव्यसाचीको निर्वासनके समय संग्रामकी तैयारीमें लगाया है। किन्तु सन-यात-सेन चाहे स्वदेशमें रहे चाहे और कहीं रहें, वह देशके स्वाधीनताके आन्दोलनसे बिछुड़े नहीं, बल्कि सदा उसकी अगली पंक्तिमें ही रहे हैं। किन्तु सिंगापुर या शंघाईके चैंगोको इनके साथ भारतकी स्वाधीनता-आन्दोलनका संयोग क्यों है, यह कहीं भी वर्णन नहीं किया गया। यह भी समझमें नहीं आता कि सव्यसाची विदेशमें गुप्तसमितियोंका जाल क्यों बिछा रहे हैं। केवल एक बार उन्होंने स्वयं इस अर्थगर्भित रहस्य खोलनेकी चेष्टा की है। भारतीने उनसे प्रश्न किया—'तुम्हारी अपनी जन्मभूमिमें क्या तुम्हारा काम नहीं है?" इसके उत्तरमें उन्होंने कहा—

क्योंकि कामसे मैं इस देशको छोड़कर शहरमें न जाऊँगा। इस देश (बर्मा) की स्त्रियाँ स्वाधीन हैं; स्वाधीनताके मर्मको वे समझेंगी। उनकी मुझे बड़ी जरूरत है। इस देशमें अगर कभी तुम आग जलते देख पाओ तो तुम चाहे कहीं रहो भारती यही याद करना कि यह आग स्त्रियोंने ही लगाई है।" पूर्व-एशियाकी औरतें आज़ाद हैं, इसी कारण भारतके विप्लवी बर्मा, चीन, सुमात्रा, युरोपमें घूमते फिरेंगे और शहरमें बमाको छोड़कर नहीं जायेंगे यह युक्ति बिलकुल नहीं जम सकती। कोई कोई कहेंगे कि कविकी सृष्टि हमेशा युक्तिको मानकर नहीं चलती; किन्तु जो कल्पना युक्तिको सम्पूर्ण रूपसे छोड़ देती है, वह मानसिकरोगीका स्वप्नमात्र है; वह सृष्टि नहीं कर पाती।

जान पड़ता है शरत्चन्द्रने इस उपन्यासको यथासंभव विस्मयजनक बनाना चाहा है। किसीके जीवनमें आश्चर्यजनक घटनाओंका अभाव नहीं होता। जिन्होंने धनगोपाल मुखोपाध्यायका 'My brothers face' उपन्यास पढ़ा है, उन्होंने उसमें ऐसी जोरदार घटनाओंका वर्णन मिलता है जिनके आगे गिरीश महापात्रकी या डाक्टरोंके मौतोंकी कहानी हार मानती है। शरत्चन्द्र मानो इन सब परम अद्भुत घटनाओंके मोहमें पड़कर अपनेको उससे मुक्त नहीं कर सके। एक दृष्टांत देनेसे ही यह संदेह पक्का हो जायगा। सुमित्रा 'पथेर दाबी समिति'की प्रेसीडेंट है। किन्तु उसके साथ भारतवर्षका संयोग क्यों है? उसके पिता बंगाली थे किन्तु मां यहूदी। वह चोरोंसे अफीम और शराब पहुँचाती थी। वह सारी पृथ्वीमें घूमी है, किन्तु भारतवर्षमें आकर उसने इसके साथ रक्तका सम्बन्ध अनुभव किया हो, इसका कोई परिचय नहीं मिलता। डाक्टरने उसे पहले बटाविया और सुराबायाकी राहमें देखा। बापकी वह बहुत बड़ी सम्पत्तिकी अधिकारिणी होकर जावाको छोड़ गई। उसके चरित्रका जो चित्र खींचा गया है, वह ग्रन्थकारकी सृष्टि करनेकी निपुणताका परिचय देता है किन्तु पथेर दाबीके इतिहासमें उसका आना एकदम आकस्मिक है और भारतवर्षके स्वाधीनता-आन्दोलनके साथ उसका कोई आन्तरिक लगाव नहीं है। स्वयं सुमित्राके आने और अन्तर्धान होनेमें ही नहीं एकसे अधिक स्थानोंपर ऐसा आभास मिलता है कि जापानने जब कोरियाको हड़प लिया था, उस समय इसके उत्तर-चीनके सेक्रेटरी मारमद तुर्कोंनी मन्चूरियामें पकड़ लिये गये थे। किन्तु इन सब मामलोंके साथ भारतकी स्वाधीनता प्राप्त करनेका सम्बन्ध क्यों है? जान पड़ता है, स्मार्टी छिपी, उसका वार्षा पठान जापान, कोरिया मचूरिया—इन सबका सम्मिश्रण कराकर एक आश्चर्यजनक कहानी गढ़ डालना ही उपन्यास-लेखकका उद्देश्य है। किन्तु चौंका देनेवाली आश्चर्यजनक कहानीको भी सत्य, सजीव होना चाहिए। 'पथेर दाबी' उपन्यासका बहुत-सा अंश नाटक इस मानस स्वीकार करने योग्य दावेको पूरा नहीं कर सका। चमत्कार पैदा करनेकी चेष्टाके कारण कहानी असम्भव और चरित्र अस्पष्ट हो गये हैं।

४

पश्चिम देशोंकी युवा सभ्यताओंने आवेग जीवनकी कल्पना अव्याहत गतिके हिसाबसे — सभी मनुष्य पथके पथिक हैं इस धारणासे, की है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि सत्यकी उपलब्धि उन्हें एक गतिशील पदार्थके रूपमें हुई है अर्थात् सत्यको उन्होंने एक गतिशील पदार्थ समझा है। भारतीसे उन्होंने यही बात स्पष्ट करके कही है। वह विप्लवी हैं जो स्थिर होकर जमाये बैठा है, उसके वह विरोधी हैं। वह केवल राज्-शक्ति या प्राचीन संस्कार को ही तोड़ डालना चाहते हों यह बात नहीं है; सत्यके सम्बन्धमें नई परिकल्पनाका प्रचार भी उन्होंने किया है और इसी नवीन परिकल्पनाने उनकी सारी प्रचेष्टाको उद्दीपित किया है। वह रक्षाके अर्जनको स्वीकार नहीं करते। कारण, वह राजनीतिक विप्लवी हैं, उनका मार्ग हिंसाका मार्ग है दूसरोंको नष्ट करके वह आदर्शतक पहुँचना चाहते हैं, और इस अभीष्टकी सिद्धिके लिए वह कोई भी काम करनेमें कुण्ठित नहीं हैं। इसके लिए वह चिराचरित नीतिधर्म छोड़नेको तैयार हैं। कारण उनका विचार है कि हम लोगोंने चिरकालसे नीति कहकर जिस मजबूतीसे पकड़ रखा है उसे सत्य माननेका कोई कारण नहीं है। उन्होंने भारतीसे स्पष्ट करके कहा है—
"तुम लोग कहते हो परम सत्य परम सत्य और ये अर्थहीन निष्फल शब्द तुम लोगोंके निकट बड़े मूल्यवान् हैं। मूर्खोंको बहकानेके लिए इतना बड़ा मन्त्र और कोई नहीं है। तुम सोचते हो कि झूठको ही बनाना होता है; सत्य शाश्वत, सनातन और अपौरुषेय है। पर यह झूठ है। मिथ्याकी तरह ही मानव जाति रोज रोज इसकी भी सृष्टि करती चलती है। सत्य शाश्वत या सनातन नहीं है इसका जन्म है, मृत्यु है। मैं झूठ नहीं कहता, मैं मनोयोगसे सत्यकी सृष्टि करता हूँ।"

प्रश्न यह है कि सत्यका स्वरूप कैसा है? इसका क्या कोई जन्म, मरण नहीं है? या प्रतिदिन हर घड़ी इसकी नये सिरेसे सृष्टि होती है? इसके भी क्या जन्म और मृत्यु हैं? परिवर्तनशील जगत्‌में क्या ऐसा कुछ नहीं है जो गतिसे परे हो, जो अभ्रान्त और अपौरुषेय हो? यदि ऐसा कुछ नहीं है तो मनुष्य

जिस चीज़की खोजमें चल रहा है। शरत् बाबूके 'शेष प्रश्न' उपन्यासमें यही प्रश्न विशेष रूपसे अभिव्यक्त हुआ है। इस उपन्यासकी नायिका कमल है। उसका पिता चायके बागका साहब है। मा परिवारहीन बंगाली विधवा है। आसामके एक क्रिश्चियनके साथ पहले कमलका ब्याह हुआ था। उसकी मृत्युके बाद उसका शिवनाथसे परिचय हुआ, और इन दोनोंका ब्याह शैवमतकी विधिसे हो गया। विवाह-सभामें जो लोग उपस्थित थे, उन सभीने कहा कि विवाहका अनुष्ठान तो कुछ भी नहीं हुआ। ब्याहमें तो भारी धोखाबाज़ी रह गई। किन्तु कमलने मनमें कोई सन्देह न रखकर इस धोखाबाज़ीको मान लिया। कारण शिवनाथका मन ही अगर उससे हट जाय तो उस पतिको वह अनुष्ठानकी खोखली आशासे कैसे बाँध रखेगी? यहींपर हम कमलके मनका मूल रूप पाते हैं। वह कहती है— "वह मुझे अंगीकार नहीं करेंगे और मैं इसीसे गर्दन पकड़कर उन्हें स्वीकार कराने जाऊँगी? सत्य झूठ जानना और जिस अनुष्ठानको मैं नहीं मानती उसीकी रस्सीसे बाँधकर पकड़ रखूँगी?" कमलके मतमें सत्यका एकमात्र स्थान मनुष्यका मनमें है; आचार-अनुष्ठान आदि मनुष्यकी चित्त-धाराका बाहर प्रकट होना भर है। मनके परिवर्तनके साथ उसका परिवर्तन होना चाहिए। और अगर यह न हो तो इन अनुष्ठानोंका कोई मूल्य ही नहीं रहता। इसीसे कमलको उन सब चीज़ोंके विरुद्ध क्रोध हुआ, जिन्होंने बाहरसे मनुष्यको बाँधनेकी चेष्टा की है। जैसे अतीतकी स्मृति, प्राचीन आदर्श और अनुष्ठानका शासन। इसी कारण किसी भी काममें परिणति या परिणामको ही वह एक मात्र सत्य नहीं कह सकी। उसके निकट "सत्य केवल (जीवनके) चंचल क्षण हैं, सत्य उसके चले जानेका क्षण-भर है कोई आनन्द स्थायी नहीं है। है केवल उसके क्षणस्थायी दिन। यही तो मानव-जीवनका चरम सत्य या पूँजी है। उसे बाँधनेकी चेष्टा करनेसे ही वह मर जाता है। इसीसे विवाहका स्थायित्व है उसका आनन्द नहीं।" परिणामपर बल न होनेके कारण ही कमलके निकट मोहका भी मूल्य है। कारण, जब तक वह रहता है, तब तक वह सत्य है। इसी कारण उसने अक्षितसे कहा है—"सूर्य ध्रुव है कि नहीं, यह मैं नहीं जानती, किन्तु कुहेलिका (कुहासा) भी मिथ्या प्रमाणित नहीं हुई। वह दोनों ही नश्वर हैं, शायद ये दोनों ही क्षणिक हों किन्तु तब भी सत्यसे बढ़के आ रहे हैं। वैसे ही मोह भी मुझे ही

जो मिथ्या नहीं है, उस भरका आनन्द लेकर ही वह बारम्बार लौट आता है।"

बाहरके शासनको माननेमें कुण्ठित होनेके कारण ही कमल अति संयमके विरुद्ध है। मनुष्यके भीतर स्थित प्रवृत्ति परितृप्तिके बीचसे अपनी अभिव्यक्तिका मार्ग खोजती फिरती है। सामाजिक अनुशासन अभिव्यक्तिकी इस आकांक्षाको रोकता है नियमित करता है। कमलने इस अनुशासनको स्वच्छन्द होकर स्वीकार नहीं किया और वह कभी उसके आदर्शका अंग नहीं हो सका। उसका आदर्श आनन्दकी अनुभूति है। इसीसे उसने जहाँ देखा है कि आनन्दका सुधा-पात्र आत्मोत्सर्गके छिद्रपथसे खाली हो गया है, वहीं उसका मन दुःख और ग्लानिसे भर गया है। शिवनाथने उसके साथ प्रतारणा की है, उसे धोखा दिया है, किन्तु उसके विरुद्ध कमलका कोई अभियोग नहीं है। उसकी शिकायत आशु बाबूके विरुद्ध हुई, जिन्होंने मृत पत्नीकी यादमें अपने सारे सुखका त्याग कर दिया है; उसकी शिकायत नीलिमाके खिलाफ है, जिसने पराये घरकी गृहिणी और पराये लड़केकी जननी बनकर अपनेको दूसरेके लिए दे डाला है। और उसका सबसे तीव्र विद्रोह है आश्रमके ब्रह्मचर्यवाले आदर्शके विरुद्ध—जो आदर्श न स्वाभाविक है और न सुन्दर।

यह तो हुआ कमलका मतवाद। इस मतपर वह सम्पूर्ण विश्वास करती है। इस उसने अपने जीवनमें सत्य बना डालनेकी चेष्टा की है। उसकी प्रथम परीक्षा तब हुई जब शिवनाथने उसे धोखा दिया। शिवनाथको उसने प्यार किया था; लेकिन कुछ दिनके बाद ही उसने शिवनाथकी अर्थ-लोलुपताका परिचय पाया, और उसके बाद अजितके मुखसे सुनकर उसने जाना कि यद्यपि शिवनाथ उससे कह गया था कि वह जयपुर जायगा, तथापि वह वहाँ नहीं गया—आगरेमें ही है और आशुबाबूके घर जाकर रोज गान-बजानेका अभ्यास करता है। इसके बाद उसने शिवनाथके बीमार होनेकी खबर सुनी। वह शिवनाथकी सेवा करनेके लिए तैयार हुई किन्तु आशुबाबूको उसने स्पष्ट करके समझा दिया कि वह शिवनाथके साथ फिर मिलना नहीं चाहती, उन दोनोंमें जो संबंध विच्छेद हुआ है, वह सामयिक मान-अभिमान या मन-मुटावका फल नहीं है। आशुबाबूके साथ उन्हींके घरमें जाकर उसने

देखा कि मनोरमा शिवनाथकी छातीके ऊपर सिर रखकर सो गई है। उसकी सेवा करनेके लिए जाकर कमलने समझ पाया कि शिवनाथको कुछ हुआ नहीं—वह अस्वस्थ नहीं है, आगुन्तुकाका लाड़ और मनोरमाका निरन्तर सान्निध्य पानेके लिए ही उसने यह बीमारीका ढोंग रचा है।

कमलने जिस दिन आश्रमवासिका निकट अपने वेश-विन्यासका डिब्बा मँगाकर और कौतुकके साथ अत्यन्त निर्मम भावसे ग्रहण किया था और जिस दिन अजितसे उसे मालूम हुआ कि शिवनाथ जयपुर जानेका बहाना करके आगरेमें ही है, दोनोंमें कमसे कम पन्द्रह दिनका अंतर है। अतएव उसने जो नीड़ (घोंसला) बनाना शुरू किया था, वह बिल्कुल ही अचानक नष्टभ्रष्ट हो गया। यह घटना जैसे आकस्मिक, वैसे ही असहनीय अनुमानी जा सकती है। अतएव कमलके मन-बलकी परम परीक्षा यहींपर हुई। जो बात और किसी स्त्रीको कठोरतम दुःखमय प्रतीत होती उसीको कमलने प्रति हृदयमें शान्त मनसे ग्रहण किया। कमलके इस परम संकटकी घड़ीमें वह रत्तीभर भी विचलित नहीं हुई। शिवनाथके निकटसे उसे जो पाना था, वह उसने पाया है। जब शिवनाथका मन ही उसकी ओरसे फिर गया, तब उसने अनुष्ठानको पकड़े रखना नहीं चाहा, आइनका सहारा नहीं लिया, नीतिकी दोहाई नहीं दी। उसने शिवनाथके प्यारको जैसे सत्यके निष्कलंक विश्वाससे ग्रहण किया था, वैसे ही उसकी प्रतारणाको उसने शिरोधार्य किया—तनिक भी उसके मुँहपर मैल नहीं आया। यहाँतक कि उसने जिस दिन शिवनाथको अकेला पाया उस दिन जब उसका सारा छल-कपट पकड़ लिये जानेपर भी उस नीचपनसे उसके निकट अपनेको पुनः प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा की तब भी कमलने कोई शिकायत नहीं की, एक बात भी नहीं कही। उस दगाबाजकी प्रतारणाका प्रत्याख्यान करनेका क्षोभ दूर किया।

शिवनाथके साथ कमलका सम्बन्ध टूटना उपन्यासकी प्रधान घटना है। इसके द्वारा कमलकी स्त्रीरूपी सजीव हो उठी है। कमलने केवल तर्क ही नहीं किया—घटना-विपर्ययके भीतरसे उसका विश्वास और युक्ति सबल और सजीव हो उठी है। इस सम्बन्ध-विच्छेदका पुंखानुपुंखरूपसे वर्णन किया गया है। पहले तो कमलको अजितसे मालूम हुआ कि शिवनाथ उसके साथ नहीं रहता, और यह भी प्रकट हुआ कि वह जयपुर न जाकर आगरेमें ही है और नित्य

आशु बाबूके घर जाकर गाना-बजाना है। इसके बाद अक्षयने अधिक रात बीते घर लौटकर देख पाया कि मनोरमा उसकी प्रतीक्षामें नहीं बैठी है बल्कि पासमें लगे हुए एक वृक्षके तले शिवनाथके साथ घुलघुलकर बातें करनेमें लगी हुई है। यह विच्छेद द्वितीय और चरम स्तरपर उस दिन पहुँचा जिस दिन आशुबाबू, कमल और अक्षयने मनोरमाको शिवनाथकी छातीपर मस्तक रखकर रोते देखा। शिवनाथके घर जाकर कमलने इस असुस्थताकी अन्तिम बात जान ली और उन दोनोंकी बातचीतसे यह प्रमाणित हुआ कि उन दोनोंका विच्छेद पूर्ण रूपसे हो गया है। इस कहानीके तीसरे स्तरमें हम देख पाते हैं कि शिवनाथके साथ मनोरमाका ब्याह हो रहा है और उस ब्याहके लिए कमलने अकुण्ठित चित्तसे अपनी सम्मति दी है। समालोचनाशास्त्रके मनीषी अरिस्टोटलका कथन है कि नाटक (तथा उपन्यास) में वर्णित कहानीमें तीन विभाग रहेंगे—आदि, मध्य, अन्त। इस कहानीमें ये तीनों विभाग अत्यन्त सुस्पष्ट और सुन्दर ढंगसे रखे गये हैं। इन्हींके भीतर कमलकी युक्ति और तर्क उभरे हुए हैं।

अनेक लोग कहते हैं कि 'शेष प्रश्न' में केवल बातें ही बातें हैं इसमें कहानीके अंशका अभाव है। यह मत एकदम भित्तिहीन न होनेपर भी सोलहों आने सच नहीं है। कमलने बहुत अधिक तर्क किया है—बहस की है और एक राजेन्द्रके सिवा सबके मनमें एक भ्रम या संशय उत्पन्न कर दिया है। किन्तु यह तर्क एक गतिशील कहानीके भीतर संगठित हो उठा है। वस्तुतः प्रचार-मूलक उपन्यासका मानदंड घटनाबहुल जासूसी उपन्यास अथवा तिलिस्मी भूतोंकी कहानीके मानदण्डसे भिन्न है। प्रचारमूलक साहित्यकी कहानीको युक्ति-तर्कसे अलग करके नहीं देखा जाता, और उसके युक्ति-तर्कको भी घटनाचक्रसे अलग करनेपर वह *प्राणहीन* निर्जीव हो जाता है। प्रचार जिसका उद्देश्य हो, ऐसे किसी श्रेष्ठ उपन्यास या नाटककी अच्छी तरह आलोचना करने पर हम देख पाते हैं कि इस श्रेणीके साहित्यमें तर्क और कहानीका सम्पर्क अविच्छेद्य रहता है। वास्तवमें, इस श्रेणीके साहित्यका उद्देश्य कुछ घटनाओंके घात-प्रतिघातके भीतरसे किसी विशेष भावधाराका चित्र खींचना होता है। इस भावसे विचार करनेपर देखा जायगा कि 'शेष प्रश्न' में कथाका अभाव या कमी नहीं है।

साधारणतः इस प्रकारके नाटक या उपन्यासमें जैसा स्पष्ट रहता है, उसकी अपेक्षा इसका प्लाट घटनाबहुल नहीं है। बल्कि इसमें जैसी एक सुगुम्फित, सुविन्यस्त कहानी पाई जाती है, वह अनेक उपन्यासोंमें दुर्लभ है।

इस कहानीमें एक बात खटकती है। कमलकी शिवनाथकी पत्नी एवं एक आत्मीय समाजमें हुई है जो अत्यन्त नीच और धूर्त है। शिवनाथके विरुद्ध जीवनकी जो कहानी दी गई है, कमलके साथ उसने जो दगा की है, आशु-बाबूके घरमें उसने जो अशान्ति उत्पन्न की है, उससे इसके विरुद्ध उदासीनताका भाव आना या घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसे तनिक भी मन मैला किए बिना करनेमें क्षमाशीलता और उदारताका प्रमाण मौजूद है इसमें सन्देह नहीं किन्तु कमलने जो आनन्दकी निरपेक्षताका चमत्कार किया है, उसका यह श्रेष्ठ उदाहरण नहीं है। कारण, शिवनाथकी नीचताकी बात जाननेके बाद उसके प्रति थोड़ा भी आकर्षण नहीं रह सकता, और तब उसे क्षमा करनेमें थोड़ा भी बोझका भाव नहीं आ सकता, बल्कि इससे बोझ उतरनेकी और चैनकी साँस आना ही स्वाभाविक है। कमलके मनकी यथार्थ परीक्षा तब होती, जब शिवनाथ एक ऐसा आदमी होता जो सब प्रकारसे वरणीय है, जिसे कमलने पाकर खोया है और खोकर भी फिर पाना चाहा है। ऐसा होनेपर कमलके हृदयके भावोंके साथ इसकी सचेतन बुद्धिका संघर्ष होता और वहींपर उसके मनका सच्चा विचार होता। 'घरे-बाइरे' में भी इसी तरहकी त्रुटि है। डाक्टर श्रीकुमार बंद्योपाध्यायने लिखा है—"सन्दीपक बाहरी उत्तेजक भीतरसे अगर चाक मिट्टीका बना तुच्छ खिलौना (मूर्तिका ढाँचा) बाहर न निकल पड़ता, उसकी निरवच्छिन्न भोग-लोलुपताकी वीभत्सता उद्घाटित न होती अगर वह निखिलेशका योग्य प्रतिद्वन्द्वी कहलाने योग्य रहता, तो इस अग्निपरीक्षाका क्या रूप होता, कुछ कहा नहीं जा सकता... मानसचन्द्र निरपेक्ष भावसे हाथमें एकमेव विचार सहज न होता।" 'घरे-बाइरे' की समस्या 'शेष प्रश्न' की समस्यासे भिन्न प्रकारकी है किन्तु दोनों ही उपन्यासोंमें एक ही त्रुटि रह गई है।

अजित और कमलकी प्रेम-कहानी उपन्यासका दूसरा विषय है। अजित भावुक व्यक्ति है; वह सहज ही उपदेशित हो उठता है। अतएव कमलकी ओर उसका आकृष्ट हो जाना स्वाभाविक है। उसकी समस्या अत्यधिक

मनोरमाने कमलसे दगा की है। अतएव कमलके प्रति उसको स्नेह और समवेदना थी। स्नेह, समवेदना और श्रद्धाने धीरे-धीरे प्रेमका रूप धारण कर लिया। कमलके मनमें भी उसके प्रति प्रेमका संचार हुआ। इस प्रेमके आदान प्रदानका जो वर्णन किया गया है उसमें कोई विशेष शिल्प-चातुरी या कारीगरी नहीं है। पहले दिन कमलने भोजन कराकर जो सब बातें कहीं वे उसकी प्रगल्भताका परिचय देती हैं। कमलके मनोभावमें उसके दो पहलू या रूप हैं एक अतीतके बन्धनसे छुटकारा देना चाहता है और दूसरेका लक्ष्य वर्तमानके सुखभोगपर है। एक शिवनाथके प्रति व्यवहारमें बाँधा गया है और दूसरेका परिचय हमें अजितके साथ प्रणयके आदान-प्रदानमें मिलता है। प्रथम कहानीमें त्रुटि रहने पर भी, कमलका मन उसके आचरणके बीच स्पष्ट हो उठा है। उस शिवनाथके ऊपर क्रोध नहीं है; बदला लेनेकी इच्छा नहीं है। उसे शिवनाथके व्यवहारसे धक्का पहुँचा है; लेकिन उसके चित्तकी नवीनता, सजीवता तथा निर्भयता विनष्ट नहीं हो गई। उसने शिवनाथसे जो पाया है, वही उसके लिए यथेष्ट है। और भी क्यों न पाया गया—यह सोचकर पछतानेमें भी उसे लज्जा मालूम होती है। किन्तु अजितके साथ उसके व्यवहारमें वह मर्यादा नहीं है उसके प्रणय-निवेदनमें प्रगल्भता है किन्तु उद्यम नहीं है आग्रह है किन्तु उत्साह नहीं है। अजित मानो असहाय कमलका आश्रय है, उच्छ्वसित प्रणयका अनुराग नहीं है। देह और मनकी परिपूर्ण स्वाधीनताका जो जयगान रचन किया है उसके व्यवहारमें उसके उपयुक्त उन्मुक्तता नहीं है भाषामें वह आवेग नहीं है। वह जैसे पहले-ही थकी हुई है—जिसने अतीतके बन्धनको अस्वीकार किया है, उसे भविष्यके सम्बन्धमें संशयहीन साहस और आशा नहीं है, जिसने चिर-बन्धनके विरुद्ध घोषणा की थी, वह जैसे अब थमना चाहती है। जो सुख उसने पाया है, उसे वह जैसे ऐश्वर्यकी तरह भोग नहीं कर सकती, उसे सम्पत्तिकी तरह मजबूतीसे पकड़ रखना चाहती है। उपन्यासके उपसंहारमें उसने अजितसे कहा है— "अपनी दुःखमाया ही मुझे सौंप रखा। मैं इतनी निष्ठुर नहीं हूँ कि तुम जैसे आदमीको संसारमें बहा जाऊँ। भगवान्को तो मैंने माना नहीं, नहीं तो उनसे प्रार्थना करती कि दुनियाके सभी आघातोंसे तुमको बचाती हुई ही मैं एक दिन मर जाऊँ।" यह वही कमल है।

शिवनाथ-कमल-अजितकी कहानी उपन्यासका मूल उपजीव्य या विषय है। किन्तु इसके सिवा और भी दो-एक विषय हैं जो मुख्य न होनेपर भी उल्लेखके योग्य हैं। कमलको अनेक अवस्थाओंमें अनेक परिस्थितियोंमें डालकर औपन्यासिक शरत्बाबूने उसके मनस्तत्वकी अनेक शाखा-प्रशाखायें और उसकी बुद्धि तथा अनुभूतिकी क्रिया-प्रतिक्रियायें दिखाई हैं। उसके मनकी गति जैसी द्रुत है वैसी ही विचित्रतापूर्ण भी है। ताजमहलकी कलाको उसने शिरोधार्य किया है स्वीकार किया है किन्तु शिल्पियों (कारीगरों) की "मूल्य नहीं, मूल्य नहीं मूल्य नहीं तुम्हारा प्रिय!" यह वाणी उसके निकट गौरवहीन—प्रायः अर्थहीन है। उसके अन्य कुछ मतोंकी बात पहले कही जा चुकी है। तो भी यहाँपर दो-एककी पुनरुक्ति असंगत विषय न होगी। हरेन्द्रके ब्रह्मचर्य-आश्रमकी निष्फल दारिद्र्य-व्यवस्थापर उसने अपनी बहुत तीव्र समालोचना की और जान पड़ता है, इसीके फलस्वरूप वह आश्रम उठ गया। आशुबाबूकी स्त्री मर चुकी है पर पत्नीकी स्मृति उनके लिए सजीव है। इसी स्मृतिके कारण वह वर्तमानके सभी प्रकारके भोगोंसे विरत हैं, कमलने इस मनकी अवस्था मानकर उपहासकी दृष्टिसे देखा है। नीलिमा बाल-विधवा है। वह अपने पतिकी पुण्य-स्मृतिको हृदयमें धारण किए पराये घरकी निःस्वार्थ गृहिणी और पराये बच्चोंकी निःस्वार्थ जननी बनी है। कमलकी दृष्टिमें यह गृहिणीपनका मिथ्या अभिनय है, इसीसे वह इस ओर भी सम्मान नहीं देना चाहती। यह अद्भुत हो सकता है, किन्तु अच्छा नहीं है। आशुबाबू और नीलिमाके आदर्शके साथ कमलका आदर्श नहीं मिलता किन्तु यह होनेपर भी वह उनकी ओर आकृष्ट हुई है और उसने भी इन लोगोंके प्रति आत्मीयताका अनुभव किया है। कमल किसीसे तनिक भी सहायता लेना नहीं चाहती, किन्तु दारिद्र्य पीड़ित होनेपर आशुबाबूका भाव उनकी कन्याकी तरह हाथ फैलाकर लेनेमें उसे आपत्ति नहीं है। नीलिमाको वह प्यार करती है और उसने स्वयं भी उसका प्यार पाया है। यह स्नेहका आदान-प्रदान मनके गहरे अन्दर स्थापित नहीं है इसीसे इसमें भावप्रवणताकी अतिशयता है। पहलेके किसी परिच्छेदमें हमने दिखाया है कि शरच्चन्द्र अक्सर भावके संयमकी मर्यादा खोकर भावकी अतिशयता (Sentimentality) की सृष्टि करते हैं। यहाँ भी उन्होंने भावुक मनको क्या करके दिखाया है जिससे अतिशयोक्ति हो आयी है। भावावेग (Sentiment) और भावातिशयता (Sentimentality) के बीच

एक अनिर्देश्य भय व सुन्दर सीमा-रेखा होती है, उसकी रक्षा नहीं की गई। खास करके आशुबाबूका कमलसे अपनेको काका बाबू सम्बोधन करनेका अनुरोध, कमलकी उसमें सम्मति और असम्मति, आशुबाबूके हाथमें कमलका हाथ देना, नीलिमा और कमलका संभाषण और आदर आप्यायन, इन सब छोटी छोटी बातोंमें बननेकी गन्ध आती है।

इस उपन्यासमें आर्टकी दृष्टिसे सबसे कमजोर कहानी नीलिमाकी है। कमलके साथ उसके सौहार्दका चित्र जो दिया गया है उसकी कोई उल्लेख-योग्य विशेषता नहीं है। उसमें स्नेहके आदान-प्रदानका बाहरी आडम्बर है; किन्तु हृदयके भीतरकी गहरी तहमें उसकी नींव खोजे नहीं मिलती। नीलिमाके अपने मनमें जो परिवर्तन आया है, आशु बाबूके प्रति उसके मनमें जिस भावका उदय हुआ है, वह अत्यन्त अप्रत्याशित है। वह केवल अतर्कित और अशोभन ही नहीं, अविश्वासके योग्य भी है। नीलिमाकी कथा सम्पूर्ण रूपसे करुण बनानेके लिए ग्रंथकारने अविनाश बाबूका एक विवाह करा दिया है। जो अबतक विपत्नीक रहे, वह एकाएक स्वास्थ्य सुधारनेकी खोजमें जाकर अपने एक आत्मीयके पीछे पड़ जानेसे फिर ब्याह कर बैठे। ग्रंथकी मूल कहानीके साथ नीलिमाका कोई लगाव नहीं है अथ च इसे बहुत एक बड़ा स्थान—बहुत जगह दी गई है। उपन्यासके इस अंशको यथेष्ट चित्ताकर्षक बनानेके लिए ही ये सब अद्भुत बातें कराई गई हैं।

अक्षयका परिवर्तन इसी श्रेणीकी घटना है। उपन्यासके प्रथम अंशमें कमलकी विरुद्धता करनेके लिए अक्षयकी जरूरत हुई थी और इस उपन्यासमें जो हास्यरस है, उसके मूलमें अक्षयकी संकीर्णता और आवश्यकतासे अधिक कुत्सिता है। इस तरहके पात्रको अधिक देर तक आगे रखा नहीं जा सकता। कारण, इस श्रेणीके लोग छुपाये नहीं जा सकते ये बार-बार एक ही तरहकी बात करेंगे और एक ही तरहका काम करेंगे। इसीसे कुछ समय बाद इनके काम बड़े घिस-पिटे और नीरस हो उठते हैं। इसके बाद कमलने जब सबके चित्तको पूर्णरूपसे जीत लिया है, तब अक्षय रह कर भी कुछ भी नहीं कर सका। वह केवल लकड़ा-लगाता था और पत्थर पाता था। इन सब कारणोंसे उस उपन्यासके रास्तेसे हटा दिया गया था। उपसंहारमें उसे फिर लाया

गया। मलेरिया भोगकर और गाँवकी बुरी दशा देखकर इस रुचि-वागीशका मन नरम हो गया। उसने क्रमशः स्नेह और पत्नी भिक्षा माँगी और कहा कि कमलकी बात वह प्रायः ही सोचता। यह बड़ी अजब है। उसका यह परिवर्तन केवल आकस्मिक ही नहीं है यह सम्भावनाकी सीमाको भी लाँघ गया है।

आप कहेंगे कि असम्भव क्या कभी सम्भव नहीं होता? प्रतिदिन क्या हम ऐसी घटनाएँ होते नहीं देखते, जो घटित होनेके पहले विश्वास न करने योग्य जान पड़ती थीं? यहाँ यह स्मरण करा देना अच्छा है कि आर्ट और जीवनके बीच एक मौलिक अन्तर है। व्यावहारिक जीवनमें सत्यको सम्भावनाके योग्य होनेकी जिम्मेदारी नहीं उठानी पड़ती। वह आँखोंके सामने घटित होता है उसे स्वीकार कर लेना होता है। किन्तु आर्टका मूल्य मनमें है व्यावहारिक जीवनमें नहीं। यहाँ केवल घटनाके घटित होनेसे ही काम नहीं चलेगा उसे विश्वासके योग्य भी होना होगा। सम्भावनाकी सीमा वह नहीं लाँघ सकता। आर्टका एक प्रधान उद्देश्य है सन्देहको निवृत्त करना या पैदा न होने देना, अविश्वासको उठने न देना। उत्तर-पश्चिम भारतमें भारी भूकम्प हो गया। इसका इन सब प्रश्नोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है कि यह भूकम्प होना उचित था कि नहीं? पारिपार्श्विक अवस्थाके साथ इसका मेल बैठता है कि नहीं? अथवा इसकी सम्भावना भी थी कि नहीं? किन्तु आर्टमें आकस्मिक, अविश्वसनीय घटना उपस्थित करनेसे ही काम न चलेगा, शिल्पीको यह दिखाना होगा कि वह अतर्कित होनेपर भी सम्पूर्ण आकस्मिक नहीं है। इसका बीज पारिपार्श्विक अवस्थामें मौजूद था और होनेकमुसे आश्रय रहकर वह अंकुरित हुआ था—पनपा था। इस अवस्था स्वीकार्य या मान्य मानदण्डद्वारा विचार करनेसे देखा जायगा कि नीलिमाकी कहानी और अपर्णाका परिवर्तन अत्यन्त नाटकीय, अविश्वसनीय और असम्भव है।

उपन्यासमें एक और चरित्र है जो एक विशेषमें सबकी अपेक्षा उल्लेख-योग्य है। वह है राजेन्द्र। कमलके व्यक्तित्वके आगे और सभीको झुकना पड़ा है, केवल झुका नहीं तो एक राजेन्द्र, आर कमलने समझा है कि वह और सभीसे अलग है। उसके लिए रमणीका कोई विशेष आकर्षण नहीं है; किन्तु गले

पकड़कर वह ऐडजस्ट करना नहीं चाहता, अपने सुनिर्दिष्ट मार्गसे वह किसी भ
कारणसे हटता नहीं। राजेन विप्लवी है किन्तु उपन्यासमें विप्लवकार्यकी कोई च
नहीं है। विप्लवी मनुष्य औरोंके सम्पर्कमें आकर कैसा व्यवहार करता है
साधारण जीवनमें उसका आचरण कैसा होता है यही उपन्यासमें दिखाया गया
है। राजेन्द्रका इतिहास अद्भुत है पर अस्वाभाविक नहीं। जीवनके सीधे
मार्गको छोड़कर जो लोग गली-कूचोंमें घूमते फिरते हैं उनके कार्यकलाप
और उनके कार्योंसे जुड़े होते हैं। राजेन्द्रका व्यक्तित्व अनन्य प्रकार है। वह किन
प्रयोजनके बोलता नहीं—बात नहीं करता अपनेको जाहिर नहीं करता
किन्तु कर्त्तव्यपथसे किसी कारणसे भी विचलित नहीं होता। कमलकी मित्रता
उसने अस्वीकार नहीं किया, ग्रहण भी नहीं किया। उसकी सहायता उस
पाई है, किन्तु कमलके द्वारा वह रत्ती भर भी प्रभावित नहीं हुआ। उसका
आदर्श कमलके आदर्शसे भिन्न है; किन्तु तर्कमें परास्त करना तो दूर कमल
उससे कभी तर्क करनेके लिए प्रस्तुत भी नहीं हो सकी। केवल एक बा
राजेनने अपना मत प्रकट किया है; तभी कमलने समझ लिया है कि वा
न्यायके तट और भावके विप्लवसे बहुत दूर है। वह पराये लिए आत्मोत्स
करनेको सदा प्रस्तुत है। इस हिसाबसे वह आदर्शपंथी है। भय व चिन्ताके लि
वह काम करता है अपना जीवन खतरेमें डालता है, उनके दुःखसे वा
हतोत्साह नहीं हुआ। वह रोगमें, मौत, बहानेमें मलीन साधारण कंगाल
नहीं है। दीन, नीची जातिके, प्रवंचितोंके जीवनका स्वरूप वह जानता
है, वह वस्तुतांत्रिक, रियलिस्ट (यथार्थवादी) है। वह स्वयं आदर्शवादी
होकर भी वस्तुतांत्रिक है इसीसे वह हास्य-रसिक है। उसकी
हास्यरसकी अनुभूति आदर्शवाद और वस्तुतांत्रिकताके बीच संयोगका सेतु है
राजेनके हास्यरसके भीतर कठोर व्यंग्य है; तथापि इस रसबोधने ही जीवनके
बोझको हल्का कर दिया है। तर्क न करके भी उसने कमलको समझा दिया
है कि उसका मतवाद कितना अन्तःसारशून्य, कितना खोखला है। उसने
दिखाया है कि मन बाहरके अनुष्ठानका त्याग करके चल नहीं सकता, जो
मनका मेल मनकी ऐक्यताको नहीं मानता व्यवहार करता है, वह केवल भ्राम
विफल है। कमलके मतानुसार सबकी नींव मनमें है अनुष्ठान आचा
बाहरी प्रकाशनमात्र है। राजेन्द्रका वक्तव्य यह है कि बाहरी अभिव्यक्ति

सिवा उसका कोई आधार नहीं है। अनुभवकी सहायताके बिना सत्य अपनेको प्रकाशित और स्थापित नहीं कर सकता। प्राचीन भारत अथवा नवीन यूरोपकी दोहाई देकर उसने अपने मतका समर्थन नहीं किया। उसका मत अपने जीवनकी गहरी नींवके ऊपर स्थापित हुआ है। इसीसे कमल उसके आगे झुकी, टस नहीं सकी।

और एक आदमीका उल्लेख न करनेसे यह आलोचना अधूरी रह जायगी। वह हैं आशुबाबू। उपन्यासकी मूल कहानीके साथ उनका नाममात्रका सम्बन्ध है—यह भी कह सकते हैं कि सम्बन्ध है ही नहीं। तथापि उनकी प्रधानता इसीसे यह उपन्यास जगमगा उठा है। इस उपन्यासमें नाना प्रकारके पात्रोंका समावेश हुआ है—गुणी सत्य व चरित्रहीन शिवनाथ, ब्रह्मचारी हरेन्द्र, विद्रोही राजेन्द्र, भावप्रवण अजित, पुरातनचारिणी हिंदू विधवा नीलिमा और शिवानी कमल। ये सब विभिन्न प्रकृतिके लोग हैं किन्तु आशुबाबू सबके मनकी बात समझते हैं सभीको उन्होंने प्यार किया है सभीने उनका समान भावसे मान किया है। उनके मनकी प्रशस्तता असाधारण है इसीलिए वे सबके हृदयमें समान भावसे प्रवेश कर सके हैं। किसी आदमीके ऊपर उनके मनमें कोई विरुद्ध भाव नहीं है। कमलने बार बार उनके आदर्शको चोट पहुँचाई है—आघात किया है, उनके मनको दुःख हो गया है, उसने दुःख ठहराया है, पर वह कमलकी बात बहुत सहजमें समझ गये हैं उसका स्नेह किया है उसके मताधिक्यको विरोधाग न कर सकनेपर भी स्वीकार कर लिया है। विद्रोही राजेन्द्रको उन्होंने बहुत कम देखा है, किन्तु उसके ऊपर भी उनकी अपार श्रद्धा और ममता है। वह स्वयं शिक्षित हो आये हैं और पाश्चात्यशिक्षाप्राप्त हैं। तथापि भारतीय संस्कृतिपर उनकी अपार श्रद्धा है। सत्य स्वर्गवासिनी पत्नीकी यादको हृदयमें धारण करके एकनिष्ठ प्रेमका आदर्श उन्होंने दिखलाया है और कमलको सम्पूर्णतया आशीर्वाद देनेकी चेष्टा की है। बालक विवाह-निषेधमें उन्होंने सम्मति दी है यहाँ तक कि शिवनाथके साथ अपनी कन्याका विवाह कर देनेमें भी आपत्ति नहीं की।

केवल अनुभवसे वह करते हैं। इसका अनुभव बहुत वैदिके है और वह इसलिये ओर ही हो जाता है। पर अनुभवसे भी इसको कोई विरोध नहीं है।

उनके हृदयकी प्रसन्नता या उदारताके साथ और एक बात जुड़ी हुई थी और वह था वैराग्य भाव। वह विपत्नीक थे, ऐश्वर्यशाली होकर भी भोगके कीड़े नहीं थे। संसारके भीतर रहकर भी वह जैसे संसारकी सब बातोंसे बहुत ऊपर थे। कोई कालिमा या कलुषता उन्हें स्पर्श नहीं कर सकी। इसीलिए सब बातोंका माधुर्य वह ग्रहण कर सकते हैं, अथ च किसी विषयमें ही वे आबद्ध नहीं रहते। यह वैराग्य होनेके कारण ही वह बहुत गहरे शोककी स्मृति हर क्षण, हर घड़ी धरे रहकर भी सदा प्रफुल्लचित्त रहते थे, और कठिन आघात पाकर भी जो वह मनोरमाको क्षमा कर सके थे, उसमें भी उनके इस वैराग्यका परिचय प्राप्त होता है। वह सबसे अधिक विचलित हुए थे नीलिमाके व्यवहारसे। इसका एक कारण यह है कि इसमें उनके वैरागी मनने एक नये बन्धनका चिह्न देखा था। भइया बाबूकी हँसी प्रभातके प्रकाशकी तरह उज्ज्वल, उसीकी तरह शुभ्र और पवित्र है, और उसीकी तरह समान भावसे सभीको प्रफुल्लित करती है। प्रभातके प्रकाशकी तरह ही वह दूरसे—बहुत दूरसे आती है।

८—छोटी कहानियाँ

छोटी कहानीका दायरा छोटा होता है। अतएव उसमें किसी एक ही घटनाको प्रधानता दी जाती है। उसमें चरित्रका विस्तृत विश्लेषण करना अथवा घटना-परम्पराके भीतरसे किसी कहानीकी परिणतिका चित्र खींचना संभव नहीं। कहानी-लेखक किसी एक घटनाको केन्द्र करके अपनी कहानीको सजाता है पारिपार्श्विक अवस्थाके ठीक उसी स्थलकी ओर पाठककी दृष्टिको खींचता है, जो उस केन्द्रीय घटनाके साथ जुड़ी हुई है। इसमें चरित्रकी भी केवल आंशिक अभिव्यक्ति, अर्थात् चरित्रके किसी एक अंशकी अभिव्यक्ति ही की जा सकती है। अतएव छोटी कहानीमें एक रसघन निविडता और ऐक्य है, जो किसी लम्बे उपन्यासमें नहीं पाया जाता।

शरत्चन्द्रने अपने श्रेष्ठ उपन्यासोंमें नारी-हृदयके विचित्र और जटिल द्वन्द्वका चित्र खींचा है। इस द्वन्द्व या संघर्षकी अभिव्यक्ति अनेक छोटी-बड़ी घटनाओंके बीच हुई है; पारिपार्श्विक अवस्थाके परिवर्तनके साथ-साथ इस संघर्षका स्वरूप बदला है और इसीने पारिपार्श्विक अवस्थाका नियंत्रण किया है। इस प्रकारका संघर्ष छोटी कहानीके लिए उपयोगी नहीं होता। कारण संघर्षका प्रधान लक्षण यह है कि वह बहुत लम्बा चलता है और उसका पुंखानुपुंख विश्लेषण ही उपन्यासकी विशेषता समझी जाती है। राजलक्ष्मीके साथ श्रीकान्तकी भेंट अचानक हुई थी; किन्तु उसके बाद राजलक्ष्मीके मनमें अनेक भावोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया जो चलने लगी वह जैसी विचित्र है, वैसी ही लम्बी-चौड़ी है। इस कहानीमें किसी अंशमें आकस्मिकता या सम्पूर्णता नहीं है, जिसकी मार्फत यह छोटी कहानीका विषय बनाया जा सके। शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका उपयुक्त वाहन बड़ा उपन्यास है, छोटी कहानी नहीं।

कभी कभी शरत्चन्द्रने एक छोटी कथाका सहारा लेकर ऐसी कहानी लिखी है जो उपन्यासके लिए ही अधिक उपयोगी थी। ऐसी कहानियोंमें छोटी कहानीकी संक्षिप्तता तो है, किन्तु उसकी विशेषता जो होती है, वह नहीं है। इनका कलेवर छोटा है, कारण ग्रन्थकार एक समय उपन्यासको संकीर्ण संकुचित करना चाहते हैं। इसमें जिस विस्तृत विश्लेषणकी माँग है, वह उसे देनेको तैयार नहीं हैं। उनकी छोटी कहानियोंमें 'अन्धकारमें आलोक' ने प्रसिद्धि पाई है, यद्यपि उसका आख्यान-भाग उपन्यासके लिए अधिक उपयोगी है। ग्रन्थकारने कहानीका आरम्भ धीरे धीरे किया है। बिजलीके प्रति सत्येन्द्रनाथके मनमें जो प्रेम उत्पन्न हुआ है, उसका चित्र बहुत ही सुन्दर रूपसे अंकित हुआ है। किन्तु बिजलीके बारेमें दोनोंका जो मिलन हुआ उसके वर्णनमें मौलिक त्रुटि दिखाई देती है। मुग्धपनसे उन्मत्त बाईजीने पहले तो सत्येन्द्रनाथको बहुत बनाया, मजाक किया उसे सौंम बनाया अभिनयके ढंगसे घुटने टेककर 'वैष्णव-पदावली' का 'आजु रजनी हम भागे पोहायनु पेखनु पियमुखचन्दा" पर गाकर क्षमाकी भीख माँगी। इस तरुण युवकके प्रभावकी नवीनता, निष्कपटता और उसके मनकी पवित्रतापर नरोंमें मधुप रमणीकी तनिक भी दृष्टि नहीं गई। उसने ठट्ठा करते हुए ही अपनी दासीसे सत्येन्द्रके लिए खानेके लिए कुछ लानेकी बात कही किन्तु ज्यों ही उसने देखा कि सत्येन्द्र उसका छुआ हुआ अथवा उसका दिया हुआ खानेको तैयार नहीं है, त्यों ही उसके मनमें एक गहरा परिवर्तन आ गया। वह कुसुमपन, हँसी ठट्ठा और वह निर्लज्जता चली गई, और मदिराके मदसे जगमगाती हुई उसकी आँखोंमें अपूर्व मिठास आ गई। यह परिवर्तन आकस्मिक, अद्भुत और समझनासे परे है।

ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है कि मानव-हृदयका परिवर्तन बुद्धि-शास्त्रके अनुशासनको मानकर ही चलेगा किन्तु जो परिवर्तन अचानक आया, वह धीरे-धीरे किस तरह सहज हो गया, इसका कहानीमें वर्णन होना चाहिए, जो नहीं है। राजलक्ष्मीके लिए पियारी बाईजीका बनना एक बाहरका आवरण मात्र था तो भी राजलक्ष्मी उसे एक ही दिनके लिए भी सम्पूर्ण रूपसे नहीं छोड़ सकी। बिजली पर तो सचमुच 'बाईजी' थी। कहानीमें जितना अचानक इस परिवर्तनका आना वर्णन किया गया है, उतना अकस्मात् वैसा ही

परिवर्तन किसी बाईजीके जीवनमें आना सम्भव है कि नहीं ये सब प्रश्न अपने आप मनमें उठते हैं। मगर इस तरह यह परिवर्तन आना सम्भव भी हो, तो इसे अपना लेनेमें—अभ्यस्त जीवन-यात्राका परित्याग करने पर भी—अभ्यस्त विचार और अभ्यस्त मार्ग छोड़नेमें समय लगेगा। कहानीमें यह कुछ भी नहीं दिखाया गया। कहानीके अन्तिम भागमें हम बिजली बाईकी सर्वत्यागी मूर्ति देखते हैं। जिस बिलकुल विश्लेषणात्मक सहायतासे यह परिवर्तन स्पष्ट और विश्वसनीय होता, वह एक बड़े उपन्यासमें ही सम्भव था, स्वल्प-परिसर छोटी कहानीमें इसके आभासमात्रकी रचना ही की जा सकती है। बिजलीका मदसे उन्मत्त और लालसासे पंकिल जीवन उसके भीतर यथार्थ प्रेमका पूर्वानुराग, प्रत्याख्यानसे आहत प्रेमकी वेदना, स्वयं प्रणयिनीकी कातरता और अनुतप्त पतिताका त्याग—इन सब विभिन्न और परस्परविरुद्ध भावोंका चित्र एक छोटे-से परिच्छेदमें खींचा गया है। जो उपन्यासमें सुन्दर स्वाभाविक होता, वही छोटी कहानीमें आकस्मिक और अविश्वसनीय हो गया है।

पथ-निर्देश और एक छोटी कहानी है। हेमनलिनीके साथ बिजली बाईकी चरित्रगत समानता नहीं है। इन दोनोंके जीवनकी धारा भी विभिन्न है। मगर दोनोंकी ही कहानी छोटी कहानीके लिए उपयोगी नहीं है। गुणीन्द्रके साथ हेमनलिनीके प्रणयकी आलोचना और एक जगह की गई है। यहाँपर केवल एक बात कहनेका प्रयोजन है। गुणीन्द्रके घरमें हेमनलिनीका आश्रय पाना, उसके साथ एकत्र पढ़ने-लिखनेका अभ्यास, उसके मनमें प्रणयका संचार, उसका विवाह, उसका वैधव्य और उसका अपना यह मत बताना कि विवाहका कोई मूल्य नहीं, गुणीन्द्रका प्रेम-प्रस्ताव और उसका प्रत्याख्यान, उसका ससुरालको फिर लौटना और गुणीन्द्रके घरमें फिर लौटकर आना—ये सब घटनाएँ और विविध भावोंकी क्रिया प्रतिक्रिया इतनी द्रुतगतिसे पूर्ण है कि पुस्तक पढ़नेके बाद अन्तमें सारी कहानी ही अत्यन्त मैजिक लालटेनसे दिखाए जानेवाले छायाचित्र-सी जान पड़ती है। हेमनलिनी कोई सजीव मनुष्य नहीं जान पड़ती। जान पड़ता है, वह एक कलकी पुतली है, फूँक मार देनेसे एक बार इधर और एक बार उधर आन्दोलित होती। किरणमयी, अभया, राजलक्ष्मी—इनके जीवनका इतिहास हेमनलिनीकी कहानीसे कम विस्मयकारक

नहीं है किन्तु विस्तृत और सूक्ष्म विश्लेषणके कारण इन सब रचनाओंकि भाग्यका पड़ना सम्भवकी सीमाके बाहर नहीं जा सका। 'पथ-निर्देश' छोटी कहानी है। उसमें लम्बे वर्णन सूक्ष्म विश्लेषण और घटना-बहुल होनेका अवकाश नहीं है। छोटी कहानीकी अपरिहार्य संक्षिप्तताके कारण कहानीकी विशिष्टता विकसित नहीं हो सकी।

शरत्चन्द्रकी प्रथम पुस्तक 'काशीनाथ' है। इसमें जो सब कहानियाँ हैं उनमें उनकी प्रतिभाके पूर्ण विकासकी सूचना मिलती है। यहाँ भी नारीके प्रति वही गहरी सहानुभूति वही स्पष्ट सरस, अथ च अति मधुर प्रकट करनेका ढंग या भाव व्यक्त करनेकी शैली है। किन्तु इन छोटी कहानियोंमें जो सब आख्यायिकायें हैं वे सुदीर्घ उपन्यासमें ही अच्छी खपतीं। 'प्रकाश और छाया,' 'मन्दिर' और 'अनुपमाका प्रेम' इन तीनों कहानियोंमें निषिद्ध प्रेमकी विमुखताका चित्र खींचा गया है। चरित्रोंकी सृष्टिमें शरत्चन्द्रकी प्रतिभाकी छाप है। किन्तु इस प्रतिभाकी परिपूर्ण अभिव्यक्ति विस्तृत विश्लेषण चाहती है। स्वल्प-परिसर छोटी कहानीमें ऐसा विश्लेषण असंभव है। वहाँपर एक [illegible] घटनाका सहारा लेनेकी जरूरत है। उल्लिखित कहानियाँ किसी विशेष घटनाको केन्द्र करके संगठित नहीं हुई हैं। जान पड़ता है, इनमेंसे प्रत्येकके भीतर एक सुदीर्घ उपन्यासको संक्षिप्त कर दिया गया है और छोटी घटनाएँ छोड़ दी गई हैं। आख्यायिकाका मुख्य अंश भी केवल आभासमें ही कह दिया गया है। इस कारण इनके चरित्र भी परिपूर्ण मात्रामें खिल नहीं उठे और कहानियाँ भी जैसे उपन्यासका संक्षिप्तसार-सी जान पड़ती हैं। 'प्रकाश और छाया' का आरम्भ यज्ञदत्त और बाल्यविधवा सुरमाके अवैध प्रणयको लेकर हुआ है। यह चित्र अतिसुन्दर है—इनका संबंध स्नेहसे आनन्दसे भरपूर है किन्तु इसमें विषादकी छाया भी है। सुरमा समझती है कि यज्ञदत्त उसके लिए अपना जीवन व्यर्थ कर रहा है। इस व्यर्थतासे छुटकारा पानेके लिए वह यज्ञदत्तका ब्याह कर डालनेके लिए व्यग्र होती है। पर इस ब्याहमें उसका मन एक साथ उत्साह और निराशासे

१ काशीनाथ पुस्तकमें 'प्रकाश और छाया' 'अनुपमाका प्रेम' और 'मन्दिर' ये तीन कहानियाँ भी शामिल थीं।

मर गया। इन परस्परविरुद्ध प्रवृत्तियोंकी मुठभेड़ोंसे चित्र बहुत सुंदर हुआ है। यह सब आग्रहके साथ यह संकेत करता है किन्तु इसमें मनस्तत्त्वका भी उन्माद देखकर निराशासे उसका मन भर गया है। चारोंपर सावित्री, राजलक्ष्मी आदि नारियोंका पूर्वाभास मिलता है। किन्तु इस कहानीका अन्तिम भाग प्रथमार्द्धकी तुलनामें निकृष्ट हो गया है। विवाहके बाद ही मन्मथ समझ गया है कि उसने बड़ी भारी भूल हो गई है। उसे केवल यही ज्ञान पड़ा है कि उसने अपराध किया है और सुरमा उसे प्राणपणसे क्षमा कर रही है। इसके बाद मन्मथ सुरमासे दूर ही दूर रहा है। उसने पतिकी जिम्मेदारी और प्रतीक कर्त्तव्यके बीच सामंजस्य बनाये रखनेकी चेष्टा की है किन्तु मन्मथ तो सचमुच केवल मर्दों ही नहीं है उसके मनमें क्या अपनी पत्नी अनुपमकुमारीके प्रति कोई आकर्षण ही नहीं हुआ!—इस आकर्षणके साथ ही सुरमाके प्रति प्रेमका बचाये संभव है। मन्मथके मनमें दोनों रमणियोंके प्रति जो परस्पर-विरुद्ध आसक्ति पैदा हुई होगी, उसका कोई परिचय इस कहानीमें नहीं है। इस आन्तरचित्रके चित्र खींचनेके लिए मनस्तत्त्वके सूक्ष्म विश्लेषणकी आवश्यकता है; पर छोटी कहानीमें उसके लिए अवकाश नहीं है। इसी कारण कहानीके अन्तका दृश्य अविश्वसनीय हो गया है।

'मन्दिर' में भेद आदिका परिचय मिलता है। बचपनमें शक्तिनाथके मनमें देवता और देवमन्दिरके प्रति जो आकर्षण पैदा उठा है उसने किशोरावस्था और जवानीमें पहुँचकर प्रथमकी आसक्तिका विरोध किया है। फिर ये दोनों प्रवृत्तियाँ एकमें गुँथ गई हैं और एकने दूसरीको परिपुष्ट किया है। मन्दिरके प्रति अनुराग ही अपर्णाकी पतिपर प्रीतिका विघ्न बन गई थी और शक्तिनाथसे उसकी भेंट मन्दिरमें ही हुई थी टेनिसनके मन्दिरमें लिओनोरा और कारा सिरके मिलनकी तरह। यह मिलन अकस्मात् नहीं हुआ। कारण, अपर्णा मन्दिरकी पुजारिन है और शक्तिनाथ उस मन्दिरका पुजारी। और एक ऐक्य भी ध्यान देने योग्य है। अपर्णा तो पुरुषोंके स्पर्शसे या स्वभावमें आग थी दोनोंका सम्भावित गुलाब-पराग का उपहार देनेमें चरम सीमाको पहुँच गया था और अपर्णाने दानके उपहारको स्वीकार नहीं किया था। केवल अपर्णाके पतिकी अभिरुचि ही सुंदर हुई हो, या बात नहीं है, इस कहानीका गठन-कौशल भी निर्दोष है। कोई-कोई अवश्य इस अतिरिक्त कौशलकी निन्दा करेंगे,

कहेंगे यहाँ सब कुछ जैसे एक नियमसे बँधा हुआ है, कहीं भी सुसम्बद्धका अभाव नहीं है कहीं कुछ आकस्मिक घटना नहीं हुई। इस कहानीके सम्बन्धमें और भी एक आपत्ति उठायी जा सकती है। इसमें यह स्पष्ट नहीं हुआ कि शक्ति-नाथके प्रति अपर्णाके मनमें ठीक किस भावका संचार हुआ था। यह नहीं समझ सकता कि उसमें कितना क्रोध कितनी करुणा, कितनी प्रीति और अन्य सब भावोंकी आड़में कितना प्रेम छिपा था। शक्तिनाथकी मृत्यु कहानीकी अनिवार्य परिणति नहीं है। जान पड़ता है, कहानीको यथाशीघ्र समाप्त करनेके उद्देश्यसे इस मृत्युकी परिकल्पना हुई है।

अनुपमाका प्रेम में भी शरत्‌चन्द्रकी प्रतिभाकी विशेषता देखी जा सकती है। निर्यातित, लांछित ललितमोहनके प्रति सबकी निष्ठुरता उसके लिए अनुपमाकी सहानुभूति और अनुपमाके अपने जीवनकी विचित्रतापूर्ण घटनाने इस कहानीको मनोरम बना दिया है। किन्तु यहाँ भी घटनाओंकी अधिकताके कारण छोटी कहानीकी विशेषता नहीं रखी जा सकी मानव-हृदयका रहस्य किसी एक घटनाको केन्द्र करके विकासको नहीं प्राप्त हो सका और कहानीकी जो विचित्र संभावना थी, वह भी सम्पूर्णता नहीं पा सकी। कारण छोटी कहानी संक्षिप्त, गठी हुई होनी चाहिए; उसमें उपन्यासकी विचित्रता और विस्तारकी प्रत्याशा नहीं की जाती। पहले तो जान पड़ा था कि इस कहानीमें एक उन्माद-ग्रस्त नायिकाके मानसिक विकारका चित्र खींचा जायगा। किन्तु अनुपमाके जीवनमें जो सब घटनाएँ घटित हुई हैं, वे किसी भी सुस्थ अविकृत चित्तवाली रमणीके जीवनमें घटित हो सकती हैं और अवस्थाके फेरमें पड़कर अनुपमाने जैसा आचरण किया है, उसमें भी विकारका कोई लक्षण नहीं है, यह कहा जा सकता है। एकके बाद एक बहुत-सी आकस्मिक घटनाएँ हुई हैं और इन घटनाओंको एक स्वल्प-परिसर छोटी कहानीके भीतर समाया गया है। घटनाओंके इस बाहुल्यसे अनुपमाका चरित्र विकसित नहीं हो पाया।

तस्वीर (छवि) कहानी छविके समान ही सुन्दर है। उपाख्यानका घटना-स्थल सुदूर बर्माका एक गाँव है। समय वही है जिसे अभी बहुत अधिक दिन नहीं हुए, अर्थात् जब बर्मापर अँगरेजोंका अधिकार नहीं हुआ था। उस समय उस गाँवके राजा-रानी थे, मन्त्री-मित्र-सभासद थे, सैन्य-सामन्त थे। कहानीका

नायक चित्रकार चा-पिन रूपवान युवक है, नायिका मा-चोप रूपवती युवती है। वह प्रचुर धन-सम्पत्तिकी अधिकारिणी है। मा-चोपे चा-पिनकी बाल्यसखी है, और सहपाठिन भी। दोनों बचपनमें एक साथ खेले हैं, आपसमें छेड़-छाड़े हैं, मार-पीट भी की है और परस्पर प्यार भी किया है। चा-पिन चित्र बनाकर कर्ज चुकाना चाहता है, अपने कर्तव्यमें वह शिथिल भी व्यवहारी नहीं करता। उसकी कर्तव्य-निष्ठासे मा-चोपको टक्कर लगी हुई है, पर उस निष्ठापर क्षणिक असन्तोष भी उत्पन्न हुआ है। कारण, किसी भी आमोद-आह्लादमें मा-चोप अपने प्रियतमको साथ नहीं पाती, वह बराबर चित्र बनानेमें लगा रहता है। यहाँ तक कि मा-चोपे उससे बातचीत करने बैठती है, तो भी चा-पिन बैठ चित्र उकेरता है। कारण, उसे वादेके दिन चित्र पूरा करके देना ही होगा। चा-पिनका चरित्र बहुत सुन्दर बन पड़ा है। उसकी धीरता, स्थिरता, कर्तव्य-निष्ठा और प्रेमव्यञ्जक चित्र अत्यन्त हृदयग्राही है। अवश्य ही लेखकके प्रयाससे सबसे सुन्दर हुई है उसके पराजयकी कहानी। मा-चोपेका उसका तिरस्कार हो गया है, मा-चोपके घर जाकर वह अपमानित हो आया है। पर वह अपने चित्रको बनानेमें ही डूबा हुआ है — तल्लीन है। उस बहिर्जगतके मान-अपमानका ध्यान ही नहीं है, ऊपरसे वह उदासीन है। किन्तु उसका चित्र और आया। कारण, उसने गोया (युवककी पत्नी) का चित्र बनाते हुए बलवान मा-चोपका मुख बना डाला है। — "इतने दिन यह प्रशान्त परिश्रम करके उसने अपने हृदयके अन्तस्तलका वह सौन्दर्य, जो माधुर्य निकालकर बाहर अंकित किया है जिसे रेखाओंके रूपमें उस दिन-रात खोजा है, वह 'बालक' की गोया नहीं है, वह उसीकी मा-चोप है।"

मा-चोपके चरित्रको अंकित करनेका काम उतनी निपुणतासे नहीं हुआ, और यहींपर कहानीकी मौलिक त्रुटि है। चा-पिन आत्मसम्मानवश अधिक कर्तव्य-निष्ठाके कारण उसे अपमान करता है, यह समझकर अभिमानवश आहत रमणीने क्षुब्ध होकर चा-पिनका परित्याग किया है, उसका अपमान किया है। इसी समय उसके साथ असीम साहसी और बलिष्ठ वीर चो-पिनका परिचय हुआ, और चे-पिन शीघ्र ही उसके प्रणयका भागी हो गया। थोड़ा घनिष्ठ परिचय होनेके बाद ही मा-चोपेने जाना कि यह बलिष्ठ युवक चरित्रमें चा-पिनकी

अपेक्षा निकृष्ट है। मा-शोयेने यद्यपि उसे निमंत्रण देकर उसका आदर-सत्कार किया तथापि उसके प्रति मा-शोयेका मन वितृष्णा और क्रोधसे भर गया। अब वह उसे केन्द्र करके ही मा-शोयेने अपनी जीवन-यात्रा नये सिरेसे शुरू की और उसकी सहायतासे वह बा-थिनको लज्जित करनेके लिए उद्यत हुई। बा-थिनके लिए वह उत्कण्ठापूर्ण प्रतीक्षामें बैठी रही है, किन्तु उन्मादग्रस्त होकर जब बा-थिन उसके पास उपस्थित हुआ तब उसने अपमान करके उसे विदा कर दिया। मा-शोयेके मनमें जिस संघर्षकी बात उल्लिखित हुई है वह बिलकुल ही मिथ्या है—वह मन-ही-मन बा-थिनके सिवा और किसीपर कभी आसक्त नहीं हुई। अगर पो-थिनके लिए मा-शोयेके मनमें सचमुच ही कोई आकर्षण रहता, तो इस कहानीका रूप बन जाता। किन्तु तब फिर यह कहानी 'गृहदाह' उपन्यासकी तरह लम्बी होती और पुंखानुपुंख विश्लेषणकी अपेक्षा रखती।

'विलासी' कहानीको ठीक कहानी कहा जा सकता है कि नहीं सन्देह है। कारण, विलासीकी जीवन-कथाका आश्रय लेकर 'प्रबन्ध' के आकारमें बहुत-से मन्तव्य प्रकट किये गये हैं। ये सब मन्तव्य कहानीमें ठीक न बैठेंगे—यह सन्देह करके ग्रंथकारने फुटनोटमें यह सूचित किया है कि ये एक प्राचीन बालककी डायरीसे नकल किये गये हैं। विलासी और मृत्युंजयकी कहानी उसके उच्छ्वास प्रकट करनेका उपलक्ष मात्र है। किन्तु ग्रामीण बालककी आवेगमय अनुभूतिका मूल्य चाहे कुछ भी क्यों न हो, कहानीके हिसाबसे यह भी असह्य है। मृत्युंजयके यौवन जीवनका जो संक्षिप्त इतिहास दिया गया है उससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उसकी जीवन-यात्राका ढंग अन्य चार जनोंसे अलग हुआ है। वह साहसी, निर्भय, प्रचलित संस्कारोंपर आस्थाहीन और सहृदय है। उसका विलासीसे परिचय कठिन रोगकी मार्फत हुआ। उस बीमारीकी दशामें निर्जन घरमें वह सबकी कुण्ठारहित, विश्रामहीन सहायता-हीन सेवा करके मृत्युंजयको धीरे धीरे आरोग्यकी राहमें ले आई। विला-सीके देहातका हृदय-हीन समाज विचार-हीन आचार और प्रीति-हीन धर्म इस निर्जन सेवा-कार्यके बाहर रहा। रोगसे छुटकारा मिलनेके बाद दोनोंका ब्याह हो गया और दोनोंने सार्थकताके साथ सुखसे जीवन-यात्रा शुरू की। उनकी आनंद-मधुर जीवन-यात्राका वर्णन बहुत संक्षेपमें किया गया है। किन्तु

यह संक्षिप्त वर्णन भी खूब सांकेतिक है। कारण यह स्वच्छन्दता अनायास मिली हुई नहीं है; इसे उन्होंने इसरके माता-पिताके रूपमें नहीं पाया, धर्म-संस्कारों और वरकी देर बना हुई बाधाओंको लाँघकर पाया है। इसके भीतर भी पति और स्त्रीके मनके भावकी विपरीतता ध्यान देनेकी चीज है। क्षिप्रसी स्त्री है, स्वभावसे ही कोमल हृदयवाली। उसने जो पाया है, उसे वह पकड़कर पकड़ रखना चाहती है, बार-बार भाग्यकी परीक्षा करते बैठनेमें उसे शंका होती है। मृत्युंजयकी बात दूसरी है। क्षिप्रसीसे ब्याह करनेमें ही उसे बहुत कुछ — जाति, कुल, सम्मान, धन, प्रतिष्ठा आदि—छोड़ना पड़ा है। उसने जो पाया है वह बहुत कुछ छोड़कर, बहुत साहस करके ही पाया है। अतएव वह निर्भीक है, जीवन उसके निकट तुच्छ है। एक दिन साँपको पकड़ने जाकर वह दुस्साहसी युवक नियति या भाग्यसे अन्तिम परीक्षामें हार गया, साँपके काटनेसे उसका इस जीवनका खेल समाप्त हो गया। उसके बाप-माका दिया हुआ मृत्युंजय नाम ससुरकी दवा और मंत्र सब मिथ्या प्रमाणित हुए। इसके सात दिन बाद क्षिप्रसीने आत्महत्या कर ली। यह कहानी संक्षिप्त है। इसमें किसी जटिल मनस्तत्त्वकी व्याख्याके लिए गुंजाइश नहीं। अथ च संक्षिप्त होनेपर भी यह सर्वांगपूर्ण है। मृत्युंजय और क्षिप्रसीकी कहानी केवल उनकी व्यक्तिगत कहानी नहीं है, उसके पीछे भारतके हिंदू-समाजके आचार-धर्म और स्वार्थ भरी हो रही संकीर्णताकी जो पृष्ठभूमिका (Back Ground) है, उसकी ओर ग्रन्थकारने इशारा किया है और इसीके कारण इस कहानीमें एक परम आश्चर्यजनक विस्तार और गहराई आ गई है।

प्रस्तावनामें या प्रश्न करनेके ढंगके संबंधमें भी एक बात कहनी है। 'ज्याफा की डायरीमें' सर्वत्र वक्तृता है। डायरीमें वर्णित घटनाका वह साक्षी है, और उसमें उसका अपना भी हिस्सा है। उसके मन्तव्य निरपेक्ष नहीं है, संभव नहीं है तो भी उनमें एक मनस्वीका ओजस्वी कौशल है जो केवल नाटकमें ही पाए जाते हैं; कहानी और उपन्यासमें नहीं। अथ च इन उत्तरदायित्वपूर्ण मन्तव्योंसे कहीपर कहानीकी सहज स्वच्छंद गतिमें रुकावट नहीं पड़ी। मृत्युंजय और क्षिप्रसीकी जीवन-यात्रा अपनी गति नहीं है, ज्याफा उनकी जीवन-यात्रामें सम्मिलित हुआ है। उनके ऊपर ज्याफाकी सहानुभूति, ममता और श्रद्धाकी सीमा नहीं है। उसकी आवेगमयी वक्तृतासे कहानी सजीव हो गई है, उसमें बाधा नहीं पड़ी।

अनुराधा' के साथ 'दत्ता' का आख्यान-गत साम्य है। इस कहानीमें जो प्रेमका चित्र दिया गया है, वह निष्कलंक है। नायक-नायिकाके प्रेमकी राहमें बाधा खड़ी की है पारिवारिक झगड़ेने। किन्तु 'अनुराधा' में 'दत्ता' का सौन्दर्य नहीं है। इस कहानीमें रासबिहारी और नलिनी जैसा कोई चरित्र नहीं है और विजयाके मनमें जो द्वन्द्व हुआ है, वैसे द्वन्द्वका आभास भी इस कहानीमें नहीं है। अस्तु, इसका आख्यान भाग छोटी कहानीके आख्यानकी तरह सरल और छोटा नहीं है। विजय और अनुराधाकी भेंटके बाद कहानीके परिणामके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं रहता। विशेषकर त्रिलोचन गांगुलीका अनुराधाके ऊपर कोई दावा नहीं है या अनुराधाके मनमें उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं है। इसके अलावा अनिता धूपकी छायाकी तरह अस्पष्ट है। आख्यायिकामें या परिवेशकी सृष्टिमें कहीं भी किसी रहस्यकी खोज नहीं है, किसी अप्रत्याशित सत्यका आविष्कार नहीं है। प्रकाशभंगीमें भी कोई माधुर्य नहीं है।

२

शरत्चन्द्रने दाम्पत्य जीवनको लेकर चार कहानियाँ लिखी हैं – काशीनाथ 'बोझा' 'दर्पचूर्ण' और 'सती'। इन कहानियोंमें हम देखते हैं कि पति और पत्नीका सम्बन्ध सहज नहीं है; इच्छा रहनेपर भी वे परस्पर एक दूसरेके संसर्गमें सुखी नहीं हो पाते। सत्येन्द्र अपनी तीसरी बीबीको लेकर सुखी हुआ या नहीं, यह कहानीमें नहीं मिला। सरला और नलिनीकी मृत्यु, खासकर नलिनीके जीवनकी दुर्भाग्यमय परिणति कहानीका उपजीव्य है। पहली बीबीकी स्मृतिसे बोझिल मन लेकर सत्येन्द्रनाथने दुबारा ब्याह किया इसीसे वह नलिनीको अपना लेनेमें असमर्थ रहा। धीरे-धीरे उनका आत्मिक मिलन हुआ सही, लेकिन थोड़ा सा अन्तर दोनोंके बीच रह ही गया। प्राणपणसे चेष्टा करके भी नलिनी पतिके मनपर अधिकार नहीं कर पाई। साधारण कारणसे ही सत्येन्द्रनाथ उसके ऊपर नाराज हो उठता है। सत्येन्द्रके रूठने और कोप करनेका जो चित्र दिया गया है, वह सम्पूर्ण स्वाभाविक नहीं बन पाया। किस साधारण कारणसे बीबीपर नाराज होकर उसने दुबारा ब्याह

किया, उससे वह विकृतमस्तिष्क पागल ही जान पड़ता है। कहानीकी यही कृत्रिम घटना है किन्तु यह अविश्वसनीय और अस्वाभाविक है।

काशीनाथ 'बोझा' की अपेक्षा निकृष्ट है यद्यपि इसका आख्यानभाग उपन्यासके लिए अधिक उपयुक्त है। काशीनाथ गरीब लड़का है किन्तु निर्लोभ और उदासीन प्रकृतिका। कमला पतिके प्रति अनुरक्त होने पर भी अत्यन्त अभिमानिनी है। पति और स्त्री दोनोंका स्वाभिमान बहुत तीव्र है। इनके दाम्पत्य जीवनके मूलमें एक बड़ी चीजकी कमी रही—वह यह कि वे एक दूसरेकी अन्तरात्माको नहीं समझ सके। पति और स्त्री परस्परको सुखी देखना चाहते हैं, पर परिस्थिति विषमताके कारण और अकस्मात् दुर्भाग्यसे वे सुखी नहीं हो पाते—यह एक भारी आक्षेपका विषय है। किन्तु इसे सत्यके रूपमें खड़ा करनेके लिए पति पत्नीके दैनन्दिनके जीवनके विस्तृत विश्लेषणका प्रयोजन है। पति-पत्नीका मेल और झगड़ा प्रतिदिन अनेक तुच्छ घटनाओंको लेकर होता है और हर रोजकी इस तुच्छताको स्थान न दे पाने पर यह मेल और झगड़ा सजीव नहीं होता। पर छोटी कहानीमें ऐसा होना सम्भव नहीं। अतएव शरत्चन्द्रने दो-एक बड़ी बड़ी घटनाओंका उल्लेख करके ही यह चित्र खींचनेकी चेष्टा की है। मगर उनकी यह चेष्टा सम्पूर्ण रूपसे सफल नहीं हुई। कमलाने जो सारी सम्पत्ति पर दावा किया था, उसका कारण हम समझ सकते हैं किन्तु मनोहरके प्रिय काशीनाथके अपमानके सम्बन्धमें कमलाने जो कुछ मन्तव्य प्रकट किया, वह कुछ अस्वाभाविक हो गया है। अभिमानिनी कमलाके चरित्रमें भी यह मेल नहीं खाता। कमला निर्दोष नहीं है। पतिके इसके विरुद्ध गवाही देने पर भी, पतिकी बातको उसने जिस तरह अग्राह्य किया है और पतिका जिस तरह तिरस्कार किया है, उसे स्वाभाविक और सत्य नहीं माना जा सकता।

'दर्पचूर्ण' कहानी अपेक्षाकृत पहलेकी असम्पूर्ण रचना है, किन्तु शरत्-प्रतिभाके नमूनेके नाते यह मूल्यहीन है। पत्नी किसी झोंकमें आकर चरित्रवान् गुणवान् पतिसे ब्याह कर सकती है किन्तु प्रतिदिन उसके साथ सिरसी बसनेमें उसका अहंकार, धन और मानकी उसकी स्पर्धा और धनहीनके प्रति उसकी घृणा प्रकट हो पड़ना असम्भव नहीं है, और इससे पतिका जीवन भी विषमय हो जायगा। वैभवके अभिजात सम्प्रदाय या बड़े घरोंकी

साथ शरत्‌चन्द्रका परिचय उतना गहरा नहीं है, इसीसे जहाँ उन्होंने इस सम्प्रदायका चित्र खींचा है, वहीं वह निर्जीव और एकांगी हो गया है। 'सम्पूर्ण' कहानीकी नायिका इन्दुमती मानव ही नहीं बन पाती। वह जैसे नरेन्द्रनाथको पीड़ित करनेका यन्त्र मात्र है — उसमें न अनुभूति है, न समझ है, न उसके प्राण है। वह समझकर भी नहीं समझती। आसपासके जगत्‌के बारेमें वह सम्पूर्ण अज्ञ है। चरित्रकी विचित्रता दिखानेके लिए ग्रंथकारने उसके भीतर अनुभूतिके संचारका आभास दिया है, किन्तु उसकी वह चेष्टा सफल नहीं हुई, और अन्तिम अंश निकाल देनेपर वह हृदयशील मानव ही नहीं बन पाती। इस कहानीके आख्यानकी परिकल्पना अनिन्द्य है; किन्तु इसके चरित्र (खासकर नायिका इन्दु) निर्जीव हैं।

सती कहानी शरत् बाबूकी प्रतिभाका एक श्रेष्ठ दान है। यह सब देशोंकी और सब समयोंकी श्रेष्ठ कहानियोंके साथ समान श्रेणीमें गिनी जा सकती है। यह कहानी व्यंग्य-रसात्मक है। किन्तु यह व्यंग्यरस तीक्ष्ण विद्रूपके द्वारा कटु नहीं हुआ। यह प्रभातके प्रकाशकी तरह उज्ज्वल और मधुर है। अतिरिक्त सतीत्वके साथ संदेहपरायणताका संयोग होनेपर बेचारे निरीह पतिका जीवन कितना असह्य हो सकता है, इसका अतिमधुर और करुण ही स्पष्ट चित्र इसमें खींचा गया है। यह चित्र हास्यरससे उज्ज्वल और करुणासे स्निग्ध है।

चाहे जिस ओरसे इस कहानीपर विचार किया जाय इसमें असाधारण शिल्प-कौशल देख पड़ता है। पहले तो इसके गठन-कौशलपर ध्यान जाएगा। खूब संक्षेपमें हरिश्चंद्रके ब्याहका इतिहास दिया गया है। उसके बाद कई एक अतिशय कौतुकजनक घटनाओंकी सहायतासे हरिश्चन्द्रके दाम्पत्य-जीवनका रेखा-चित्र खींचा गया है। निर्मलाका संदेह इतना गुरुतर, इतना स्पष्ट है कि उसके वर्णनमें बालकी खाल निकालनेवाले विश्लेषणकी ज़रूरत नहीं है। इस प्रकारके चरित्रकी विशेषता यह है कि वह ज्वालामुखीके विस्फोटकी तरह कब अपनेको अकस्मात् प्रकट कर बैठेगा, इसका कुछ ठीक नहीं, और कोई आदमी किसी तरह किसी भी उपायसे इसके हाथसे अपनी रक्षा नहीं कर सकेगा। निर्मलाके प्रत्येक सन्देहकी अभिव्यक्ति ही अचानक होती है और प्रत्येक अभिव्यक्ति ही उसके चरित्रके साथ सुसंगत या स्वाभाविक है। आकस्मिक और स्वाभाविकका यह अपूर्व

अभिमान इस कहानीके कथाका एक प्रधान उपादान है। कीर्तनवालीका गान सुननेके मामलेसे लेकर निर्मलके विष-पान तक, कहानीकी एक सुशृंखल-युक्त प्रगति देखी जाती है, फिर भी कहीं जटिलता नहीं है, वैचित्र्यका विश्लेषण नहीं है। छोटी कहानीके संक्षिप्त होनेकी बातको शरत्चन्द्रने कहीं नहीं भुलाया।

निर्मलकी छलोद्घाटनकथा कहानीका विषय है; किन्तु उसका केन्द्र है उत्पीड़ित अभागा हरिश्चन्द्र। बेचारा कुछ भी क्यों न करे, इसी बीचकी भाँति उस दृष्टिसे छुटकारा नहीं पा सकता। मजलिसके साथ बात करना, कीर्तन सुनना, दूध पाना कुछ भी उसके लिए निरापद नहीं है। जब सोचकर उसने देख लिया, लड़का सहारा लेकर देख लिया पर किसी तरह उसकी जान नहीं बची। मानों सत्य और मिथ्याने मिलकर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया है। खुद उसने जो एक लड़की दीवाल खड़ी की थी, वह मनुष्यकी केवल एक बातसे, सत्यताकी निश्छल प्रगल्भतासे धूलमें मिल गई। यहाँतक कि माटीकी देवता शीतला तक उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करती है। किसी तरह उसका बचाव या छुटकारा नहीं है। जान पड़ता है जैसे वह एक ज्वालामुखीके ऊपर चल रहा है और चाहे जितना सँभलकर दबे पैरों चले, किसी तरह आत्मरक्षा न कर सकेगा। यहाँतक कि प्रेमसे छुटकारा पाना भी उसके उपायहीन जीवनका एक चरम, सबसे बड़ा अभिशाप है। कहानीका उपसंहार भी बहुत ही मनोरम हुआ है। लांछना जब हद दर्जेको पहुँच गई है, तब उसने मनके क्षोभसे ब्रजनाथ (कृष्ण) के साथ अपनी तुलना की है। राधिकाके एकनिष्ठ प्रेमकी कथा युग-युगमें गाई गई है, युग-युगमें भक्त लोग उसे सुनकर विमुग्ध हुए हैं, किन्तु वह प्रेम ही ब्रजनाथ श्रीकृष्णके लिए नितान्त अशान्तिका कारण हुआ होगा—वह परेशान हो गये होंगे, और इसीके पचेसे अपनेको बचानेके लिए मथुरा भाग गये होंगे राधा-कृष्णकी कहानीकी यह व्याख्या बिल्कुल नई है, और श्रीकृष्णके साथ हरिश्चन्द्रकी तुलना बहुत ही सुन्दर है।

३

'पथनिर्देश', 'हरिचरण', 'एकादशी बैरागी', 'मुकदमेका नतीजा' हरिलक्ष्मी और 'परेश'—इन कहानियोंमें पारिवारिक और सामाजिक

१

जीवनके छोटे छोटे चित्र दिये गये हैं। 'एकादशी बैरागी' एक नक्शा * है। इसमें प्लाट नहींके बराबर है। एकादशी बैरागी छोटी जातिका है और फिर बड़ा ही कृपण और सूदखोर है। लेनदारों या आसामियोंके साथ उसका बर्ताव बड़ा ही कड़ा और निर्मम है। वह किसीको एक पैसा भी सूद नहीं छोड़ता किसीको राहमें एक रुपया भी उधार नहीं देता। अथ च, उस कठोर धन-पिपासुके हृदयमें स्नेहकी शुभधारा फल्गुनदीके जलकी तरह निरन्तर बहा करती थी। उसकी बहनका पैर गलतीसे कुमार्गमें पड़ गया था। उसे अपने घरमें आश्रय देनेके फलस्वरूप वह जाति, कुल, गाँव, और समाज छोड़नेको बाध्य हुआ, किन्तु तो भी विचलित नहीं हुआ। उसका स्नेह जैसे असीम है, वैसे ही सत्साहस भी अटूट है। इस धूर्त, कठिन आदमीके चरित्रका एक प्रशंसनीय श्रेष्ठ पहलू भी है। उसका सत्साहस और न्यायपरायणता उसकी न चुकाई जा सकनेवाली ईमानदारीके द्वारा परिपुष्ट हुई है। उसे जो मिलना चाहिए, उसे वह छोड़ता नहीं, और दूसरेका जो न्यायानुकूल प्राप्य है, उसे वह कभी हड़पता नहीं। यह ईमानदारी और सत्साहस कोमल भावनाओंकी डोरी और कठिन एकादशी बैरागीके जीवनका मिलन-स्थल है। कहानी छोटी है, इसका प्लाट मामूली है; लेकिन तो भी कहानी पढ़ते समय पहले एकादशी बैरागीके सम्बन्धमें हमारी जो धारणा बनती है वह कहानीके उपसंहार पर पहुँचकर एकदम बदल जाती है। अथ च, यहाँ कोई आकस्मिक घटना नहीं है, पूर्वांश और उत्तरांशमें कोई विपरीतता नहीं है।

'मुकदमेका नतीजा', 'हरिलक्ष्मी' और 'परेश' — ये तीनों कहानियाँ एक परिवारके अन्तर्गत लोगोंकी प्रतिद्वंद्विता (लाग-डाँट) और शत्रुताको लेकर लिखी गई हैं। इनमें ग्रन्थकारने यह भी दिखाया है कि लाग-डाँट और शत्रुताकी आड़में मिलनका स्नेह-सूत्र किस तरह रहता है। इन तीन कहानियोंमें 'परेश' कहानी सबसे निराली है। धार्मिक प्रेरणासे किस तरह परेशने अपने प्रतिपालक भाई पावन भ्राताकी प्रतिकूलता की, इसका वर्णन अपूर्व है। गुरुचरणके महत्त्व और गिरावटका उल्लेख है; किन्तु कैसे धीरे धीरे इस देवतुल्य मनुष्यका अधःपतन हुआ, इसका परिचय नहीं है। जब नाटकके बगलमें वह उतारा जा रहा था,

* इस तरहकी रचना जिसे अंगरेजीमें sketch कहते हैं।

तब किस तरह उसका हृदय मेघाच्छन्न हो रहता था इसका आभास भी नहीं है। अन्त न आनेके दिखानेका रहस्य ही मुख्य है।

'मामलेका फल' कहानीका गठन-कौशल अति मनोहर है। शिबू और शम्भूके प्रतिदिनके जीवनका अति सुन्दर चित्र खींचा गया है। जीने मरनेके लिए उनका झगड़ा है। बात साधारण है, पर इसी बातको लेकर दोनों भाई और उनकी औरतें प्रतिदिन कुरुक्षेत्र-सी कलह करती हैं—बचपनकी कलह, जमींदारके पास दौड़-धूप, थानेमें रिपोर्ट, इसके बाद अदालतमें मुकदमा। इस भ्रातृ-विरोधमें मन्त्री या सलाहकार बननेके लिए तीसरे पक्ष पाँचूको भी लाया गया है। मामला जब तूल पकड़ गया, जब सारा साज-सरंजाम तैयार हो गया, उसी समय अत्यन्त अचानक सब मटियामेट हो गया। प्रतिपक्ष शम्भु और उसके पुत्र गयारामके विरुद्ध कानूनसे अनुमोदित सब अस्त्र-शस्त्र लगाकर शिबूने देख पाया कि उसकी स्त्रीने छिपकर गयारामके पास जाकर आश्रय लिया है। इसके बाद शत्रुताकी डोर आगे खींचते चलना शिबूके लिए (शायद शम्भूके लिए भी) असम्भव हो गया। गंगामणिकी ममता और गयारामकी [illegible] उसका मिलना—इस एक आकस्मिक घटनाको केन्द्र करके यह कहानी गठित हुई है। इससे गंगामणिका चरित्र भी अप्रत्याशित रूपसे खिल उठा है। गंगामणि 'रामकी सुमति' की नारायणीकी तरह कोई असाधारण स्नेहकी रखनेवाली नहीं है, वह सचमुच ही ग्रामीण स्वभावकी भी है। गयारामके ऊपर उसे स्नेह है, किन्तु उस स्नेहमें अतिशय भावाभिव्यक्ति नहीं है, आतिशय्य भी नहीं है। क्रोधके समय उसने गयारामको तरह तरहके कटु वाक्य कहे हैं और गयारामके पिता तथा सौतेली माताके साथ उसका बैर शिबूके बैरभावसे कम नहीं है। गयारामके आश्रयसे भ्रातृविरोधने जो नया रूप धारण किया, उससे यह निश्चित होने पर भी कि वह गयारामका विरोध नहीं करेगी, यह पहले अनुमान नहीं किया गया कि ठीक किस भावमें उसका मातृस्नेह अपनेको प्रकट करेगा। अतएव कहानीकी परिणति सम्पूर्ण रूपसे आकस्मिक न होने पर भी अप्रत्याशित अवश्य है। गंगामणिका चरित्र किस तरहसे विकसित हो उठा है, आगे

मनस्तत्त्वकी नींवपर नहीं है, तो भी जान पड़ता है, कहानीके उपसंहारमें हमने मातृ-हृदयके रहस्यका नया परिचय पाया।

'हरिलक्ष्मी' कहानीमें हरिलक्ष्मीके चरित्रका जो सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है वह अति अपूर्व है। छोटी कहानीमें चरित्र मनस्तत्त्वके विश्लेषणका अवकाश नहीं होता, किन्तु इस कहानीमें दो-एक छोटी-छोटी घटनाओंमें रहस्यपूर्ण मानव-हृदयके रहस्यका जो पता दिया गया है, उसकी तुलना विरल है। कहानीके प्रथम अंशमें असाधारणताका कोई चिह्न नहीं है। शरत्चन्द्रके आर्टकी पराकाष्ठा शेष अंशमें देख पड़ती है, जहाँ विपिनकी स्त्री कमलाकी लांछना करानेमें हरिलक्ष्मी स्वयं उससे अधिक अपमानित होती है। एकाएक क्रुद्ध होकर हरिलक्ष्मीने अपने बर्बर पतिको प्रतिहिंसाके लिए उत्तेजित किया, और उसके बाद प्रतिपक्षीको छोटा बनानेमें हरिलक्ष्मी स्वयं ही छोटी होने लगी। ऐसा जान पड़ता है कि कहानीके परिणाममें दैवके निष्ठुर परिहासकी झलक है। पतिकी विपत्तिको शान्त करने जाकर हरिलक्ष्मीने देखा कि उसने ऐसा करके उसके क्रोधकी आगमें और ईंधन डाल दिया है। मानव-हृदयकी गति अति सूक्ष्म है। हरिलक्ष्मीको प्रसन्न करनेके लिए शिवचरणने भी अपनी बुआ कमलाको पग-पग पर उत्पीड़ित किया है। उस उत्पीड़नको कमलाने चुपचाप सह लिया है। किन्तु इस बर्बर अत्याचार और उत्पीड़ित कमलाकी नीरव सहिष्णुतासे हरिलक्ष्मीका उत्साह बुझ गया है, वह विमूढ़ बन गई है। वह केवल अपनी ही दृष्टिमें छोटी नहीं हो गई, वह जानती है कि कमलाकी दृष्टिमें भी वह छोटी हो गई है। उसने केवल सोचा है कि "मँझली बहूको एक सान्त्वना तो बाकी है—वह है बिना दोषके दुःख सहनेकी सान्त्वना। किन्तु उसके अपने लिए क्यों क्या बच रहा है!" इस प्रकार उसके लिए विजयकी माला पराजयकी ग्लानि ही ले आई है। मिथ्या चोरीके अभियोगमें मँझली बहूको 'विचार' के लिए उसके पास पकड़कर लाया गया, "उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगा। उसे जान पड़ा, इतने लोगोंके सामने वैसे वही पकड़ी गई है और विपिनकी स्त्री (कमला) ही उसका विचार या फैसला करने बैठी है।"

'जन्मभूमि' और 'हरिचरण' गरीब नौकरके निर्यातित जीवनपर लिखी गई कहानियाँ हैं। गरीब लोगोंके जीवनके साथ शरत्चन्द्रका गहरा और घनिष्ठ

परिचय है। इनकी बात उन्होंने जहाँ कहीं लिखी है, वहीं उनकी घनिष्ठ अभिज्ञताका निदर्शन मौजूद है। 'हरिचरण' कहानी अपेक्षाकृत निकृष्ट है। इसका प्लाट बहुत ही साधारण है, इसमें असम्भव बातें भी यथेष्ट हैं। ट्रेजिडीके मूलमें जो घटना है, वह आकस्मिक है। दुर्घटना बाबूका अत्याचार इच्छाकृत नहीं है। जीवनमें और आर्टमें आकस्मिकके लिए स्थान न हो, यह बात नहीं है, किन्तु उसीको काव्य और नाटकमें केन्द्रीय घटना बनानेसे आर्टके धर्मकी रक्षा नहीं की जा सकती। जो अचानक आता है, उसके साथ स्वाभाविक और प्रात्यहिक (रोजमर्रा)का सामंजस्य दिखाना होगा। 'बाल्यस्मृति' कहानी निर्दोष है। गदाधर ठाकुरके क्षुद्र जीवनका क्षुद्र इतिहास बड़ी निपुणताके साथ वर्णन किया गया है। जिस 'मेस' में वह नौकरी करता था और जिस तरहसे उसे नौकरी करनी पड़ती थी, उसके वर्णनद्वारा गदाधरके जीवनका प्रतिवेश या उसके आसपासका वातावरण रचा गया है। यह वर्णन संक्षिप्त, अथ च सर्वाङ्गसुन्दर है। इसके बाद लालटेनकी चिमनी टूटना, रुपया चुराना, उसकी नौकरी छूटना और वेद रुपया मनीआर्डरसे भेजना—इन कुछ मामूली घटनाओंके माध्यमसे उसके जीवनकी कहानी विकसित हो उठी है। वर्णनमें कहीं ढीलापन नहीं है, कल्पनाओंकी बहुलता नहीं है, किन्तु कहीं भी अस्पष्टता या असम्पूर्णता नहीं रह गई। दो-एक कूची फेरनेसे ही चित्र परिपूर्ण प्राणवान और सजीव हो गया है। इस कहानीकी एक और विशेषता है। केवल गदाधरकी कहानी ही निपुणताके साथ नहीं वर्णन की गई है, सुकुमारका शिशु-हृदय भी विचित्र रंगसे रंजित हो उठा है। गदाधरके जीवनकी प्रत्येक घटना इस शिशुके मनमें गहरी बैठ गई है, उसके हृदयकी वृत्तियाँ गदाधरके संस्पर्शमें आकर परिपुष्ट हुई हैं, उसकी अभिज्ञताका घेरा बढ़ गया है।

'समाप्तिका स्वर्ग' और 'मोहन' ये दोनों कहानियाँ अभागे गरीबोंके जीवनपर लिखी गई हैं। किन्तु इनके भीतर—खासकर 'मोहन' कहानीमें—जो शिल्पकी निपुणता है, वह असाधारण है। इन दोनों कहानियोंमें जिन सब नारियोंकी बात कही गई है वे मुख्य होने पर भी गौण हैं, और जो सब घटनाएँ वर्णन की गई हैं उनका कोई अपना मूल्य नहीं है। यहाँपर कहानीके नायक-नायिकाओंकी सहायतासे शहरके समाजका चित्र खींचा गया है। यहाँ जो अद्भुत

या सुन्दर रूपसे पटभूमिका (बैक ग्राउण्ड) को चित्रित किया गया है — उसे उभारा गया है, और उस पटभूमिकाका ही मूल्य अधिक है। इस कारण इन दोनों कहानियोंमें जो विस्तीर्णता है, वह साधारणतः छोटी कहानीमें नहीं पाई जाती। साधारणतः छोटी कहानी एक साधारण कहानीके सहारे गठित होती है, और यदि घर समाजका चित्र देना हो तो वहाँ उपन्यास लिखनेकी जरूरत होती है। वृहत्तर समाजके प्रति कथाकारोंकी दृष्टि आकृष्ट होती है, इसीलिए आजकलके उपन्यास मोटे मोटे लिखे जाते हैं। किन्तु शरत्चन्द्रने छोटी कहानीकी सहायतासे ही विराट् मानव समाजको रूप दिया है साकार किया है। इन दोनों कहानियोंमें बड़े कलेवरके उपन्यासके विस्तार और पुङ्खानुपुङ्ख विश्लेषणके साथ छोटी कहानीकी रसघन निविड़ताका समन्वय या मेल हुआ है। अभागीका स्वर्ग 'महेश' की अपेक्षा निकृष्ट है। कारण, पति-परित्यक्ता अभागीकी व्यक्तिगत कहानीने आवश्यकतासे अधिक प्रधानता पाई है। जमींदारका गुमाश्ता दरवान मुखर्जी उनका बेटा, नाईकी बीवी, बिन्दी बुआ रसिक बाघ — इन सबको लेकर जिस समाजकी सृष्टि हुई है, उसके चित्रण अभागीके जीवनको विशालता दी है, किन्तु तो भी अभागीके अपने दुर्भाग्यने बीच-बीचमें पटभूमिकाको अस्पष्ट कर दिया है।

'महेश' शरत्चन्द्रकी श्रेष्ठ छोटी कहानी है। दुनियाके साहित्यमें बहुत कम ऐसी छोटी कहानियाँ गिनाई जा सकती हैं जिनमें महेश-जैसा विस्तार और निविड़ता हो। इस कहानीमें किसानोंके उत्पीड़ित, दुर्भाग्यमय जीवनकी कथा विचित्र रंगोंमें प्रकाशित हुई है। गफूर निर्धन या भूखा किसान है। दिन भर परिश्रम करके वह बड़े कष्टसे अपना और अपनी कन्याका आहार जुटा पाता है। इसके ऊपर अकाल पड़नेपर वह कम आहार और भी कम हो जाता है। गफूरकी सबकी जानती है कि महेशका माँस तक नहीं फेंका जा सकता; वह भी उनके भोजनकी सामग्री है। जिस घरमें वे रहते हैं वह दीमकसे भी जीर्ण हो रहा है, और अन्तःपुरकी लाज तथा इज्जत पथिकोंकी करुणाको आत्मसमर्पण करके निश्चिन्त हो गई है। जमघाटका बिना पानी तक उन्हें मुश्किलसे मिलता है। कारण, वे अस्पृश्य हैं। पोखरका पानी छू नहीं सकते। और सब लोग यथेष्ट और अनपेक्ष मात्रामें जल लेकर दया करके जब उन्हें थोड़ा-सा दे देते हैं, तभी वे पा सकते हैं।

'इस दरिद्र किसानका एकमात्र साथी और बंधु उसका बैल महेश है। कसाईके लिए यह प्रिय वस्तु है; वह उसे काटकर मांस बेचता है। ब्राह्मणके लिए गाय देवता है; किन्तु ब्राह्मणधर्म, आचारकी व्यापकतासे, ह्रास हो गया है इसलिए ब्राह्मणके निकट जीवित गायकी अपेक्षा गो-सम्बन्धी आचार ही अधिक सत्य है। किन्तु गफूर गरीब किसान है। उसके लिए महेश अन्नदाता है बंधु है उसकी गरीबीका साक्षी, साथी और साथी है। ब्राह्मण जमींदारने गोचरभूमि हड़प ली है गफूरके पैरोंपर गिरनेपर भी पयालका एक तिनका तक नहीं छोड़ा। गफूरने आप भूखे रहकर भी महेशको खिलाया-पिलाया है। पयाल या घास न रहनेपर अपने घरकी छप्परका फूस निकालकर उसे खिलाया है। जमींदारने महेशको पकड़कर काँजीहाउस भेज दिया है, गफूर अपना आखिरी सहारा (बर्तन आदि) गिरो रखकर महेशको वापिस छुड़ा लाया है। लाचार होकर गफूरने अन्तको कसाईके हाथ महेशको बेच डालना चाहा है किन्तु जब बेचनेका समय आया तब वह उसे बेच नहीं सका। कसाईने जिस तरह (टटोल-टटोलकर) महेशके चमड़ेकी कीमत ठीक की है उसे देखकर वह काँप उठा है। ब्राह्मण जमींदारने उसका यह अ-हिन्दू प्रस्ताव (कसाईके हाथ बैल बेचनेकी बात) सुनकर निर्मम गफूरको जो दण्ड दिया है, उस न्याय-दण्डको गफूरने खुशीसे मंजूर कर लिया है। उपायहीन, अपमानित, भूखे-प्यासे गफूरने क्षोभसे, क्रोधसे, सताये जानेसे ज्ञान-शून्य होकर महेशपर ऐसा प्रहार किया कि वह मर ही गया। तत्काल पण्डितगण इसपर उसके लिए प्रायश्चित्तकी व्यवस्था की। इसी प्रायश्चित्तके डरसे वह अपना घर-बार, खेत-खलिहान छोड़कर चटकल (मिल) में काम करनेके लिए चल दिया है जहाँ जानेके लिए पहले सैकड़ों दुःख सहनेपर भी वह राजी नहीं किया जा सका था।

इस कहानीका भाग अति मधुर है। महेशको केन्द्र करके ग्राम्य समाजके प्रमुख प्रतिनिधियोंका चित्र खिल उठा है—ब्राह्मण जमींदार, छुआछूतवादी ब्राह्मण पण्डित तर्करत्न कायस्थ मानिक घोष, गोमांस-व्यवसायी कसाई और गो-प्रतिपालक किसान गफूर। इन सबके चरित्र इनकी दो-एक बातोंमें ही परिस्फुट हो उठे हैं, और गफूरके साथ अन्य सबका अन्तर स्पष्ट चमक रहा है। वर्णनका बाहुल्य नहीं है रंगकी प्रचुरता नहीं है, लेकिन तो भी चित्र सर्वांग

सुन्दर बन पड़ा है। जान पड़ता है, चित्रकारने पट (कैनवास) के ऊपर दो-एक रेखाएँ खींच दी हैं, और सारा पट सुन्दर चित्रोंसे भर गया है। इस कहानीमें और एक बात ध्यान देनेकी यह है कि मूक महेश तक मनुष्यकी कहानीका अंग बना है। जान पड़ता है, वह जैसे सब समझ पा रहा है, वह चुपचाप सारे अन्याय, सारे अत्याचार सह रहा है और जब असह्य हो उठा है, तब मानों अन्यायके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए ही बाहर निकल पड़ा है।

९—नाटक

१

शरत्चन्द्र उपन्यासलेखक थे। उन्होंने नाटक नहीं लिखे। अपने कई उपन्यासोंको अभिनयके लिए उन्होंने नाटकका रूप अवश्य दे दिया है। नाटक और उपन्यासके आर्टमें बहुत अन्तर है—बहुत विभिन्नता है। नाटक दृश्य काव्य है। वह साधारणतः रंगमञ्च पर खेलनेके लिए ही रचा जाता है। दर्शक थोड़े समयमें अभिनय देखकर विमुग्ध होना चाहता है। देखनेके समय वह कहींपर चुपचाप बैठकर आदर्श तत्व या रहस्यका विचार नहीं करता। इसीसे हर घड़ी थोड़ी विस्मयजनक मनोहर घटनाओंकी जरूरत होती है। इसी कारण नाटकका प्लाट बहुत लम्बा या जटिल नहीं हो सकता। अथ च, उसमें जल्दी जल्दी परिवर्तन और विचित्रता न रहनेसे दर्शक अधीर हो उठता है। छोटी छोटी घटनाओंकी एकत्रतासे नाटकका प्लाट नहीं बनता। कोई एक विषय लेकर अधिक देर तक उसमें उलझे रहनेकी गुंजाइश नाटकमें नहीं है। उसका प्लाट संक्षिप्त, स्वल्प विस्तृत, किन्तु घटना-बहुल और वैचित्र्यमय होना चाहिए। जल्दी-जल्दी दृश्य-परिवर्तन करना होता है, इसलिए नाटककी कहानी केवल वैचित्र्यमय होती है, यह सब नहीं है; वह बहुत जल्दी पूर्ण या गतिशील भी होती है। भिन्न-भिन्न मानव-जीवनकी स्थितियोंका परिचय देता है पर नाटकके अभिनयमें हम जीवनकी परिवर्तनशीलता और द्रुतगतिका चित्र पाते हैं।

नाटक प्रधानतः अभिनयके लिए रचा जाता है, और अभिनयकी सुविधा-असुविधाके ऊपर उसका रूप निर्भर होता है। नाट्याधिकारीके अधीन अपरिमित अभिनेता नहीं रहते; अतएव नाटकमें अभिनेता-अभिनेत्रियोंकी संख्या बहुत

अधिक होनेसे काम नहीं चलता। टामस हार्डिके The Dynasts को रंगमंच पर अभिनय करना किसी भी नाट्यसंस्थाके लिए आसान नहीं है — दुष्कर है। इसी कारण नाटककी कहानी उपन्यासकी कहानीकी अपेक्षा संक्षिप्ततर होती है। इसके सिवा जिस कहानीमें जन्मसे मृत्यु तकका इतिहास लिखा गया है, उसका अभिनय करनेमें अनेक असुविधाएँ हैं। एक ही चरित्रमें बाल्यावस्थासे लेकर प्रौढ़ावस्था तककी कहानी लिखी जानेपर उसकी भूमिका (पार्ट) में एकसे अधिक अभिनेता लेने पड़ते हैं। ऐसा होने पर अभिनयकी विशेषता जाती रहती है। Buddenbrooks जैसे उपन्यासको नाटकका रूप देना असम्भव है। विराज बहू उपन्यासमें पूँटीके बचपन और जवानीका चित्र है। इस उपन्यासको नाटकके रूपमें कलकत्ता नाट्यमंदिर हालमें जो अभिनय दिखाया गया था उसमें (दो अभिनेत्रियों द्वारा) पूँटीके जीवनकी विभिन्न अवस्थाओंको रूप देकर दिखानेकी चेष्टा यद्यपि बिल्कुल ही व्यर्थ नहीं हुई, लेकिन तो भी जान पड़ा कि इस अभिनयमें एक मौलिक अस्वाभाविकता रह गई है।*

नाटकके लेखकको और भी एक ओर ध्यान देना होता है। सभी अभिनेता और अभिनेत्री समान निपुण नहीं होते। दर्शकगण प्रधान अभिनेता और अभिनेत्रीको रंगमंचपर बार-बार देखना चाहते हैं। उनके कृतित्व या निपुणता-पर नाटककी सफलता निर्भर रहती है। अतएव नाटकमें नायक-नायिकाका स्थान बहुत बड़ा है। उनके चरित्रका विकास करनेके लिए ही जैसे और-और चरित्रोंकी सृष्टि हुई है। एक विख्यात समालोचकने कहा है कि उपन्यासके आकारमें अगर लिखा जाता तो 'हैमलेट' और भी उच्च कोटीका ग्रन्थ होता। हैमलेट नाटककी कहानी इतनी जटिल और लम्बी है कि जान पड़ता है, उपन्यास ही उसका वाहन होता, किन्तु उपन्यासके रूपमें हैमलेटमें डेन्मार्कके राजकुमार (हैमलेट) की प्रधानता कम हो जाती। 'देना-पावना' विशेषरूपसे षोड़शीके जीवनकी कहानी है। इसके नाट्यरूपका नाम रखा गया है 'षोड़शी'। किन्तु नाटकमें जीवानन्द प्रधान व्यक्ति हो गया है। उसीको केन्द्र करके कहानी गठित हो गई है। इस प्रधानताका मूल कारण शिशिरकुमार भादुड़ीकी अभिनय-प्रतिभा है।

* एक ही अभिनेत्रीसे काम चलाने पर भी अस्वाभाविकताका दोष दूर न होता।

शरत्चन्द्रके जो नाटक हैं वे पहले उपन्यासके रूपमें लिखे गये थे और वे प्रधानतः नाटककार नहीं हैं। अतएव उनके नाटकोंका विचार केवल नाटकके हिसाबसे अगर किया जाय तो उनपर सुविचार हो इसमें सन्देह है। तो भी नाटकका विचार तो नाटकके ही हिसाबसे करना पड़ेगा। शरत्चन्द्रने जो कई नाटक लिखे हैं, उनमें 'रमा' और 'विजया' की विषय-वस्तु नाटकके लिए वैसी उपयोगी नहीं है। नाटकका अभिनय कुछ घण्टोंमें ही हो जाता है इसलिए उसकी विभिन्न घटनाओंके बीच एक सरल संयोग-सूत्र रहनेकी आवश्यकता है। एक घटनाके साथ दूसरी घटनाका सम्बन्ध स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक दृश्यके बाद ही दर्शकके मनमें यह कौतूहल जगना चाहिए कि इसकी परिणति कहाँ और क्या होगी। बीचमें कोई और विच्छिन्न घटना आ जानेपर दर्शकका चित्त विक्षिप्त हो जाता है। उपन्यास पढ़ा जाता है धीरे-धीरे, इसलिए उसमें विस्तृत वर्णनकी गुंजाइश है। किन्तु नाटकमें केन्द्रीय घटना और चरित्रकी परिणतिको ही मुख्य बनाना पड़ता है। 'ग्रामीण समाज' में ग्राम्य समाजकी अनेक विचित्रताओंका चित्र है। धनकि साथ धनभावकी धातुका कैसा नाटके साथ सनातन हावड़ाका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। रमा रमेश और बेनी घोषाल — ये उपन्यासके प्रधान चरित्र हैं और सभी इनके सम्पर्कमें आये हैं। इनके द्वारा बिखरी हुई घटनाओंके बीच एक संयोगकी सृष्टि हुई है, यद्यपि यह संयोग बिल्कुल ही ढीले-ढाले ढंगका है।

नाटकमें यह शिथिलता न होनी चाहिए। इसी कारण वर्तमान युगके एक लेखक चेस्टरटन कहते हैं कि सामाजिक शक्तियोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया नाटकके आकारमें नहीं दिखायी जा सकती। जिन सब प्रतिभाशाली नाटककारोंने समाज-शक्तियोंको रूप देनेकी चेष्टा की है, वे एक अनिवार्य उपायसे विविध घटना-समूहोंके बीच ऐक्यको लाये हैं। वे किसी एक आदमीके जीवनको केन्द्र बनाते हैं और यह दिखानेकी चेष्टा करते हैं कि नायक या नायिकाके जीवनमें जितनी विविध घटनाएँ घटित होती हैं, वे विभिन्न होनेपर भी उनके भीतरसे एक ही अभिव्यक्ति आती है, वे सभी एक ही तथ्यको प्रकट करती हैं। कुमारी जेन हैरिसनने अनेक देशोंके पौराणिक रहस्यका पता लगाकर यह सत्य पाया कि अभिनयोंके आदिरूप (बचपन) और धर्मविषयक त्यागोंकी प्रथाओंकी तहमें

चरित्रोंका निर्माण किया हुआ है। इसी तरह कर्मोद्योगी व्यक्तिके जीवन और समाजकी शक्तिका चित्र खींचा है और दोनोंके बीच संघर्ष-द्वन्द्वका आविष्कार किया है। अन्यान्य श्रेष्ठ नाट्यकारोंने भी ऐसे ही उपायका सहारा लिया है। किन्तु 'रमा' नाटकमें इस तरहकी कोई चेष्टा नहीं है। फल-स्वरूप यह नाटक कुछ अलग-अलग पात्रों और घटनाओंकी समष्टि (मजमुआ) बन गया है। उनमें जैसे कहीं कोई मेल नहीं है, किसीके साथ किसीका योग नहीं है। यहाँ तक कि इसमें नायक रमेश भी दर्शक और दाताके हिसाबसे आता है; ग्राम्य समाजके साथ उसका कोई गहरा सम्पर्क नहीं है। उपन्यासमें इस प्रकारका बिखरापन वैसा मारात्मक दोष नहीं है, और बहुत-सी छुद्र छुद्र घटनाओंका वर्णन रहनेके कारण अनेक अलग-अलग घटनाओंके बीच एक ऐक्यका आभास पाया जाता है। किन्तु नाटकमें अपेक्षाकृत विच्छिन्न कहानी ही सन्निविष्ट हुई है, इसीसे अनेक विचित्र कहानियाँ कहीं ऐक्य नहीं पा सकीं। रमेशके जीवनमें—तथा ग्रामीण समाजके इतिहासमें—कैलाश नाई और मोतीलालका उपहास-हीन करुण सनातन हालदारकी करुणाकी अपेक्षा कहीं अधिक सही चीज है, किन्तु नाटकमें सनातन हालदारकी करुणाके लिए तो स्थान दिया गया है पर कैलाश और मोतीलालका उल्लेख भी नहीं है।

'दत्ता' में समाजकी शक्तिको रूप देनेकी चेष्टा नहीं हुई, तो भी इसकी कहानी भी नाटकके लिए उपयोगी नहीं है, और उपन्यासमें जो सब नाटकोचित गुण थे, उनकी रक्षा मंचपर नाटकमें नहीं कर सके। नाटककी कहानी क्रमशः परिपुष्ट होकर अंतिम दृश्यमें चरम (क्लाइमेक्स) में पहुँच जाती है। कभी-कभी कहानीका चरम मुहूर्त ही उसके समाप्तिका समय होता है। दर्शकका कौतूहल और आग्रह क्रमशः बढ़कर अन्तिम दृश्यमें पराकाष्ठाको पहुँच जाता है। अगर यह चरम मुहूर्त या क्लाइमेक्स नाटकके मध्यम भाग या मध्यमभागमें आ पड़े, तो नाटकका अन्तिम अंश अपेक्षाकृत हल्का हो जाता है—दर्शकका उत्साह फीका पड़ जाता है। 'दत्ता' उपन्यासमें नरेन्द्र और विजयाके *मिलनकी* कहानीके साथ रासबिहारीकी पराजय जुड़ी हुई है। विजया और रासबिहारीके बीच जो संघर्ष चुपचाप चल रहा था, उसका धारा यहीं तक दृश्यमें हट गया, जिसमें विजयाकी सम्पत्तिका समाचार हस्तगत करनेके लिए चालकर

रासबिहारी विफल-मनोरथ हो गये और उन्होंने विजयासे अपने मनका भाव स्पष्ट रूपसे कह दिया। यहीं इस नाटकका चरम मुहूर्त या क्लाइमेक्स है। इसके बाद जो कहानीका अंश है, उसे सजीव रखना दुष्कर है। इसके बाद जो रासबिहारी रंगमंचपर आते हैं, वह वैसे अब पहलेके रासबिहारी नहीं हैं। उपन्यासमें भी हम देख पाते हैं कि अन्तमें रासबिहारी मानो हतप्रभ हो गये हैं किन्तु नाटकमें उनकी यह निष्प्रभता एक भारी त्रुटि बन गई है।

उपन्यासमें देख पाते हैं कि नरेन्द्र और नलिनीके एकत्र पढ़ने-पढ़ानेका दृश्य देखकर विजयाका मन नरेन्द्र और दयालके विरुद्ध वितृष्णासे भर गया है। उसने समझ लिया है कि सभी मर्द स्वार्थपर हैं, और विलासबिहारीका अपराध ही सबसे कम है। इसीसे दयालके घरसे लौटकर उसने क्षुब्ध चित्तसे विलासके साथ ब्याहके कागजपर दस्तखत कर दिये। इस तरह कहानीके भीतर रस संचारित हो उठा; पाठकका कौतूहल फिर जाग उठा। परन्तु नाटकमें शरत्चन्द्रने आत्मप्रतिष्ठाके इस अंशको एकदम बिगाड़ डाला है। उपन्यासके शेष भागमें जो नाटकोचित सम्भावना है, वह नाटकमें सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो गई है। ब्याहकी लिखा-पढ़ीके कागजपर दस्तखत करनेका केवल उल्लेख मात्र हुआ है वह प्रत्यक्ष रूपसे दिखाया नहीं गया। विजयाके दयालके घरसे चले आनेके बाद नलिनी (और दयालकी स्त्री) ने उसके और नरेन्द्रके मनके भावकी व्याख्या की है। यह व्याख्या किसी नवीन रहस्यका पता नहीं देती—बल्कि इसने नाटककी गतिमें बाधा खड़ी कर दी है। इसीसे जान पड़ता है कि नाटक यहींपर अथवा इसके पहले ही समाप्त हो गया। इसके बादके दृश्य फिर जम नहीं पाये। अन्तके दृश्यमें रासबिहारीकी चरम पराजय बालकोंका खिलवाड़ जान पड़ती है। शिशिरकुमार भादुड़ीने (नाटकमें अभिनयके लिए) इस अंशको बढ़ाकर सजाकर नाटकोचित बनानेकी चेष्टा की है किन्तु उनकी यह चेष्टा प्रशंसाके योग्य होनेपर भी सफल नहीं हुई। ग्रन्थकारने आप ही इसे चौपट कर डाला है।

'देना-पावना' शरत्चन्द्रका एक श्रेष्ठ उपन्यास है। इसकी कहानीमें नाटकीय सम्भावना भी प्रचुर है। 'षोडशी' नाटकमें यह सम्भावना सार्थक हुई है। इसका गठन-कौशल निर्दोष है। चरित्रके विकासकी दृष्टिसे यह नाटक

उपन्यासकी तुलनामें अनेक अंशोंमें अनुगत है किन्तु गठन-कौशलमें 'षोडशी', 'देना-पावना' की अपेक्षा निकृष्ट तो है ही नहीं, बल्कि जगह-जगह श्रेष्ठताका ही दावा कर सकता है। षोडशीके साथ जीवानन्दका परिचय हैमकी और निर्मलका आगमन षोडशीको निकाल बाहर करनेका उद्योग-आयोजन जीवानन्दका सहायता करना और प्रेमकी भिक्षा माँगना षोडशीका भैरवी-पद छोड़ना जीवानन्दका सम्पूर्ण परिवर्तन और मृत्यु—इन सब अनेक विविध घटनाओंके भीतर जीवानन्द और षोडशीके देने-पावनेकी कहानी गठित हुई है। कहींपर अतिशयता नहीं है, कहानी कहींपर ढप नहीं हुई है। प्रत्येक घटनाके साथ अन्यान्य घटनाओंका और मूल कहानीका सम्बन्ध खूब स्पष्ट है।
'देना-पावना' की आलोचनामें डाक्टर श्रीकुमार बनर्जीने कहा है—'निर्मल और हैमवतीका उपाख्यान मूल कहानीके साथ गहरा मेल नहीं पा सका।" निर्मल और हैमवतीकी शान्त आनन्दमय जीवनयात्राकी बात जानकर ही षोडशीका मन भैरवी-जीवनके विरुद्ध अधिक वितृष्ण या उचाट हो गया था। उक्त उपाख्यानकी यही सार्थकता है। किन्तु उपन्यासमें यह कहानी बहुत लम्बी हो गई है, इसीसे मूल कहानीके साथ परिपूर्णरूपसे मिल नहीं सकी उसका अंग नहीं हो सकी। पर नाटकमें कहा जा सकता है कि यह त्रुटि बिलकुल नहीं है। इस आख्यानके अनावश्यक अंशको संपूर्ण रूपसे छोड़ दिया गया है, और मूल कहानीके साथ इसका सम्बन्ध खूब अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया गया है। यहाँतक कि षोडशीने हैमकी जीवन-यात्राका हाल सुनकर कहींपर अपने जीवनकी शून्यताका अनुभव किया, इसका भी निर्देश कर दिया है। इस सुनिर्दिष्ट संकेतमें अतिशयता अवश्य है किन्तु मूल कहानीके साथ मुख्य-मुख्य घटना या आख्यानका संयोग कहाँपर है, इस सन्देहके लिए जगह नहीं रहती।

षोडशी नाटकके उपसंहारमें जो नयापन है, उसका भी उल्लेख करनेकी जरूरत है। 'देना-पावना' में हम देखते हैं, षोडशी आकर जीवानन्दको हाथ पकड़कर अपने द्वारा स्थापित कुष्ठाश्रममें काम करनेके लिए ले गई। पर नाटक की समाप्ति जीवानन्दकी मृत्युमें हुई है। जीवानन्दने अपने लिए जो कर्मक्षेत्र पसंद किया था, वहाँसे उसे विदा होना पड़ा यही कहानीका परिणाम या परिणति है। षोडशीके उसका हाथ पकड़कर ले जानेसे यह बिदा

सम्पूर्ण सामंजस्यके साथ होती है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उपन्यासके इस उपसंहारमें नाटकोचित चमत्कार नहीं है। कहानीके अन्यान्य अंशोंकी तुलनामें यह अंश अपेक्षाकृत नीरस है। इसीसे नाटकमें जीवानन्दकी मृत्युका वर्णन करके कहानीकी समाप्तिको गम्भीर बनाया गया है। जीवानन्दकी मृत्यु आकस्मिक दुर्घटनाकी मार्फत आई है किन्तु यह मृत्यु आकस्मिक होने पर भी अस्वाभाविक नहीं है। जीवानन्दने अपना बहुत दिनोंका अभ्यास छोड़ दिया था और दूसरोंके लिए ऐसा परिश्रम करना शुरू कर दिया था जिसे कोई मनुष्य साधारणतः नहीं कर सकता। डाक्टरोंने उसने यह कहकर उसे डराना शुरू किया था कि ऐसा करनेसे प्राण जानेका अंदेशा है। अतएव उसकी यह मृत्यु एकदम अप्रत्याशित नहीं है और इसके वर्णनमें कहीं भी चातुर्य नहीं है, अनावश्यक उच्छ्वास नहीं है। जो अकस्मात् आया है, उसके माध्यमसे नायक-नायिकाका चरित्र सुस्पष्ट हो उठा है। जो बात षोडशीके मनमें बहुत दिनोंसे दबी थी, वह अनिवार्य वेगसे प्रकाशित हो गयी। जीवानन्दने कहा था कि मौतको जिस दिन वह रोक न सकेगा, उस दिन सबकी आँखोंके सामने ही वह चला जायगा। जो मरण सहसा आया, उसे उसने साहसके साथ स्वीकार किया। अपने कामके अपूर्ण रहने पर उसने क्षोभ नहीं प्रकट किया, षोडशीके साथ मिलनेके लिए क्षोभ नहीं किया; बल्कि सूर्यकी अंतिम किरणमें अपने अस्त हो रहे जीवनके चरम रहस्यका परिचय पा लिया।

२

शरत्चन्द्रके नाटकोंके आख्यानभागकी आलोचनाके बाद यह विचार करना होगा कि वह नाटकके टेकनिकको बनाये रख सके हैं या नहीं। नाटक दृश्य काव्य है, अतएव उसमें प्रधानता घटनाकी रहती है, वर्णनकी नहीं। नाटकका भाव कार्यके द्वारा, इंगितकी सहायतासे, प्रकट करना पड़ता है। उसमें वाक्चातुर्य या बातोंकी भरमार रहनेसे कहानीकी गति रुक जाती है। शेक्सपियरके नाटकोंमें लम्बी लम्बी वक्तृतायें हैं; किन्तु अधिकांश स्थलोंमें—खासकर हैमलेट, इयागो आदिके आत्म कथनमें—सुदीर्घ वक्तृताके साथ बाहरके कार्यकलापका खूब घनिष्ठ संयोग है। अन्यान्य स्थानोंमें लम्बी वक्तृताओंने शेक्सपियरके नाटकोंके माहात्म्यको घट

दिया है। वाणीका संयम साहित्यका एक प्रधान गुण है, और नाटकका तो वह अपरिहार्य अंग है। शरत्चन्द्र मूलतः नाटककार नहीं हैं। उनकी प्रतिभाका विकास या निखार उपन्यासमें हुआ है। जिस समय उन्होंने अपने उपन्यासोंको नाटकका रूप देनेकी चेष्टा की है, उस समय उनकी सृष्टिकी वह प्रथम प्रेरणा चली गई है। इसीसे वह सारे रहस्यको ही स्पष्ट करके दिखाना चाहते हैं। साहित्य रहस्यकी सृष्टि करता है, उसका मूल क्यों है, इस ओर संकेत करता है। व्याख्या करना टीकाकारका काम है।

शरत्चन्द्रके भेद नायक षोडशीको ही लिया जाय। षोडशीने जीवानंदके सम्पर्कमें आकर अपने इस नारीत्वका पहले पहल स्वाद पाया। इसके बाद उसके मनने भैरवीके काममें लगना नहीं चाहा। ईमके साथ वार्तालाप करके, उसकी शान्त स्वच्छ जीवनयात्रा देखकर, उसने अपने जीवनकी शून्यताका अनुभव किया। इसके पहले बहुत-से नर-नारी उसके आगे अपने जीवनके सुख-दुःखकी बातें कह चुके थे किन्तु षोडशीके हृदयकी भीतरी तह तक वे बातें प्रवेश नहीं कर सकी थीं। षोडशीने ईमके जीवनका जो साधारण थोड़ा-सा परिचय पाया, उसीसे उसका चित्त उद्वेलित हो उठा। इसका कारण यह था कि इसके पहले जीवानन्दके संस्पर्शमें आकर उसने एक नई तरहके स्पंदनका अनुभव किया है। षोडशीके जीवनमें जो गहरा परिवर्तन आया उसकी जड़में दो नवीन संस्पर्शोंका सम्मिलन था। षोडशीका एकान्तमें चिन्तन, सागर सरदारके साथ उसकी बातचीत फकीर साहबका व्यग्रताके साथ प्रश्न करना और षोडशीका संकोचके साथ उत्तर देना, इन नाना प्रकारके उपायोंसे उपन्यासमें इस अभिनव संस्पर्शकी क्रिया-प्रतिक्रियाका चित्र खींचा गया है। षोडशी अपने जीवनके जिस रहस्यको आप ही अच्छी तरह नहीं जानती थी, उसपर उपन्यास-लेखकने बहुत तेज रोशनी डाली है। पर नाटकमें इन दोनों प्रभावोंकी क्रिया-प्रतिक्रियाका चित्र नहीं है*। ईमके प्रभावसे षोडशीका जीवन किस तरह बदल गया है, इसकी स्पष्ट और निर्दोष वर्णना है। यह वर्णना सुन्दर है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु एक प्रभावको अभिव्यक्त रूप करनेकी

* उदाहरण-स्वरूप नाटकके द्वितीय अंकके प्रथम दृश्यके साथ उपन्यासके तीसरे परिच्छेदकी तुलना की जा सकती है।

प्रेममें दूसरे प्रभावको प्रायः छोड़ ही दिया गया है। चीमानन्दके स्थानमें आनेसे पोलफीके मनमें कैसा प्रसन्नकर विद्रव उपस्थित हुआ है, यह केवल नाटक पढ़कर या उसका अभिनय देखकर हम अनुमान नहीं कर सकते। हैमकी और पोलफीके स्थानको यथोचित स्थान दिया गया है; किन्तु दो-एक बातें अत्यन्त अनुपयोगी जान पड़ती हैं। जैसे—हैमके चले जानेके बाद पोलफीने स्वगत उक्ति करके कहा—' हैम तुम आज मेरा कितने ही सुगोल्ड आँखोंपर पड़ा हुआ पर्दा उठा गई बहन! " इस प्रकारकी व्याख्या नाटकमें अत्यन्त अशोभन होती है। हैम जो पोलफीकी आँखें खोल गई, वह उसके परवर्ती जीवनके कार्योंसे प्रकट होना चाहिए, उसके लिए किसी टीका-टिप्पणीका प्रयोजन नहीं है।

इस तरहकी लघु उच्छ्वासपूर्ण स्वगत उक्तियोंके अन्तर्गत अ-नाटकोचित व्याख्याके द्वारा 'निर्मला' और 'रमा' नाटक सबसे अधिक बोझिल हो गये हैं। निर्मला पिताके हाथकी लिखी चिट्ठी देखकर " बापू! बापू! " कहकर चीत्कार कर उठी है। मृत पिताकी चिट्ठी देखकर अभिभूत होना निर्मलाके लिए स्वाभाविक है—खासकर उस चिट्ठीको देखकर जिसने उसके संकटके मुख्यतम समाधानकी ओर इशारा किया है। किन्तु यह बात बहुत कुछ अस्वाभाविक और अत्यन्त अशोभन है कि वह उस चिट्ठीको देखकर दूसरे आदमीके सामने चीत्कार कर उठे। इसी कारण अभिनयमें यह चिल्ला उठना निकाल दिया गया है। रमेश भी गोपाल सरकारके मुँहसे अपने मृत पिताके महत्त्वकी बात सुनकर " बाबूजी! बाबूजी! " चिल्ला उठा है। यह भी कच्ची नाट्य-प्रतिभाका परिचय है। 'ग्रामीण समाज' में रमा और रमेशके प्रणयमें अनेक विरुद्ध शक्तियोंकी प्रेरणासे बाधा पड़ी है, किन्तु वह परिपुष्ट हुआ है। नाटकमें इस कहानीकी जटिलताका पुंखानुपुंख विश्लेषण नहीं है। उसके बदले उसमें भरा है आवेगपूर्ण उच्छ्वास। एक उदाहरण देनेसे यह पर्याप्त स्पष्ट हो जायगा। राधापुरकी डकैतीके बाद पुलिस जिस दिन खाना-तलाशी लेने रमेशके घर आई उस दिन रमा वहीं थी और पुलिसके पास रमेशको छोड़कर जानेमें उसने आपत्ति की थी। उपन्यासमें इस घटनाका वर्णन इस तरह किया गया है—

' रमेशने घरकी ओर देखकर कहा—'अब घड़ी भर भी यहाँ न ठहरो रमा। खिड़कीकी राह यहाँसे निकल जाओ। पुलिस खाना-तलाशी लिए बिना न

होगी।' रमाका चेहरा नीला पड़ गया। वह उठ खड़ी हुई बोली—'तुम्हें तो कोई खतरा नहीं है?' रमेशने कहा—'कह नहीं सकता। यह तो अभी नहीं जानता कि क्या होगा कहाँ तक होगा!' एक बार रमाके होंठ काँप उठे। एक बार उसे याद आ गया कि पुलिसमें उस दिन उसने खुद रिपोर्ट की थी। इसके बाद ही वह एकाएक रो पड़ी। बोली—'मैं नहीं जाऊँगी।' रमेश क्षणभरसे घड़ीभर अवाक् रहा। इसके बाद बोला —'छी! यहाँ ठहरना ठीक नहीं है रमा। जल्दी यहाँसे निकल जाओ।'"

इस वचनमें आवेग है—घबराहट है; पर उच्छ्वास नहीं। एक और बात ध्यान करनी होगी। रमाके इस भावके साथ उसका पश्चात्ताप और आशंका मिली हुई है। शायद रमेशकी इस विपत्तिके लिए वह आप जिम्मेदार है। वह संयत, मय च आवेगमय वचन नाटकमें इस प्रकार बदल गया है —

' रमेश—मकान घेर लिया गया है, बच रही। लेकिन तुम और घड़ी भर भी न ठहरो रमा, खिड़कीकी राह निकल जाओ। पुलिस खाना-तलाशी लिये बिना न छोड़ेगी।

रमा (उठ खड़ी होकर डरी हुई आवाजमें)—तुम्हें अपने लिए तो कोई डर नहीं है?

रमेश—कह नहीं सकता रमा। कहाँतक क्या मामला खड़ा हुआ है, सो तो अभीतक मुझे मालूम नहीं।

रमा—तुमको भी तो पुलिस गिरफ्तार कर सकती है?

रमेश—हो सकता है।

रमा—जेल भी तो कर सकती है?

रमेश—असम्भव नहीं है।

रमा (सहसा रो उठकर)—तो मैं नहीं जाऊँगी रमेश दादा!

रमेश (अवाक् भाव)—जाओगी नहीं कैसे?

रमा—तुम्हारा अपमान पुलिस करेगी, तुमको सतायेगी। मैं किसी तरह नहीं जाऊँगी रमेश दादा।

रमेश—छी छी! यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं है। तुम क्या पागल हो गई हो रमा?"

नाटकमें रमा 'रानी' हो गई है। उसके सम्बन्ध विस्तृत वर्णन किया गया है। अथ च, इन आख्याओंके साथ कहानीका किस तरह सम्मिलित था, यह प्रकट नहीं हुआ। उपन्यासकी विशेषता इस तरह लुप्त हो गई है।

विजया नाटकमें भी यह अनावश्यक व्याख्याकी भरमार है, जिसने कहानीकी गतिको रोक दिया है। रासबिहारी-विलासबिहारीके साथ पहले विजयाके मनमें कोई विरोधका भाव नहीं था और रासबिहारीकी इस तरहकी धारणाका परिचय पाया जाता है नरेन्द्रनाथके साथ विजयाका घनिष्ठ परिचय होनेके बाद, कि यह विवाह किसी तरह भी आसानीसे ही सम्पन्न और योजनानुसार न होगा। और यही स्वाभाविक है। नाटकमें हम देखते हैं कि रासबिहारी पहले दृश्यमें ही अपनी योजना खोलकर कह देते हैं। यह मुनासिब नहीं है। उनके मनका भाव धीरे धीरे प्रकट होनेसे ही दर्शकका कौतूहल सजीव रहता। प्रथम दृश्यमें रासबिहारीको रंगमंचपर लानेका कोई प्रयोजन न था। नलिनी और नरेन्द्रके बीच प्रणयका संचार हुआ है—इस सन्देहसे विजयाका मन विक्षोभसे भर गया था और इस सन्देहके दूर होनेके बाद ही वह नरेन्द्रके साथ मिलित हो सकती। सन्देह और विक्षोभकी तीव्रताने ही उसके भीतर छिपे हुए प्रेमको बाहर प्रकट होनेमें सहायता की। नाटकमें नरेन्द्रके साथ वार्तालापमें (तृतीय अंक, प्रथम दृश्य) विजयाकी आत्मदान अस्फुट रूपसे अपनेको प्रकट कर दिया है। यह इस नाटककी एक अपूर्व सृष्टि है। किन्तु नाटककार यहींपर नहीं थमे। उपन्यासमें (२५ वीं परिच्छेद) नरेन्द्रने विजयासे कहा है—"नलिनीको साथमें लेकर आप व्यंग क्यों कर रही हैं? मैं जानता हूँ, उनका मन कहीं अटका हुआ है। और मैं भी क्यों पूर्णोके और एक मन्त्रका माना जा रहा हूँ, यह बात भी ठीक ठीक समझेंगी ।" उपन्यासमें जो आभासमें प्रकट किया गया है, नाटकमें उसीकी विस्तारके साथ व्याख्या की गई है—उसके फिर अनुपस्थित ज्योतिषको लाया गया है। केवल यही नहीं नलिनीने नरेन्द्रसे प्रश्न किया है कि विजयाको देखनेके लिए उनका जी चाहता है कि नहीं? और नरेन्द्रने उत्तरमें कहा है कि "चाहता है, दिन-रात चाहता है।" यह बिना संकोचके लीलाकी अनावश्यक, अशोभन और हास्यजनक है।

उपन्यासके अंतिम परिच्छेदमें जिस परिस्थितिका वर्णन किया गया है, वह अचानक आई है। जिस परिस्थितिकी आकांक्षा पाठकने की है, किन्तु प्रत्याशा वह नहीं कर सका, उसके इस अप्रत्याशित आगमनसे पाठकका मन अनेक अनुभूतियोंसे भर जाता है। नाटकमें यह रस नष्ट हो गया है। दयालके घरमें दयाल उसकी स्त्री और नलिनीकी बातचीतसे समझा जाता है कि दयाल पूर्णरूपमें परिचित-सा होकर कुछ कर रहा है अतएव विजया और नरेन्द्रका मिलन अवश्य होनेवाला है। इस प्रकार आकस्मिकताकी अचानक परिस्थितिका माधुर्य नष्ट कर दिया गया है। इसके सिवा किसी विषयका एक बार वर्णन करके ही नाटककार नहीं थमे। जब जब उसके पुनः उल्लेखका प्रयोजन हुआ है, तब तब उसका विस्तृत वर्णन दे दिया है। इस पुनरुक्तिके दोषसे 'विजया' और 'रमा' का आर्ट अनेक अंशोंमें बिगड़ गया है।

पहलेके एक परिच्छेदमें हमने दिखाया है कि शरत्‌बाबूकी रचनाका एक प्रधान गुण भावप्रवणता है। वह वस्तुवादी (यथार्थवादी) हैं अथच भाव-प्रवण हैं। उनकी श्रेष्ठ रचनाओंमें जहाँ भावप्रवणता और यथार्थ-चित्रणका समन्वय हुआ है वहाँ वह मानव-मनकी सबसे गहरी तहमें प्रवेश कर सके हैं। किन्तु किसी-किसी उपन्यासमें भावप्रवणतासे वास्तवता-बोध नष्ट हो गया है और वे सब उपन्यास अपेक्षाकृत निकृष्ट हैं। नाटकमें भावप्रवणताका यह आतिशय्य कम नहीं हुआ बल्कि जगह-जगह पर बढ़ ही गया है। ग्रामीण समाज में विश्वेश्वरीका यथार्थ चित्र नहीं है। नाटकमें यह अवास्तवता और भी बढ़ गई है। वह केवल भावके आतिशय्यसे पूर्ण वाक्योंका समूह मात्र हैं। धरतीकी धूलके साथ उनका कोई लगाव नहीं है। केवल एक विषयपर ध्यान देनेसे ही इस नाटककी निकृष्टता प्रमाणित हो जायगी। उपन्यासमें हम देखते हैं कि रमेशके प्रति उनका स्नेह रहने पर भी, वह क्रोध और खीझसे शून्य नहीं हैं और रमेशके साथ उनके व्यवहारमें कभी कभी तीखापन भी आ गया है। यहाँ तक कि

उपन्यासमें दयालने विजयासे कहा है—"नलिनीसे मेरी अक्सर यही बात हो रही थी। वह सब कुछ जानती थी। [illegible] कथोपकथनमें इसी बातकी [illegible] विस्तृत व्याख्या है।

एक बार स्वयं मालसे ही उन्होंने रमेशको यह मालूम करा दिया है कि वह बेनीके विरुद्ध रमेशका पक्ष लेगी। इसलिए प्रस्तावा करना रमेशके लिए अत्यन्त असंगत होगा। किन्तु नाटकमें उनके विचार यह रूप पैठ गया है, वह मातृप्रवणतामें अपनेको भूल गई हैं। जब सनातन हत्यारान बनी पापात्माको उठाना शुरू किया, तब अपने एकमात्र पुत्रपर विपत्ति आनेकी आशंकासे भी वह विचलित नहीं हुईं। बल्कि व्यंग्यमिश्रित कण्ठसे उन्होंने गोविन्दसे पूछा—"गांगुली देवजी, छोटे बोलोंकि मुँहसे ऐसी आत्मश्लाघाकी बात सुनकर भी तुम खूब चुप रहे हो!" पुत्रकी विपत्तिकी सम्भावनामें माताकी यह व्यंग्योक्ति केवल कठोर ही नहीं, अस्वाभाविक भी है।

रमाका चरित्र भी नाटकमें उपन्यासकी अपेक्षा अयथार्थ हो गया है। उपन्यासमें हम देख पाते हैं कि उसने जो रमेशके विरुद्ध आचरण किया है, उसके मूलमें विविध प्रवृत्तियोंका समावेश है। बेनी जो उसकी खुशामद करता है, इससे वह सन्तुष्ट होती है। बेनी बहुत दिनोंसे जमीन-जायदादके बारेमें उसका सलाहकार है। रमेशके आत्मस्वच्छतासे अधिक साहस और दूसरोंके प्रति अवहेलनाके भावसे रमाका अपना श्रेय होनेका बोध जाग उठा है। किन्तु आचारके प्रति रमेशके अनादरसे अपने धर्ममें निष्ठा रखनेवाली विधवाके मनमें क्षोभ पैदा हो गया है। रमेशको सबक सिखानेके लिए उसने लठैत अकबरको खुद कैम्प पर धावा देनेके लिए भेजा है। समाजके कलंकसे नहीं डरी है। फिर यह प्रश्न भी उसके मनमें उठा है कि जिस समाजके भयसे वह एक निन्दनीय काम कर बैठी है, वह समाज क्यों है?—इस तरहकी विचित्र और विरुद्ध प्रवृत्तियोंके आने-जानेसे रमाका चरित्र सत्य यथार्थ हो उठा है। नाटकमें उसे मातृप्रवण रमणीके रूपमें पेश किया गया है। उसमें वह चरित्रकी विचित्रता नहीं है, उसमें वह तेज नहीं है। उसने पुलिसमें रिपोर्ट नहीं की, उसने लठैत अकबरको प्रस्तुत नहीं किया। जान पड़ता है, केवल रमेशके भयसे ही वह निवृत्त हुई है *। उसकी आँसू बहानेकी निपुणता और मानसिक दुर्बलताको ही प्रधानता दी गई है।

---

* इसी कारण तृतीय अंकके दूसरे दृश्यमें अकबरको प्रधानता दी गई है, किन्तु अकबरकी मात्रा यथेष्ट तब नहीं है। (पल्लीसमाज उपन्यासका १२ वाँ परिच्छेद देखिए।)

३

पूर्ववर्ती अध्याय शरत्चन्द्रके नाटकोंकी मूलकथाका उल्लेख किया गया है। शरत् बाबूकी प्रतिभाका विकास उपन्यासमें हुआ है, अतएव उनकी नाटक रचना भी निर्दोष नहीं हुई इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं है। किन्तु कहीं कहीं नाटकमें भी उनकी प्रतिभा चमक गई है। उनके नाटकोंमें षोडशी सब श्रेष्ठ है। इस नाटकके अंतिम दृश्यके माधुर्यका उल्लेख पहले ही हो चुका है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक उल्लेखयोग्य गुण इसमें हैं। पहले तो इसका गठन-कौशल निर्दोष है। उपन्यासमें जो सब अस्वाभाविक उपाख्यान थे, जिन सब कहानियोंके साथ मूल-कहानीका घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है उन्हें छोड़ दिया गया है, अथवा उन्हें छोटा करके मूल कहानीके साथ उनका सम्पर्क सुस्पष्ट कर दिया गया है। इस नाटकमें विपिन माइतीको देख नहीं पाते, सागर सरदार और फकीर साहबने पहलेकी अपेक्षा कम स्थान घेरा है। निर्मल और हैमवतीकी कहानीका अवान्तर अंश निकाल दिया गया है और नाटकमें उसकी यथार्थता अधिक स्पष्ट होकर निखर आई है। प्रथम दृश्यमें जो कहानी शुरू हुई है, वह अप्रतिहत वेगसे समाप्तिकी ओर आगे बढ़ी है।

परिवर्तन और परिवर्तनके बाद कहानीने नाटकमें जो रूप पाया है वह अत्यन्त चित्ताकर्षक है। दो-एक उदाहरण देनेसे ही नाटककी विशेषता स्पष्ट हो जायगी। षोडशीके साथ बीजगाँवके जमींदारका जो संघर्ष हुआ है, उसका आरम्भ हैमकी पूजाके बीच हुआ है और वह क्रमागतरूपसे उस दृश्यमें अन्तिम सीमाको पहुँच गया है जिसमें षोडशीने जमींदारको मन दिखाया है। उपन्यासमें वह संघर्ष अनेक बिखरी हुई घटनाओं द्वारा प्रकाशित हुआ है। इससे उपन्यासकी महिमा क्षुण्ण हुई है ऐसा तो मैं नहीं कह सकता किन्तु यह बिखरापन नाटकके लिए उचित नहीं है। नाटकमें सारा मामला एक दृश्य (प्रथम अंक चतुर्थ दृश्य)में घनीभूत हुआ है और वहाँ भी घटनाओंकी या पात्रोंकी कोई अनावश्यक भीड़ नहीं है। सीढ़ी-सीढ़ी करके संघर्ष चरम स्थितिको पहुँचा है और उसके भीतरसे पात्र-पात्रियोंका चरित्र विकसित हुआ है। प्रथम अंकके प्रथम दृश्यमें भी ऐसा ही नाटकोचित परिवर्तन और केन्द्रीकरण है।

प्रफुल्ल और जीवानन्दके संक्षिप्त कथोपकथनमें दोनोंके चरित्रकी झलक पाई जाती है, और उसके बाद एककौड़ी और जीवानन्दके बीच षोडशीके बारेमें आलोचना सम्पूर्ण होते ही षोडशी उपस्थित होती है। षोडशीको किस तरह लाया गया यह बताना उपन्यासमें आवश्यक नहीं है किन्तु नाटकमें उसका वर्णन देनेसे मूल-कहानीकी गतिमें बाधा पड़ती। इस प्रकारके जो जो परिवर्तन नाटकमें किये गये हैं उनसे कहानीमें अपेक्षाकृत वेग आया है वह नाटकोचित हो गया है, और जीवानन्दका चरित्र अधिक विकसित हुआ है। पहले ही लिखा जा चुका है कि नाटकमें षोडशीका चरित्र उपन्यासकी अपेक्षा निष्प्रभ और अस्पष्ट रह गया है, और नाटककी यही मौलिक त्रुटि है।

'विजया' नाटकका अपना खास माधुर्य प्रायः कुछ भी नहीं है। केवल उपन्यासमें नरेन्द्रके सम्बन्धमें दयालकी ईर्ष्याका जो इंगित है वह नाटकमें अधिक स्पष्ट हो गया है। 'रमा' नाटकमें सबसे अधिक उल्लेखके योग्य वेणीपर प्रहार होनेका दृश्य है। उसमें गोविन्द गांगुली और धर्मदासके चरित्रका एक पहलू अति निपुण भावसे चित्रित हुआ है।

१०—शरत् साहित्यमें नीति

जब शरत्चन्द्रके उपन्यास निकलने शुरू हुए, तब उनकी दुर्नीतिसे मध्यमवर्ग सिहर उठा। उसके अनेक भले आदमियोंने अपने घरकी स्त्रियोंको इन उपन्यासोंके पढ़नेसे रोक दिया। बंगला-साहित्यके स्वास्थ्यको बचाये रखनेके लिए न जाने कितने आदमी परिश्रम करने लगा। शरत्चन्द्रकी रचनाओंकी अश्लीलताके प्रति वह वितृष्णा या अरुचि अब भी बिल्कुल लुप्त नहीं हो गई। लेकिन असलमें शरत्चन्द्र एक संभोग-विरोधी नीतिज्ञ हैं, जिसे अंगरेजोंमें Puritan कहते हैं। उनके अधिकांश नायकों और नायिकाओंने सभी समय अपनेको यौन-मिलनसे दूर रखा है। उन्होंने स्वयं ही कहा है —' हम लोगोंके समाजमें इस चीजको लोग छिपाये रखना चाहते हैं इसीसे जान पड़ता है, बहुत दिनोंके संस्कारसे यूरोपके साहित्यकी नाईं इसके प्रकाश्य (Demonstration प्रदर्शन) में वे अभ्यस्त हैं।" बात बहुत कुछ सच है। हमारे संस्कारकी गहराई और उसके दुर्दम्य बन्धनकी कल्पना वह बहुत कुछ अनुभव कर चुके थे। राजलक्ष्मी पवित्र और हिन्दू पंडितोंने जिन वेद-मन्त्रोंका उच्चारण किया था, वे भूत झाड़नेवाले ओझाके मन्त्रकी तरह ही अर्थहीन थे। ' किन्तु तब भी तो इनका कोई मन्त्र विफल नहीं हुआ। इनका दिया हुआ विवाहका बन्धन आज भी वैसा ही दृढ़ है, वैसा ही न टूटनेवाला है।" हिन्दू-रमणीका पतिके प्रति प्रीति कितनी घनी कितनी गहरी होती है, इसकी खबर सौदामिनीको तब हुई, जब उसने पतिको छोड़ दिया। किसी दूसरे परिच्छेदमें मैंने दिखाया है कि सावित्री और राजलक्ष्मीके मनमें भिन्न दो शक्तियोंका निरन्तर संघर्ष चलता है, उनमें एक था हिन्दू स्त्रीका जन्मसे ही प्राप्त संस्कार। इसी कारण वे मन और हृदयसे अपने प्रेमास्पदको ग्रहण नहीं कर सकीं। राजलक्ष्मीके सम्बन्धमें

श्रीकान्तमें कहा है—"उसका वेगवान् हृदय और उसकी धर्म-बुद्धि, ये दोनों प्रतिकूलगामी प्रचण्ड प्रवाह किस प्रकार किस समयमें मिलकर उसके इस दुःखके जीवनमें तीर्थकी तरह सुपवित्र हो उठेंगे, इसका कोई कूल-किनारा नहीं देख सकता।" श्रीकान्तके लिए भी यही बात लागू है। वह राजलक्ष्मीके लिए सब कुछ छोड़ सकता है, किन्तु अपने सम्मान और प्रतिष्ठाको नहीं छोड़ सकता। केवल यही नहीं श्रीकान्तने सबसे अधिक श्रद्धा और आवेगके साथ अपनी अभया दीदीके सम्बन्धमें लिखा है। अथ च, अभया दीदीने समाजके विरुद्ध विद्रोह तो किया ही नहीं, बल्कि समाजने उन्हें जो पति दिया था उसी पतिको पकड़े, तनिक भी मुँह मैला किये, प्राण हरण कर वह जन्मभर सती धर्मका पालन करती रही। वह जो समाजसे निकल गई थीं, तो समाजके आदर्शको अक्षुण्ण रखनेके लिए ही। उन्हें लोग कलंकिनी कहकर बदनाम करते थे, पर वास्तवमें वह हिन्दू-रमणी-शिरोमणि थी। कमल इस कहानीकी युवती होती तो प्रश्न करती कि शारदी जैसे वर्गको ग्रहण करनेमें सत्यका महत्त्व क्या है? त्याग ही तो केवल एकमात्र गौरवकी सामग्री नहीं है। अभया दीदीने जो समाजको छोड़ा, कुलको छोड़ा, नेकनामीकी परवाह नहीं की—उसे भी छोड़ दिया, उसके बदलेमें उन्होंने पाया क्या? उनके इस त्यागने उनके जीवनमें किस सुखकी आमदनी की? शारदीको उन्होंने ब्याहका मन्त्र पढ़कर अवश्य पाया था, किन्तु उसने क्या अपने पतित चरित्रके कारण अपनेको समग्र अधिकारसे वंचित नहीं कर डाला? एक मन्त्र पढ़नेसे केवल संस्कार क्या सत्यसे भी बड़ा हो जायगा? शारदीका संग, संयम—इसमें आत्मघातकी उपमाकी, गौरवकी क्या चीज है? इस त्यागकी महिमा कहाँ है? किन्तु शरत्चन्द्रने इस तरहका एक भी प्रश्न नहीं उठाया। अभया दीदीके जीवनकी सबसे महत्त्व ही उन्होंने देखा है। उस क्षेत्रमें जितनी विडम्बना थी, उस ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। जान पड़ता है, इसका एक कारण यह है कि शरत्चन्द्र मूलतः संन्यास-विरोधी हैं—उनकी दृष्टिमें मोक्ष और वैराग्यकी अपेक्षा त्यागका मूल्य अधिक है।

शरत्चन्द्रके अंकित चरित्रोंमें केवल दो आदमियोंने मोक्षका ग्रहण किया और उनका जीवन सबसे अधिक उज्ज्वल (निष्फल) हुआ। किरणमयी न धर्मको मानती थी, न शास्त्रको, स्वयं भगवान्को भी नहीं मानती थी। उसकी दृष्टिमें

किसी आचार, किसी संस्कारका मूल्य न था। उसकी नजरमें परलोकका भी कोई मूल्य नहीं। इसीसे वह केवल इस लोकके सुखको, केवल देहके आनन्दको मानती थी, इसीको सब कुछ समझती थी। उसके प्रेम-व्यापारमें भी इसकी छाप है। राजलक्ष्मी श्रीकान्तको अगर नहीं पाती तो भी उसका प्यार वैसा ही तीव्र रहता, उसका मन वैसा ही निष्कलंक उज्ज्वल रहता। चरित्रहीनकी सरोजिनीके प्रति सावित्रीके मनमें तनिक भी ईर्ष्या नहीं थी, यह बात जोर करके नहीं कही जा सकती। किन्तु उसमें कण भर भी विद्वेष नहीं था। पर उपेन्द्रने जैसे ही किरणमयीके प्रेमका प्रत्याख्यान किया उसे स्वीकार नहीं किया, वैसे ही उसकी प्रतिहिंसा-वृत्ति जाग उठी और उसने जिस उपायसे बदला लिया, वह जैसा नीच, वैसा ही वीभत्स भी है। उसके इस बदलेकी जड़में उसका नीति और धर्मके प्रति एकान्त विद्वेष ही है। वह प्रेमका मतलब यौन-मिलन ही समझती थी इसीसे उसने पुत्रस्थानीय बालकके मनमें काम-वृत्तिको जगाकर उपेन्द्रसे बदला लिया। किन्तु इस प्रेम-व्यवस्था और बदलेकी भावनामें प्रशंसा करनेलायक कुछ भी नहीं है। इस आगमें दिवाकर भस्मीभूत हो सकता है किन्तु किरणमयीको सुख नहीं मिला। इन दोनोंके अराकान-प्रवासके आखिरी दिनोंमें हम देखते हैं कि किरणमयीने दिवाकरके मनमें जो सम्भोगकी आकांक्षा जगा दी है, वही उसके लिए सबसे बड़ा बोझ बन गई है।

स्त्रियोंमें जिस तरह किरणमयीने केवल दैहिक मिलन चाहा उसी तरह पुरुषोंमें यह चीज सुरेशने चाही। किरणमयीका पाण्डित्य असाधारण है वह युक्ति-तर्कसे ईश्वरके अस्तित्वका खण्डन करती थी। सुरेशके पास उसकी जैसी दार्शनिक विद्या नहीं थी। वह अपने स्वभाव संस्कारके बलसे ही पाप-पुण्य, आत्मा आदिको नहीं मानता था। उसने आप ही बार-बार कहा है कि वह नास्तिक है, धर्म-हीन है, पाप-पुण्यकी लोककी आचारकी परवाह नहीं करता। उसकी प्रवृत्ति उच्छृंखल है और उसी प्रवृत्ति वासनासे उसने एक ही समयमें सबसे महत् और सबसे नीच काम किया है। अपने जीवनको संकटमें डालकर उसने महिमके जीवनकी रक्षा की है और फिर महिमकी गैरहाजिरीमें उसीकी भावी पत्नी और ससुरको उसीसे फिरंट—असन्तुष्ट करनेकी चेष्टा भी। अचलाको बीमार मित्रकी सेवाके बहाने बुलाकर उसने विश्वासघातकी हद कर दी है। इस तरुणी रमणीका शरीर ही उसकी आकांक्षाकी एकमात्र वस्तु था — उसकी यही

धारणा थी कि वह देह पा जानेसे ही उसका जीवन सफल हो जायगा। किन्तु अन्तको उसने समझ पाया कि केवल देहको पानेसे कोई लाभ नहीं है। वह जिस अचलाको पानेके लिए इतना व्यस्त हो पड़ा था, पर अचला ही अन्तको उसके लिए दुर्वह भार हो गई। पहले वह उसे पानेके लिए उन्मत्त हो उठा था अब इसके लिए व्यस्त हुआ कि किस तरह उससे छुटकारा देगा क्योंकि अब उसका भार कैसे उससे उठाया नहीं जाता था। शरत्‌बाबूने सुरेशकी भूलका खूब स्पष्ट वर्णन किया है। 'कुछ दिनसे ही उसे अपनी भूल समझमें आ रही थी, किन्तु यह भूलुण्ठित दशरथा यह वेदना—इसके सम्मिलित आघातने जैसे उसकी आँखोंपरके पर्देको पल भरमें ही हटा दिया। उसे जान पड़ा, प्रभातके सूर्यकी किरणसे जो ओसकी बूँद पत्तीके ऊपर झलकती रहती है, उसके उस अद्भुत सौन्दर्यको जो लोभी हाथमें लेकर उपभोग करना चाहता है, ठीक उसीकी सी भूल उसने भी की है। वह नास्तिक है, वह आत्माको नहीं मानता। झरनेके झरनेमें जो असीम सौन्दर्य निरन्तर झरता है, वह असीम उसके निकट मिथ्या है इसीसे स्थूलपर ही सारी दृष्टि एकाग्र करके उसने निःसंशय समझा था कि इस सुन्दर देहपर अधिकार करनेमें ही उसका पाना आप ही-आप सम्पूर्ण हो जायगा। किन्तु आज उसका मूल्य इस प्रकार घड़ी भरमें ही चूर-चूर हो गया। प्राप्तिकी इस आशाको पात्रसे विच्युत करके पाना कितना बड़ा धोखा, कितनी बड़ी भ्रान्ति है—इस तथ्यने आज उसके अन्तस्तलमें जाकर चोट पहुँचाई। अचलाकी ओर ताककर वह बस इसी सत्यको देखने लगा कि ओसकी बूँद मुट्ठीमें आकर भी किस तरह एक बूँद पानीकी तरह देखते-देखते सूख जाती है। हाय रे! परम-आत्मभाव ही जिसको भगवानकी दी हुई वस्तु है, उसे वह देहकी मरुभूमिमें रखकर कैसे बचाये रख सकता?"

शरत्‌बाबूने एक बार कहा था कि किसी प्रकारके शारीरिक मिलनकी बात उन्होंने नहीं लिखी। 'भारती'* में उन्होंने लिखा था—"आलिंगन तो दूर रहा, मैं अपनी पुस्तकोंमें कहीं चुम्बन भी नहीं दे सका।" बात बहुत सच है लेकिन इसमें थोड़ी-सी भूल भी है। आराकान-यात्राके समय जहाजमें किरणमयी दिवाकरके होठ चूमकर खिलखिलाकर हँस उठी थी। सुरेश

* भारती एक समय बंगालकी मासिक पत्रिका थी जो कलकत्तासे प्रकाशित होती थी।

अचलाका केवल चुम्बन करके ही शान्त नहीं हुआ, एक दुर्योग (आँधी-पानी) की रातके दुरतिक्रम्य अभिशापसे उसने उसे हमेशाके लिए असीम अन्धकारमें डुबा दिया है। किन्तु दोनों जगह देखा गया है कि केवल शारीरिक मिलन कितना पीड़ा देनेवाला, कितना बीभत्स है। दिवाकर किरणमयीके चुम्बनसे सिहर उठा था; सुरेशके चुम्बन करनेपर अचलाके दोनों होठ इस तरह जल उठे थे, जैसे बिच्छूने डंक मार दिया हो। जिस अँधेरी रातमें राम बाबूकी सुरमा (अचला) इच्छाके बहुत गहरे पंकमें डूब गई उसके दूसरे दिन सुरेशने देखा कि सुरमाका मुख मुर्देका-सा सफेद पड़ गया है दोनों आँखोंके कोनोंमें गहरी स्याही दौड़ गई है और जैसे पत्थरके ऊपर जैसे झरनेकी धारा उतर आती है ठीक वैसे ही दोनों आँखोंके कोनासे निकलकर आँसू बह रहे हैं। दूसरी ओरसे हृदयकी सहमति न रहनेपर यौन मिलनका आकर्षण कितना जघन्य हो सकता है, यही यहाँपर प्रमाणित हुआ है।

कमलको छोड़कर शरत्-साहित्यमें और एक नारीने अनमन करनेसे हिन्दू नारीके सतीत्व धर्मको अपमान करके समाजसे विद्रोह किया है। वह है अभया। श्रीकान्तसे उसने कहा था — "मुझसे जिन्होंने ब्याह किया था उनके पास जाने बिना मरे लिए कोई उपाय नहीं था, और जानेपर भी कोई उपाय नहीं हुआ। इस समय उनकी स्त्री, उनके बाल-बच्चे उनका प्यार, कुछ भी अब मेरा नहीं है। तो भी उन्हींके पास उनकी एक गणिका (रखैल) की तरह पड़े रहनेमें ही क्या मेरा जीवन फूल-फलकर खिल उठकर सार्थक होता श्रीकान्त बाबू! और इस निष्फलताके दुःखको ही जीवनभर ढोते फिरना ही क्या मेरे नारी-जन्मकी सबसे बड़ी साधना है! रोहिणी बाबूको भी आप देख गये हैं; उनका प्यार भी तो आपसे छिपा नहीं है! ऐसे आदमीके सारे जीवनको पंगु बनाकर मैं अब सती नाम खरीदना नहीं चाहती श्रीकान्त बाबू।" किन्तु अभयाके चरित्रमें भी दुर्दम ममताका संकोच फूट उठा है। अभया सम्पूर्ण अन्तःकरणसे रोहिणी बाबूको स्वीकार नहीं कर सकी। उसने पहले पतिकी गिरिस्ती करनेकी चेष्टा की थी, और वह पति अगर कण भर भी दया या प्रेम दिखाता, तो रोहिणी बाबूके प्रेमकी मर्यादा कहाँ रहती! अतएव रोहिणी बाबूके साथ जो उसका मिलन है उसकी जड़ व्यथामें है। वह परभृत (पराया पाला हुआ) है, वह अपनी शक्तिसे अपनेको शक्तिशाली नहीं कर सका।

२

शरत्चन्द्र एक अद्भुत प्रकारके पूरिटन (Puritan = पवित्रतावादी) हैं। भोगविरोधी धर्मनिष्ठ पूरिटन जैसे मानव-मनकी एक वृत्तिको स्वीकार करते हैं—वह है उसकी बुद्धि। जो केवल इन्द्रिय-ग्राह्य है जो केवल सुन्दर है उसके प्रति उन्हें असाधारण विद्वेष होता है। इसीसे हृदयके आवेग और उच्छ्वासके प्रति भी उनकी अनन्त वितृष्णा (नफरत) है। वे सब कठोर बुद्धिसे विचार करते हैं। मगर शरत्चन्द्रकी प्रधान विशेषता यह है कि उन्होंने बुद्धिसे किसीका विचार नहीं किया, सहानुभूतिसे सभीको समझनेकी चेष्टा की है। उन्होंने अपनी विस्तीर्ण सहानुभूतिसे मानव-जीवनके सारे सुख दुःख और आघात-संघात की वेदनाको समझनेकी उसकी उपलब्धिकी चेष्टा की है। इसी लिए, यद्यपि वह संभोग विरोधी हैं यद्यपि रिरंसा (संभोग) की वृत्तिको उन्होंने कभी भी शिरोधार्य नहीं किया तथापि मानव-मनकी निरन्तर मिलन-कामना और उसके आवेग एवं अनुभूतिके माधुर्यको वह अपनी रचनाओंमें ले आये हैं।

इस विषयमें बर्नार्ड शॉके साथ उनका भेद ध्यान देने योग्य है। बर्नार्ड शॉको भी कोई कोई Puritan कहते हैं। मगर भोगसे वितृष्णा इतनी तीव्र है कि वह मानव-हृदयकी प्रेमकी चाहको समझ नहीं सके। उन्होंने प्रेमके गौरवको स्वीकार नहीं किया; उन्होंने हृदयके उच्छ्वासपर व्यंग-विद्रूप किया है। हम जानते हैं कि प्रेमिकाके लिए प्राण दिये जाते हैं; किन्तु शॉके नायकने उस रमणीके लिए प्राण दिये हैं, जिसे वह प्यार नहीं करता। किन्तु रिरंसा (रमण-स्पृहा) के विरोधी होकर भी शरत्चन्द्रने प्रेमके गौरवकी घोषणा की है। श्रीकान्तने दुःखके साथ कहा था कि समाजके लोगोंने उसकी हारको ही बड़ा करके देखा; किन्तु उसकी अम्लान कान्त विजय-माला किसीको भी न देख सकी। प्रेमकी यह अ-म्लान दीप्ति ही शरत्साहित्यमें जगमगा रही है। सुरेश और किरणमयीके जीवनमें यथार्थ माधुर्य बहुत कम था। किन्तु उनके जीवनको भी शरत्चन्द्रने समवेदनाके साथ समझनेकी चेष्टा की है। उन्होंने दिखाया है कि उनका अपराध केवल इतना है कि उन्होंने समझनेमें भूल की। यह पाप नहीं है। उन्होंने पापी कहकर उनसे घृणा नहीं की; भ्रान्त कहकर उनपर

करता दिखाई है। मनुष्यके अन्तरतम अन्तस्तलमें जिस आकांक्षाने घोंसला बनाया है, उसे अस्वीकार करनेकी चेष्टा मूढ़ता है। शरत्‌चन्द्रकी रचनामें असहिष्णुताकी यह नींवपर है, और इसीके लिए कठोर नीति-वादी प्यूरिटन लोग उनकी रचनासे सिहर उठे हैं यद्यपि वह स्वयं एक Puritan ही हैं। मनुष्यकी भ्रान्ति और दुर्बलताके लिए उनके हृदयमें अक्षय वेदना है।

अन्नदाने रामचरण बाबूकी धर्मपरायणता और स्नेहशीलताका यथेष्ट परिचय पाया था और इसकी भी यथेष्ट अभिज्ञता उसे हुई थी कि यह धर्मपरायणता उनको कितना निर्मम और कठोर बना सकती है। रामचरण बाबूके व्यवहारपर महिमने भी प्रश्न किया है—"जिस धर्मने स्नेहकी मर्यादा नहीं रखने दी, असहाय आर्त नारीको मौतके मुँहमें ठेल देनेमें थोड़ी भी दुविधा नहीं आने दी, जिस धर्मने आधार पाकर इतने बड़े स्नेहशील हृदयको भी ऐसा पंगुल, प्रतिहिंसाकी भावनासे इतना निष्ठुर बना दिया, वह काहेका धर्म है? इस धर्मको जिसने स्वीकार किया है वह किस वस्तुको पकड़े हुए है?" और भी एक बात आप ही आप हमारे मनमें आती है। वह यह कि किसने अधिक भूल की थी—सुरेशने या महिमने? जिसने अधिक गड़बड़ पैदा की, सहार बना दिया—सुरेशकी उच्छृंखल प्रवृत्तिने या महिमकी निश्चल चुप्पीने? ब्रह्मचर्यमें गौरव अवश्य है, किन्तु उसमें एक वंचना भी है। पोसाईंने हैमके दाम्पत्य जीवनके माधुर्यको देखकर यह बात समझी थी कि बच्चानीको निपीड़ित करके, प्रकृतिका उत्पीड़न करके उसने जो धर्मचर्चा की है, वह अत्याचार-मात्र (जोरजबरदस्ती) था। और इसीलिए बज्रानन्दको घर-गिरस्तीमें बाँध रखनेके लिए राजलक्ष्मी इतनी व्यग्र और उद्विग्न हुई थी और इसीके लिए अजितको हरेन्द्रके ब्रह्मचर्य-आश्रमसे अलग करनेके लिए कमल इतनी व्यस्त देख पड़ती है। वास्तवमें, हरेन्द्रके आश्रममें नित्य ही दारिद्र्यकी चर्चा है, वह पापसे अछूता है; किन्तु वहाँ परिपूर्ण मनुष्य तैयार होता है—ऐसा नहीं जान पड़ता। आश्रमवासियोंकी सारी चेष्टा जैसे व्यथासे भरी है। वे जोर करके जोर कामना नहीं करते, वे सारी शक्तिसे हृदयकी आकांक्षाओं, उमंगोंको रोकते मर हैं। इस आश्रमके स्थापनमें जो लोग आये हैं, उनमें राजेन्द्र तथा महामानव है। किन्तु इस विप्लवी धर्मके साथ आश्रमका कोई निविड़ आकर्षण नहीं है। वह इसके आदर्शपर विश्वास नहीं करता और आश्रमके कर्ता-धर्ता लोगोंने साधारण कारणसे

ही उसे छोड़ दिया है। ब्रह्मचर्यकी यह शून्यता देखकर ही कमलने कहा था—"इन सब बच्चोंको लेकर प्रचण्ड आडम्बरके साथ इस निष्फल ब्रह्मचर्य-चर्चामें लाभ क्या है हरेन बाबू? ये ही सब बालक आपके ब्रह्मचारी हैं? हरेन बाबू, आपके हृदय है, इनको अगर मनुष्य बनाना चाहते हैं तो साधारण सहज राहपर चलाकर बनाइए। मिथ्या कुसंस्कारसे दुःखका बोझ ढोसना न तैयार कीजिएगा। ब्रह्मचर्य सब नहीं है, इस अवस्थामें अतिसंयमको भी सब समझनेकी भूल न कीजिएगा। यह भी उतना ही बड़ा मिथ्या है।" संन्यासी ब्रह्मानन्द भी यही अनुभव करता था। उसने संसारको घृणा करके नहीं छोड़ा है; उसे और अपना कर पानेके लिए छोड़ा है। इसीसे बंगाल देशकी हजारों मा-बहनोंके लिए उसके मनमें अनन्त वेदना है, अगाध स्नेह है। संसारके रूप, रस और गन्धसे उसका मन भरपूर है। सबको और अधिक प्यार कर सकनेके लिए ही उसने एक परिवारके छोटे घेरेकी ममता छोड़ दी है।

ब्रह्मानन्दके जीवनमें जो द्वन्द्व भाव हम देख पाते हैं, वह सब शरत्चन्द्रके जीवनमें भी मौजूद है। वह संन्यासके विरोधी हैं किन्तु परिपूर्ण संन्यासके प्रति भी उनकी सहानुभूति नहीं है। यह द्वन्द्व उनके साहित्यकी श्रेष्ठ समस्या है और यही उनकी प्रधान दुर्बलता भी। रोहिणीके साथ बंकिमचन्द्रने अन्याय किया है इसकी चर्चा उन्होंने बार बार की है और लिखा भी है।* कलकत्ता-विश्व-विद्यालयकी बी. ए. की परीक्षामें शरत्बाबूने एक प्रश्न यह दिया था कि "नारीत्वके दृष्टिकोणसे रोहिणीका जीवन जो व्यर्थ हो गया सो किस अपराधसे और किसके अपराधसे? सांसारिक दृष्टिकोणसे भ्रमरका जीवन जो व्यर्थ हो गया, वह किस अपराधसे और किसके अपराधसे?" रोहिणी और भ्रमरका जीवन किसके अपराधसे व्यर्थ हुआ यह मैं नहीं जानता किन्तु शरत्चन्द्रके उपन्यासोंकी नारियोंका जीवन भी नारीत्वके दृष्टिकोणसे और सांसारिक दृष्टिकोणसे दोनों दृष्टियोंसे व्यर्थ हो गया है। मृणालके अन्यान्य सतीत्वमूलक चित्र उन्होंने ऐसा

---

* शरत्चन्द्रने इस प्रसंगमें कहा है कि बंकिमके उपन्यासोंका एक कारण यह है कि उनकी शिक्षा और संस्कार विशुद्ध शिक्षा और संस्कार नहीं हैं। भ्रमरके चरित्रकी सहिष्णुता और दुश्चिन्ता या दोहरे भावको मन पढ़के वास्तविक हो चुके हैं। उसके साथ किसी धर्म या संस्कारका सम्बन्ध है, ऐसा तो नहीं जान पड़ता। उपन्यासमें इस विषयका

गौरव है कि उसमें कोई त्रुटि नहीं रह गई है। स्वयं केदार बाबू भी उसके आचरणसे मुग्ध हो गये हैं, पर-स्त्री-लोलुप सुरेश उसके आगे नतशिर हुआ है। किन्तु इस 'सतीधर्म' में क्या केवल देहके आश्रित रहकर ही अपनी रक्षा नहीं की है? अचलाको छोड़ कर उसने क्या इस-जैसी जिन्दगी बिताई है? उसके भीतर एक गहरी व्यथाका करुण सुर है। साधारण सामाजिक कारणसे उसके प्रेमास्पद महिमने उससे ब्याह नहीं किया, और वृद्ध पति और उससे भी अधिक बूढ़ी सासकी सेवा करके ही उसे अपना जीवन बिताना पड़ा। इस सबके भीतर चरम व्यर्थता भरी पड़ी है, और उसके सारे आचरण और बातोंमें इस व्यर्थताके विरुद्ध विद्रोहका सुर छिपा हुआ है।

पार्वतीने बड़े घरकी मालकिन होकर उसीका मन पाया था—सभी उसे मानते और चाहते थे; पर उसका अपना मन देवदासके पास पड़ा रहा। वह धर्म-कर्म करती थी साधु-संन्यासियोंकी सेवा करके, अन्धों-अपाहिजोंकी सेवा करके समय काटती थी; किन्तु इस सबके भीतर एक हर दर्दोंकी मर्मवेदना थी। उसे असती नहीं कहा जा सकता, किन्तु उसके सतीत्वका ही क्या मूल्य है? उसके भोक्ता (पति) को क्या मिला?

समाजके तथाकथित आदर्शके विरुद्ध जिन्होंने विद्रोहकी घोषणा की है—जैसे बर्नार्ड शॉ, बर्ट्रेंड रसल—उनमें क्रियाहीन नियमका परित्याग पाया जाता है। वे कहते हैं, देहके अन्यान्य आवश्यकोंकी तरह यौन-मिलनमें भी किसकी स्फूर्ति होती है। इसे घृणा करनेसे कोई लाभ नहीं है, इसे अस्वीकार करनेका उपाय नहीं है। इसे तो बस मात्र ग्रहण करना होगा। मन्त्र पढ़नेसे ही यह पवित्र न होगा और मन्त्र न पढ़नेपर भी यह निन्दित न होगा। यह स्वाभाविक वृत्ति है; इसकी अतृप्ति या आचरणमें पाप भी नहीं है, पुण्य भी नहीं है। यह पार्थिव चीज है, स्वर्गकी सुषमा नहीं है, पुण्य भी नहीं है। Isadora Duncan वर्तमान युगकी एक श्रेष्ठ नर्तकी थी और उसकी लिखी अपनी जीवनी इस युगकी एक

रोके न करना ही अच्छा था। किन्तु विवाह समस्याका कोई समाधान ही अथवा न? भर सकी यह किसी भी समयको किसी भी जातिके सामने उपस्थित हो सकती थी। नर-नारीके मिलनपर जो कोई प्रश्न है उसे किसी एक विशेष धर्म अथवा सामाजिक सम्प्रदायके द्वारा सीमाबद्ध करके देखना उसके प्रति अविचार करना होगा।

बहुत श्रेष्ठप्रिय पुस्तक है। उसने आत्मचरितमें लिखा है—" यह बात सुनकर शायद अनेक लोग सिहर उठेंगे किन्तु उनके मनका भाव मैं समझ नहीं पाती। तुम चाहे जितने धार्मिक क्यों न हो, देह धारणके कारण ही जब तुमको थोड़ा-सा क्लेश सहना पड़ता है तब सुयोग मिलनेपर उसी देहसे तुम परम आनन्द और परम परितृप्ति पानेकी चेष्टा क्यों न करोगे? जो आदमी दिनभर कठिन दिमागी परिश्रममें लगा रहता है—जो कठिन प्रश्नों और दुःस्वप्नोंमें उलझ कर कभी कभी पीड़ित होता है वह क्यों न, इन (मेरे) सुकुमार बाहुओंके आलिंगन-पाशमें बँधकर कुछ क्षणोंके लिए आनन्द पाके सब कष्ट भूलकर सौन्दर्यका उपभोग करे? मुझे विश्वास है कि जिनको मैंने आनन्द दिया है, वे भी उसी तरह उसे याद रखेंगे जिस तरह मैं उन्हें स्मरण करती हूँ।" नीतिसे विद्रोह करनेवालोंकी यही सहज सरल नीति है। शरत्चन्द्र दोनों धाराओंके मँझधारमें पड़ गये हैं। उनके उपन्यासोंके नर-नारी जिसका विरुद्ध विद्रोह करते हैं उसीको फिर वे मान लेते हैं। जो उनके जीवनकी श्रेष्ठ सम्पत्ति है, उसे भी वे दैनिक सम्पत्ति नहीं बना ले सके। उनके जीवनमें प्रेमका विजय-गौरवकी घोषणा हुई है, और फिर उसकी व्यर्थताका सुर भी बज उठा है। उन्होंने प्रेमका स्वीकार किया है, किन्तु उसकी परिसमाप्तिको ग्रहण करनेमें वे समर्थ नहीं हुए।

कमलको बाद देनेसे शरत्-साहित्यमें नीतिकी आलोचना असम्पूर्ण ही रहेगी। कमलकी माता हिन्दू विधवा है जिसके रूप था, किन्तु रुचि नहीं थी। उसके पिता चाय-बागानके गोरे साहब थे। कमलका पहला ब्याह एक आसामके क्रिश्चियनके साथ हुआ बादको दूसरा ब्याह शैवमतसे शिवनाथके साथ हुआ। इसके बाद था अजित मिले। इन मिलनोंको वह किसी वैवाहिक अनुष्ठानसे या रस्म बनानेको प्रस्तुत नहीं हुई। कमलका जन्म, आचरण, बातचीत—सभीके द्वारा प्रचलित रीति-नीतिके विरुद्ध विद्रोह मूर्तिमान् हो उठा है। यह चरित्र जिन्होंने श्रद्धा के साथ अंकित किया है, उनकी नीति क्या विद्रोहकी नीति नहीं है? इसके बाद हम देख पाते हैं कि इस ग्रन्थमें एक चरित्र त्याग-निष्ठासे उज्ज्वल हुआ है—वह है प्यूरिटन (पवित्रतावादी) आश्रम। इस ग्रन्थमें जिस मतवादका परिचय मिलता है, उसके साथ शरत् बाबूके अन्यान्य ग्रन्थोंमें व्यक्त

मतवादका सम्पर्क कहाँ है? जिन्होंने अभया षोडशीकी सृष्टि की थी, उन्हींकी कल्पनाने कमलको भी मूर्तिमान् किया है। इन दोनोंके आदर्शके बीच क्या कोई संयोगका सूत्र नहीं है? कमल क्या सजीव चरित्र नहीं है? यह क्या केवल कवि-कल्पनाका एक क्षणिक खयाल भर है। डाक्टर श्रीकुमार बन्दोपाध्यायने कमलमें जीवनका परिपूर्ण विकास नहीं देख पाया। शरत् बाबूके अन्यान्य उपन्यासोंके साथ इस उपन्यासकी भिन्नताके प्रति इशारा करते हुए उन्होंने कहा है—"यह (कमल) सावित्री अथवा राजलक्ष्मीकी सहोदरा या स्वजातीया नहीं है। ये (सावित्री आदि) बंगालकी हैं इनका विद्रोह जिसके विरुद्ध शुरू करके प्रकट होता है वह है सारा समाज और युग-युगान्तरव्यापी धर्म-विधिकी सम्मिलित शक्ति. इसका (कमलका) ऐसे कहीं कोई नाड़ीका लगाव या सम्पर्क नहीं है। प्रेमका कोई विकास इसे कल्पनासे मण्डित नहीं करता कमल एक बुद्धिमात्र मतवादकी सुस्पष्ट और जोरदार अभिव्यक्ति मात्र है यह इंजनकी सीटी है, हृदयका स्पन्दन नहीं।"

कमलके चरित्रकी विशेषतापर अन्यत्र आलोचना की जा चुकी है। यहाँ केवल उसके मतवादका विचार करना होगा। पहले ही यह कह देना जरूरी है कि शरत्बाबूके अन्यान्य ग्रन्थोंमें जिस विद्रोहका परिचय पाया जाता है उसके साथ कमलके विद्रोहकी कोई मौलिक असंगति नहीं है। शरत्चन्द्र रुचिवागीश नहीं हैं, रक्षणशील (कट्टर) भी नहीं हैं। उन्होंने राजलक्ष्मी सावित्री आदिके जीवनकी व्यर्थताके प्रति उँगलीसे इशारा करके यही कहना चाहा है कि जिस आचारने, जिस धर्मने इनको जीवनकी चरम सार्थकतासे वंचित किया, उस आचार अथवा धर्ममें कोई सत्य है कि नहीं यह विचार करके देखना होगा। यह बात शरत्चन्द्रने कई उपन्यासोंमें, कई स्त्रियोंके जीवनके भीतर प्रकाशित की है। कमलने केवल इसी बातको बिना किसी संकोचके, कोई सन्देह न करके, प्रचारित किया है। सावित्री, राजलक्ष्मी रमा आदिके जीवनमें जो प्रश्न उठा है उसीका अकुंठित उत्तर कमलने दिया है। वह वैवाहिक अनुष्ठानकी प्रयोजनीयताको भी स्वीकार नहीं करती। उसका कहना यह है कि अनुष्ठान मनुष्यके लिए बनाया गया है अनुष्ठानके लिए मनुष्य नहीं। मनुष्यका कल्याण ही उसका आदर्श है, किसी आचार या नियमको सिर झुकाकर स्वीकार कर लेना नहीं। जो अनुष्ठान मनुष्यके

जीवनकी सार्थकताका विरोधी है, उसे शिरोधार्य करनेसे मंगलकी अपेक्षा हानिकी संभावना ही अधिक है। इस पक्षसे देखा जाय तो देख पड़ेगा कि कमलका विद्रोह आकस्मिक नहीं है। वह किसी विशेष घटनासे उत्पन्न नहीं हुआ, किसी व्यक्ति विरुद्ध शक्तिके प्रतिघात (धक्का) ने इसे संजीवित नहीं किया। किन्तु अभया रोहिणीसे लेकर कमला तक जितनी नारियोंके चित्र शरत्-चन्द्रने खींचे हैं उन सबकी अभिज्ञता जमा करनेसे जो प्रश्न जो विद्रोह रचना अनिवार्य हो जायगा, लेखकने उसीको कमलके मुखसे मुखरित करके कह दिया है। इस तरह कमलके चरित्रने शरत्साहित्यको सम्पूर्णता प्रदान की है।

और एक बातका भी ध्यान करना होगा। कमलने ब्रह्मचर्यके अतिसंयम और आत्मदमनकी निन्दा की है, किन्तु असंयम अथवा उच्छृंखलताका समर्थन नहीं किया। बल्कि स्पष्टतया अन्तःकरणसे इस बातको ग्रहण करके कि असंयममें कोई तत्त्व नहीं है, उसने अपना मतवाद व्यक्त किया है। उसके आहार और आचरणमें असंयमका चिह्न तक नहीं है। उसने अपने जीवनमें एक एक करके तीन पुरुषोंसे सम्बन्ध जोड़ा है, किन्तु किसीको भी उसने धोखा नहीं दिया, कभी अनियन्त्रित उच्छृंखलताका परिचय नहीं दिया। दारिद्र्यके बीच भी वह सुप्रसन्न और शान्त है। अजितने जब उससे प्रणय-भिक्षा माँगी है तब भी वह अविचलित ही रही है। उसकी बातोंमें निस्संकोच स्पष्टवादिताका परिचय मिलता है किन्तु उसके आचरणमें लेश मात्र उच्छृंखलता नहीं है। उसकी विलासमें रुचि भी है, वह कृपण नहीं है, रसिकताहीन नहीं है, किन्तु वह अनैतिकताका प्रचार करनेवाली भी नहीं है। इस उपन्यासके और एक परिचयको कमलके पास न रखनेसे उपन्यासके प्रति अविचार होगा। उपन्यासकारके मनके एक पहलूको कमलने बड़े जोरदार ढंगसे व्यक्त किया है; किन्तु उसका और एक पहलू आशुबाबूके चरित्रमें—उनकी बातचीत, आचरण, सबसे बढ़कर उनकी निर्मल हँसीसे—मूर्त हुआ है। कमलका यथार्थ प्रतिपक्ष अक्षय नहीं, आशुबाबू हैं। अतएव कमलके मतको आशुबाबूके मतके साथ मिलाकर न देखनेसे शरत्चन्द्रके मतवादके सम्बन्धमें हमारी धारणा अस्पष्ट रह जायगी। आशु बाबू और कमलमें मत-भेद बहुत है; किन्तु मन दोनोंका अलग नहीं है—इन दोनोंके बीच श्रद्धा, प्यार और आत्मीयता सम्बन्ध है। जान पड़ता है, उपन्यासकार यह कहना चाहते हैं कि वही मतवाद आदर्श है जो इन दोनों परस्पर-विरोधी विचार-धाराओंके बीच सामंजस्य स्थापन कर सके।

—•—

११—शरत् साहित्यमें हास्यरस

हँसी आनन्दका झरना है। बच्चा अपनी माको देखकर हँसता है, विजयी वीर अपने गौरवकी अनुभूतिमें हँसता है। यह हँसी विधाताका वरदान है — आदिम मानव जिसके रूपको देखकर यही हँसी हँसा था। किन्तु सभ्यताकी श्रीवृद्धिके साथ साथ हमने और एक प्रकारके हास्यरसका आविष्कार किया है, जिसके मूलमें एक विशेष प्रकारकी आनन्दकी अनुभूति है। हमने उसका नाम दिया है व्यंग्य-कौतुक। हम उसपर व्यंग्य करते हैं जो नीतिकी ओरसे हमारी अपेक्षा हीन है, और हम कौतुक या ठट्ठा उसको लेकर करते हैं, जो बुद्धिमें हमारी अपेक्षा निकृष्ट है। इन सब मामलोंमें मानव-स्वभावका एक विशेष मानदण्ड है। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य स्वार्थमें अन्धा होता है तो भी समाजका रूप यह स्वार्थपरतामें है। सभी अगर अपना अपना ही स्वार्थ खोजते तो समाज एकदम अचल होता — उसका काम चल ही न सकता। इसी लिए तो हिंस्र पशुओंका कोई समाज नहीं होता। मानवकी सामाजिक बुद्धि स्वार्थ-लिप्साको उसके प्रतिकूल चाबुक मारकर आत्मरक्षा करती है। इसके अलावा मनुष्यके बुद्धिजीवी होनेपर भी उसकी निर्बुद्धिता भी अनन्त है। बुद्धिमान मनुष्य दूसरोंकी निर्बुद्धिताका ठट्ठा करके, मजाक उड़ाकर आनन्द पाता है। इसीसे हास्यरसपूर्ण साहित्यके मूलमें ये दोनों चीजें रहती हैं। जो स्वार्थसे पूर्ण नीच हैं और जो मूढ़ हैं, उन्हींने सदासे इस प्रकारके साहित्यको रसद पहुँचाई है। साहित्यिककी प्रकृतिके अनुसार हास्यरसका रंग बदलता है। जिन्होंने साधारण मनुष्योंकी उपेक्षा की है, घृणा की है, उनकी हँसी मुँह चिढ़ानेवालेकी हँसी है। जिन्होंने इन साधारणको प्यार किया है उन्होंने देखा है कि मनुष्य भूलें और अन्याय करेगा ही; कारण, वह रक्तमांसका बना मनुष्य है — पत्थरका बना हुआ,

देखता नहीं है। उसकी भ्रान्ति और अन्यायके साथ उसकी आकांक्षा, उसकी अनुभूति, उसके जीवनका सारा माधुर्य लिपटा है। उसके जीवनका जो काम्य है, उसका छन्द भूलों और असंगतियोंसे बँधा है। यह अगर केवल साधु भाषा ही बोलता और अच्छा काम ही करता, तो उसका जीवन नीरस कठिन गद्य ही होता। इन सब साहित्यिकोंका हास्यरस माधुर्यसे भरपूर होता है—उसमें श्लेष नहीं है ताना नहीं है—मुँह चिढ़ाना नहीं है।

शरत्‌चन्द्रकी रचनाओंमें यह दोनों ही प्रकारका हास्यरस मिलता है। उनमें समाजके चिरकालसे चले आ रहे संस्कारके विरुद्ध एक मधुर विद्रोह मिलता है। उन्होंने दिखाया है कि समाजने पतिता कहकर जिन्हें गाली दी है, चरित्र-हीन कहकर दूर ठेल दिया है, उनका हृदय ऐसा मधुर है कि समाजके तथाकथित नेता लोग उनके आगे नतशिर हो सकते हैं। बेनी घोषालने रमाको कलंकिनी कहकर उसकी निन्दा की थी; किन्तु किसका चरित्र महत्तर है—बेनी घोषालका या रमाका? श्रीकान्तने राजलक्ष्मीको अपनी स्त्री कहकर जब उसका परिचय दिया तब डाक्टर बाबू और ठाकुरदादा सन्तुष्ट हो उठे, किन्तु राजलक्ष्मीके चरित्रमें जो ऐश्वर्य और जो माधुर्य है, उसकी तुलना कहाँ है? यह है शरत्‌चन्द्रकी गम्भीरतर रचनाका मूलसूत्र। उनकी रस-रचनाकी मूल बात भी यही है। सामाजिक कलंककी आड़में जो महिमा छिपी हुई है, उसे उन्होंने खोलकर दिखाया है, और जिन्हें हमने अनाड़ी और मूर्ख कहकर अपमान किया है, उनके जीवनमें भी उन्होंने माधुर्य भर दिया है। इस संसारके कुटिल मार्गमें कुछ ऐसे लोगोंसे भेंट होती है जो [illegible] भूले हुए होते हैं। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण नहीं होती, शायद वे बिल्कुल ही अबोध (बोदू) होते हैं, किन्तु उनके अन्तःकरणकी उदारताने उन्हें महिमामण्डित कर दिया है। उनमें सांसारिक बुद्धि या स्वार्थ-सिद्धिकी क्षमता नहीं है। इस दिशामें वह ठोंठके पद हैं। किन्तु उन्हें क्षमा करने या उनकी भर्त्सना करनेका उपाय भी नहीं है। कारण, वे कोई क्षुद्र या नीच काम नहीं कर सकते। संसार-संबंधी उनकी अनभिज्ञताने कवचकी तरह सब तरहकी नीचताओंसे उनकी रक्षा की है। [illegible] चाचाके दिमागमें समाज-नीतिके कूट-तर्क नहीं खेलते थे, वह राजनीतिक नेता नहीं हो सकते थे। [illegible] घरानेके बड़े-बड़े हाथी और घोड़े उनके नहीं थे—उनका [illegible] केवल असीम स्नेहकी अनुभूति थी।

'बामनकी बेटी' के प्रियनाथ डाक्टर और दत्ताके नरेन्द्र डाक्टर, दोनों ही अद्भुत आदमी हैं। ऐसे लोग एकदम संसारसे अनभिज्ञ होते हैं। संसारमें ये स्वप्नाविष्टकी तरह चलते हैं और इसी कारण ये कौतुकके पात्र हैं। मध्यम लोगोंके लिए सबसे अधिक कौतुकका विषय ये सब स्वप्नाविष्ट लोग हैं, जो जागते हुए भी सोते होते हैं और सोते हुए भी जागते हैं। यहाँतक कि इस दुनियाकी भाव-धाराको ये कुछ भी नहीं समझते; पृथ्वीकी सब राहोंको ये कुछ भी नहीं समझते; पृथ्वीकी सब राहोंको ये नहीं जानते जिसे जानते हैं उसे भी स्वप्नके आवेशमें अच्छी तरह देखते नहीं संसारकी विचित्रतासे ये कोई सम्बन्ध नहीं रखते। दुनियाकी कोई एक राह ये जानते हैं और स्वप्नकी खुमारीमें केवल उसीमें घूमते फिरते हैं। किन्तु संसारमें कोई भी राह सहज और सरल नहीं है। सब राहें मिलकर एकमें उलझ गई हैं इसीसे तो इसका नाम गोरखधंधा है। इसीसे जैसे ही इनकी अभ्यस्त राह और राहसे मिल जाती है, वैसे ही ये लोग उलझन पैदा कर देते हैं। प्रियनाथ डाक्टर रोगीको देखना और रेमेडी (Remedy) सिलेक्ट करना (दवा चुनना) जानते हैं; किन्तु रोगीका मन कितनी विचित्रता रखता है इसका उन्हें कुछ पता नहीं। रोगी जो सचमुच मृत्युका भय न करके भी कह सकता है कि वह अभावसे मरा जा रहा है अथवा वह पड़े पड़े मर जायगा; उसके मनकी गति या अनुभूति पुस्तकके लेखकी तरह सहज और सुन्दर नहीं है इस बातको वह नहीं जानते थे। उन्होंने पुस्तकमें केवल यही पढ़ा है और देखा है कि अभावके वर्णनमें पर्वत, मरण तुल्य चुभना-सा या बिच्छूका डंक मारना-सा लिखा है। उन्हें यह बात कौन समझावे कि ये सब बातें बनावटी बातें हैं, मूक जीव अथवा ही है। यह मानो ही कहते थे कि महात्मा हेरिंगने कहा है—रोगोंकी चिकित्सा करना, रोगीकी नहीं। किन्तु उनके लिए रोग और रोगी, दोनों ही केवल पुस्तकमें लिखी बात भर थे। इसी लिए वह प्रधान डाक्टरसे खामखाँह या ईर्ष्या रखते थे — रोगकी चिकित्सा करके नहीं। उसने उनकी होमियोपेथी दवा खाकर दिखाया है कि उससे कोई हानि नहीं होती और इन्होंने भी उनका दिया केस्टर आयल (एरंडीका तेल) पीकर महात्मा हनेमन और हेरिंगकी मर्यादाको बनाये रखा। पर स्वप्नाविष्टके लिए जैसे होमियोपेथी दवा वैसे ही केस्टर आयल। वह संसारमें रहते अलग थे,

किन्तु उनका संसार केवल कुछ होमियोपैथिक पुस्तकों और कुछ धनिक रोगियोंमें ही सीमित था। विपिन और परान डाक्टर धन कमाकर जीविका चलानेके लिए डाक्टरी करते थे और यह जीवन धारण ही करते थे चिकित्सा करनेके लिए। अतएव विपिन और परानको रोगी खोजते फिरते थे और विश्वनाथ डाक्टर रोगियोंको खोजते फिरते थे। उनके लिए और किसी चीजका अस्तित्व नहीं था।

'दृष्टा' के नरेन्द्र डाक्टरका पेशा है जीवाणुओंके बारेमें आलोचना करना-खोज करना। पर उसे इसकी कोई खबर नहीं थी कि पास ही एक कैसी व्याकुल आत्मा उसके लिए प्राण दे रही है। मानव मनकी जितनी प्रवृत्तियाँ हैं उनमें प्रेम ही सबसे बढ़कर जटिल है; किन्तु नरेन्द्र डाक्टरकी बुद्धि जीवाणुओंकी जटिलताकी खोजमें ही समाप्त हो गई थी। वह हृदयके आदान-प्रदानकी कुछ समझता ही नहीं था। उसका हृदय जैसा सरल था, वैसे ही उस रमणीकी जो उसके लिए व्यथित पीड़ित होकर मर रही थी प्रेमकी चाह जटिल थी। उसने कब चुपकेसे उपन्यासमें नरेन्द्रका सर्वस्व ले लिया है, उसे पथ-हीन कर दिया है, उसका प्यार और एक आदमीके साथ तय हो गया है।—इसकी आत्मामें कितना गहरा प्रेम आत्मरक्षा कर रहा था और अपनेको प्रकट करनेके लिए हजारों उपाय ढूँढ़ता फिरता था, इसकी कोई खबर नरेन्द्रको नहीं थी। इसीसे वह समझ नहीं पाता कि विनता उसका क्यों इतना ख्याल करती है, विश्वम्भरविहारी क्यों उससे जलता है—ईर्ष्या करता है, क्यों एक पागल भूत उसके सिरपर सवार था और क्यों विनता कभी कभी उससे ऐसा व्यवहार करती है जैसे उसे पहचानती ही नहीं या उसकी अवहेला करती है। आत्मभोला डाक्टरकी यह अवस्था या भावना ही यहाँ हास्यरसका मूल आधार है।

विश्वनाथ डाक्टरको एक खास सनक थी और नरेन्द्र डाक्टर किसी खास मामलेमें एकदम बेकार था। 'निष्कृति' के गिरीश सभी मामलोंमें पूरे भोलानाथ थे। वह कुछ भी नहीं समझते थे। छोटा भाई रमेश कोई काम-काज नहीं करता—फिर भी रकमोंमें चार हजार रुपए उसने लिख दिये। वह उनके अपने कमाते कमाए हुए धनको और बरबाद न कर सके, इसलिए वह उसे बुलाकर प्रश्न करने लगे, और अपने

मजिस्ट्रेट साहबबहादुरके लौंडा-बाबुओंका प्रबन्ध किया। किन्तु वे लोग पानकी दुकानी करते थे या फूलकी दुकानी करते थे, यह बात भूल ही गये हैं। जो मजमवासित है उसके निकट पाप जो है वही पुण्य भी है। वह रमेशको और रुपए नहीं दे सकेंगे क्योंकि उसे और बैठे-बैठे खिला न सकेंगे इसीलिए उन्होंने यह राय दी कि 'एक बार हजार रुपए गये तो गये, कुछ परवाह नहीं—फिर चार हजार दो। लेकिन इसके यह माने नहीं कि मैं मेहनत कर करके मरूँगा और तुम बैठे-बैठे खाओगे। मैं सबरे [illegible] आठ हजारकी चेक दूँगा। चार हजार रुपयेका फ्लूट खरीदना और चार हजार रुपये जमा रहेंगे। जब ये चार हजार खतम हो जायँ, तब उन रुपयोंमें हाथ लगाना, उसके पहले नहीं, इससे ? मैं तुम लोगोंको बिठाकर न खिला सकूँगा।" रमेश उनके गर्भसे कमाये हुए धनको नष्ट न कर सके, इसका कैसा विचित्र, कैसा बढ़िया उपाय है। इन्होंने रमेशसे मुकदमा चला और अन्तमें रमेशको ही छकानेके लिए अपनी सारी सम्पत्ति रमेशकी स्त्रीके नाम लिख दी।

गिरीशकी स्त्री सिद्धेश्वरी और 'बैकुण्ठका दानपत्र' का गोकुल भी बहुत कुछ इसी प्रकारके आदमी हैं। ये कुछ मोटू—कुछ दुर्बल-चित्त हैं। सिद्धेश्वरीने सुना है कि पचास रुपए कैसे-से रुपए होते हैं। यह बात उन्होंने किसी तरह नहीं मानी कि बारह सौ रुपयोंमें दो रुपये निकलनेसे पचास रुपये हो जाते हैं। गोकुल ऐसा मोटू है कि वह इम्तहानकी परीक्षा पास नहीं कर सकता और नकल करनेकी जो विद्या और सब लड़के जानते हैं वह तक उसकी जानी नहीं है। ये पात्र अपनी एकान्त स्नेहशीलतासे हास्यरसको जगाते हैं। संसारका नियम है स्वार्थका नियम। इसमें स्नेहका स्थान बहुत ही नपा-तुला होता है। इसीसे जब किसीका भी स्नेह सारी नियत सीमाको लाँघकर उमड़ पड़ता है तब उसके माधुर्यसे हम अभिभूत होते हैं साथ ही उसकी अद्भुत निपुणतामें कौतुकका अनुभव करते हैं। सिद्धेश्वरीने कैलाशको एक तरहसे घरसे भगा ही दिया था, किन्तु लड़कोंको और पत्नीको खानेको मिला या बिना खाये भूखे ही सो गये—इन सब बातोंको सोचकर उन्हें नींद नहीं आई और दूसरे ही दिन मुकदमा दायर करके दोनों भाइयोंको (कैलाशके पास) ले आवेंगी, यह निश्चय करके रात बिताई।

माताओंके बीच मनमुटाव होता है, साधारण प्रकारका मेल भी रहता है; किन्तु मनमोहक भाईके लिए गोकुलकी प्रीति सब सीमाओंको लाँघ गई थी। भाईके परीक्षा पास न करनेपर भी वह सबके साथ घोषणा करता था कि उसके भाईने सबसे प्रोमोशन पाया है। विनोदकी धर्मधारिणी भवानी गोकुलकी सौतेली मा थी; किन्तु गोकुल जानता था, वह उसीकी मा है। विनोदके घर आकर वह कह गया—"सब झूठ है। कलियुग है—अब क्या धर्म कर्म कुछ रह गया है? बापूने मरते समय माको मेरे हाथमें सौंपकर कहा था कि 'बेटा गोकुल यह रहे अपनी मा।' मैं सीधा-सादा भला आदमी हूँ, नहीं तो विनोदके बापकी मजाल क्या है कि वह मेरी माको चोर करके ले जावे। क्यों, क्या मैं लड़का नहीं हूँ? मैं चाहूँ तो अभी चोर करके माको ले जा सकता हूँ। यही है मधुर मसल मिठ।" सच। बापकी सम्पत्तिपर सभी दावा करते हैं, किन्तु यह है विमातापर दावा करना। विमाता माँकी Monopoly (मोनोपोली एकाधिकार) पर कटाक्ष।

गिरीश या गोकुल जैसे अपनेको भूले हुए भोले लोग विरले हैं। मानव-जीवनकी मूल बात है अहङ्कार। अपनेको जाहिर करना, अपनी सुविधा कर लेना, यह सभी लोगोंके जीवनका मूल मन्त्र है। मगर मनुष्यकी इस हाड़-मांसमें समाई हुई मर्यादाको लेकर लोग ठट्ठा भी करते हैं। मनुष्य जैसे अपनेको जाहिर करता है वैसे ही दूसरेके अहङ्कारपर ठट्ठा भी करता है। रस-रचनाकी यह भी एक प्रधान विषय-वस्तु है। शरत्चन्द्रके साहित्यमें इसका उत्तम परिचय पाया जाता है, और इसमें भी शरत्चन्द्रकी विशेषता खिल उठी है। दुःख दुर्दशा-पूर्ण मानव जीवनके प्रति उनकी सहानुभूति अनन्य है। उन्होंने दिखाया है कि यह अहंज्ञान एक मधुर दुर्व्यवस्थामात्र है। यह हमारे सब कामों और सब चिन्तनोंकी आड़में रहकर बीच-बीचमें झाँकता हुआ हास्यरसका उज्ज्वल प्रकाश जमाता है। रंगूनके विख्यात हरिपद मिस्त्रीसे श्रीकान्तने रंगूनके प्रसिद्ध नन्द मिस्त्रीका ज्यों ही परिचय पूछा, त्यों ही उस आदमीने एक तरहका असम्मान-सूचक मुँह बनाकर कहा—'वह मिस्त्री! इस तरह सभी अपनेको मिस्त्री कहलाते हैं महाशय, पर मिस्त्री होना सहज नहीं है। मास्टर साहबने तो मुझसे कहा था कि हरिपद, तुम्हारे सिवा मिस्त्री होने योग्य आदमी

तो और कोई मैं देख नहीं पाता, तब आप जानते हैं, मेरे साहबके पास कितनी बेनामी चिट्ठियाँ आई थीं ! एक सौके लगभग । अरे भाई बसुधेन्द्र चोर रहते क्या बनामी चिट्ठियाँ कुछ कर सकती हैं ! अरे मैं कायकर चीड़ दे सकता हूँ।” रासाल पण्डितने कहा था –“मधु डोमाय कल्याय नमः।” शिबू पण्डितने कहा – यह मन्त्र मिथ्या है । असल मन्त्र यह है –‘ मधु डोमाय कल्याय मुम्मफय नमः, जितने दिन जीवने-धारणं, उतने दिन रोटी-कपड़ाप्रदानं स्वाहा ।” इस तरह उसने प्रमाणित कर दिया कि असल मन्त्र अकेले वही जानता है और सब पण्डित यजमानको ठगकर अपना पेट पालते हैं । इन पंडितोंका झगड़ा सुनकर रतनने अपने आभिजात्यके गौरवसे छाती फुलाकर कहा हम लोग लोगोंका कोई ब्याहमें ब्याह है । यह तो हम बामन-कायथ या नबशाखों* के घरका ब्याह नहीं है । यहाँपर यह कह देना आवश्यक है कि रतन नापित नाई है

यह हरिपद मिस्त्री रतन नबशाख, शिबू पंडित या पद्म ढोंगाके मेसका पाचक ब्राह्मण—इन्होंने और इस आदमियोंकी तरह दुःखमें सुखमें जीवन बिताया है । इनकी जीवनयात्राके भीतर यही बहुत तीव्र अहंकार झलकता है । इस अहंकारने उनके दुःख-दैन्यसे प्रपीड़ित जीवनको अपेक्षाकृत सहने लायक बना दिया है । इसमें मुँह बिचकानेकी घृणा करनेकी कोई बात नहीं है । शरत्चन्द्रने भी इसपर व्यंग्य नहीं किया । उन्होंने केवल यही दिखलाया है कि यह अहंकार साधारण प्रतिदिनके जीवनको कितना सरस कर देता है । उनकी इस रस-रचनाके मूलमें उनकी प्रबल सहानुभूति विद्यमान है । शरत्चन्द्रने जो ऐसा अपांक्तेय (पंक्तिके बाहर) हैं, मूढ़ हैं, उनके जीवनको उन्हींकी तरह समझनेकी कोशिश की है । सव्यसाची जब गिरीश महापात्र बने थे तब उन्होंने ठीक वैसे ही नीबूका तेल सिरमें डाला था और ठीक उसी तरह गाँजेकी चिलम पकड़ी थी, जैसे एक निर्धन मफस्सिलका छोटा आदमी सिरमें तेल डालता है और जिस तरह गाँजेकी चिलम पकड़ता है । रंगून-यात्रामें जो

*नवशाख—बंगालके हिन्दुओंकी नवशाखा या नौ जातियाँ—सद्गोप (अहीर) तन्तुवाई, कुम्हार, तेली, माली, लोहार, नाई, बारई (तमोली) और मोदक ।

वर्णन शरत्चन्द्रने किया है, वह जो इतना मधुर और सजीव हुआ है, उसका कारण यह है कि उन्होंने साधारण लोगोंको अपना मन और आनन्दको ठीक उन्हींकी तरह देखा और अनुभव किया है। उन्होंने दिखाया है कि उन लोगोंका जीवन ठीक सुसभ्य, भद्र, शिक्षित लोगोंका-सा अवश्य नहीं है, किन्तु उनकी आनन्दकी अनुभूति हम लोगोंकी तरह ही तीव्र है और चूँकि उन लोगोंका जीवन ठीक हमारे साँचेमें ढला नहीं है इसी लिए वह हमारे कौतुकका विषय है। वे बीथोवन + (Beethoven) के संगीतको नहीं जानते, किन्तु उनका भी एक संगीत है। कलुआ पठान भी गाना गाते हैं। उनका जीवन दैन्यसे प्रपीड़ित है; किन्तु उसमें ऐसा एक खुलापन है जो सुसभ्य लोगोंके जीवनमें नहीं है। देशमें यात्रा करनेवालोंके जीवनमें ऐश्वर्य नहीं है, किन्तु उनकी एक सहज स्वतःस्फूर्त गति है, जो प्रथम श्रेणीके यात्रीके जीवनमें नहीं है। इसी गतिको शरत्चन्द्रने अपनी रचनामें सजीव बना दिया है। यह कौतुकमय है; क्योंकि आनन्दमय है। सभ्यताके विधि-निषेधसे इनकी सहज स्वाभाविक गतिमें बाधा नहीं पड़ती। यह हमारे सुसभ्य जीवनकी अपेक्षा भिन्न और अनेक अंशोंमें निकृष्ट है। जो लोग सुसभ्य नियमोंको मानकर चलते हैं वे नियमका व्यतिक्रम कोई बात कुछ विकृत या अद्भुत देख पाते ही हँसते हैं। इस हँसीमें प्रधानताका बोध छिपा रहता है। इन सब उपहसित छोटे लोगोंकी जीवनयात्रा देखकर जो हँसी आती है उसमें भी यह प्रधानताका बोध निहित है—यह बात सत्य है किन्तु उनकी सहज, स्वतः-स्फूर्त प्राण प्राचुर्यका परिचय पाकर हम कृतार्थ भी हो जाते हैं। हमारी हँसी सहानुभूतिके रससे संजीवित होती है। मानव-जीवनके प्रति यह विस्तृत सहानुभूति ही इन सबकी रचनाकी प्रधान विशेषता है।

यह विस्तीर्ण सहानुभूति उनके शिशु चरित्रोंमें भी प्रकट हुई है। शिशुके जीवनकी छोटी छोटी आशाओं आकांक्षाओं और अनुभूतियोंको उन्होंने शिशुकी ही सरलतासे समझनेकी चेष्टा की है। पिपटरमें धीनसमझ पान्न रहस्य समझनेकी आकांक्षा लेकर मधनाका वीरत्व इतना उन्होंने सजीव वर्णन किया है। "धन्य वीर! धन्य धीरज! अनेकने अनेक प्रकारके युद्ध देखे हैं, यह मैं मानता हूँ; किन्तु चतुर नहीं है, जायें हाथकी हस्त भी युद्ध

+ एक प्रसिद्ध पाश्चात्य संगीतज्ञ।

सामने अनुकूल नहीं है—केवल दाहिने हाथ और लम्बी डोरसे लगातार युद्ध करना कब किसने देखा है! मन्तूको उसीसे चीत हो गई। प्रभुको इस बार भागकर ही अपने प्राण बचाने पड़े!" पाठक यह नहीं समझता कि अभिनयका युद्ध सचमुचका युद्ध नहीं है। शरत्चन्द्रके इस वर्णनमें बालककी सरल विस्मयकी अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। शिशु अपनी सहज सरलतासे प्रेमके आदान-प्रदानमें कैसी असुविधा उत्पन्न कर देता है; नारी-हृदयकी गुप्त व्यथाको वह कैसे प्रकट कर देता है—इसका चित्र रवीन्द्रनाथने 'वस्तिपार' कहानीमें दिया है। इसका यह पक्ष भी कम नहीं है। उसके लिए नरेन्द्रकी खबर लेनेसे कहीं अधिक आवश्यक है और जो बात विमला बहुत छिपा रखना चाहती है उसे उसने सहज ही अनायास प्रकट कर दिया है।

केवल शिशु ही क्यों—मनके मारे या निराश प्रेममें वयस्क व्यक्ति भी कैसे शिशु-जैसा व्यवहार कर सकते हैं, इसका चित्र भी शरत्चन्द्रने अंकित किया है। छिनाथ (श्रीनाथ) बहुरूपिया बाघका रूप बनाकर श्रीकान्तके घरमें जब आया तब उसे असली बाघ समझकर श्रीकान्तके फूफा और महाचार्य जिस तरह चिल्ला उठे और गम्भीर प्रकृतिके मैंझले दादा 'हि रायल बेंगाल टाइगर' देखकर जिस तरह आर्तनाद करके मूर्छित हो गये, वह बिल्कुल शिशु-सुलभ था। महिमकी गैरहाजिरीमें सुरेशने अचला और केदार बाबूपर खूब रंग जमा लिया था कि वहाँ एक दिन भूतकी तरह महिम आ उपस्थित हुआ। तब अचला सुरेशको अप्रस्तुत करके महिमसे बातें करने लगी। यह देखकर सुरेश एकाएक आँधीकी तरह कमरेसे भीतर घुसकर बक उठा 'मुझे माफ करना होगा केदार बाबू। अब और एक मिनट भी मैं यहाँ ठहरनेमें असमर्थ हूँ ना, ना, इस भूलकी क्षमा नहीं है। मेरा अन्तरंग मित्र आज प्लेगमें मर रहा है और मैं सब भूलकर यहाँ बैठे-बैठे समय नष्ट कर रहा हूँ।" इत्यादि इत्यादि। यही सुरेश अब तक अचलाके पास बैठा हुआ चित्र देख रहा था। एकाएक इस तरह स्वार्थत्यागका किस्सा गढ़कर उसने अचलाको यह जतानेकी चेष्टा की कि वह महिमसे अपेक्षा कितना महान् है! यह अभिमानसे आहत आत्मप्रदर्शन एकदम बालसुलभ है। प्यारी बंगाली और नन्द मिस्त्रीकी जीवन-यात्राके भीतर भी इस प्रकारके शिशु-जीवनकी सरलता है। प्यारी बहुत दिनोंसे नन्दके घर बैठी

है, उसने उसे सब कुछ समर्पण कर दिया है, किन्तु अपने आभिजात्यको बचाये रखा है। वह नन्दकी गृहिणी हो सकती है किन्तु इस वैष्णवकी लड़कीने अपनी जाति नहीं नष्ट होने दी— बीस बरसमें एक दिन भी उसने नन्दको अपने चौकेमें घुसने नहीं दिया। इसीसे जब नन्दने इस बीस बरसकी गृहिणीका अपनी कहकर परिचय देना चाहा, तब टगर क्रोधके साथ व्यंग कर उठी— "वाह रे मेरे भैयालाल मेरे स्वामी! मुझे कहते हैं अपनी घरवाली! जाति-वैष्णवकी बेटी मैं केवट (मल्लाह) की जोरू होऊँगी — और क्या!" इस तरह बिना किसी मेलके उन दोनोंमें झगड़ा और मार-पीट चलने लगी। नन्दको उसने अपना सब कुछ मान समर्पण कर दिया था —अन्तको जातिके मिथ्या अभिमानसे उनमें स्पर्श-झगड़ा और मार-पीट होती थी। जैसे दो बच्चे मामूली खिलौनेके लिए लड़ते झगड़ते हैं, यह झगड़ा ठीक वैसा ही था और उन बच्चोंका झगड़ा जैसे आप ही दम भरमें मिट जाता है, वैसे ही इनका झगड़ा भी अधिक नहीं टिकता था।

मानव-जीवनके क्षुद्र क्षुद्र मान-अभिमानके आकर्षण-विकर्षण आदिके भीतर जो कौतुककी धारा बहती है उसे शरत्चन्द्रने इसी प्रकार प्रकट किया है। रतन नापितका आत्माभिमान, राजलक्ष्मीकी भीरुताके प्रति सामयिक उपेक्षा, क्षुद्र वैरागीकी पत्नी-प्रीति इन सबपर उन्होंने कौतुक-हास्यकी उज्ज्वल किरणें बिखेरी हैं। और भी एक प्रकारके लोग हैं, जो नीच और स्वार्थपर हैं, जो लौकिक दृष्टिमें बड़े हैं, किन्तु मनुष्यकी जो सच्ची सम्पत्ति है उससे कंगाल हैं। शरत्चन्द्रने उनपर व्यंग्य किया है अनुकम्पाकर छोड़ दिये गये हैं। कपटी ढोंगी, पाखंडी, स्वार्थपर लोगोंके सब पर्दे उन्होंने विदीर्ण किया है और दिखाया है कि वे किस तरह पगपगपर मर्यादाहीन महा आत्मविभोर पराजित हुए हैं। इस प्रकारके चरित्रोंमें प्रधान हैं 'शेष प्रश्न' के अक्षय और 'दत्ता' के रासबिहारी। अक्षय इतिहासका अध्यापक है, सब कुछ जाननेका दम भरता, एकदम समाजनैतिक। वह हिन्दूधर्म और नीतिकी ध्वजा है—किसी तरहका अन्याय व्यभिचार उसे स्पर्श नहीं कर सकता। उसे ठगा नहीं जा सकता। वह हिन्दुत्वकी तपस्या और मर्यादाकी महिमा स्वयं प्रचार करके आगरा समाजकी पवित्रताकी रक्षा करता है। कमल और सतीको

ठग सकती है; किन्तु मनुष्य जानता है कि वह कुपात्र है, उसका समाज सर्वथा त्याग करने योग्य है। किन्तु यह संकीर्णचित्त मनुष्य पग-पगपर अपदस्थ हुआ है उससे नीचा देखा है सभीने उसकी संकीर्णताका उपहास किया है। शरत्चन्द्रने दिखाया है कि यह अनुदार अध्यापक ही समाजमें अवांछित है—समाजमें स्थान पाने योग्य नहीं है, चरित्रहीन शिवनाथ या कमल नहीं। 'दत्ता' के रासबिहारी कुछ भिन्न प्रकृतिके मनुष्य हैं। वह कपटताके प्रतीक हैं। दूसरे किसी परिच्छेदमें उनके चरित्रकी आलोचना की गई है। यहाँपर केवल एक बात कहना जरूरी है। यह जरूरतसे ज्यादा बुद्धिमान् मनुष्य बार बार असफल हुआ है उसकी सारी चेष्टायें व्यर्थ और बेकार हो गई हैं। और वह जो परास्त हुआ है सो किसी योग्य बहादुर शत्रुसे नहीं। वह हारा है एक अजान लड़कीसे (जिसका वह स्वयं अभिभावक था) और एक सब कुछ भूले हुए बुड्ढेसे, जिसका सर्वस्व उसने छीन लिया था। शरत्चन्द्रके साहित्यमें इन भोलेपनोंकी ही जय हुई है।

और भी कई स्वार्थान्ध लोगोंका परिचय हमें शरत्-साहित्यमें मिलता है। जैसे श्रीकान्तके मँझले दादा और नये दादा। मँझले दादाके आक्रमणके लेशका वास्ता छोड़ था; किन्तु इसी बीचमें बालकोंके ऊपर वह जैसे जैसे विधिपूर्वक अत्याचार करते थे उसकी तुलना विरल है। श्रीकान्तके नये दादा अत्यन्त स्वार्थपरताके जीते जागते दृष्टान्त हैं। उनकी निम्नश्रेणीके साधारण मनुष्यके प्रति घृणा, मिथ्या सभ्यताका अभिमान संगीतका व्यर्थ अनुराग, यथार्थ बलिष्ठताका अभाव इन सब दुर्गुणोंपर शरत्चन्द्रने तीव्र व्यंग्य किया है—खूब हँसाया है। वैकुण्ठका दानपत्रका अपदार्थ बनर्जी इसी तरहका एक और नीच-प्रकृतिका मनुष्य है। वह गोकुल, भवानी, विनोद निताई गण आदि सभीकी खुशामद करके उन लोगोंमें विरोध उत्पन्न करके स्वार्थ सिद्ध करनेकी चेष्टामें लगा रहता था। अन्नदाके मन पढ़कर बनाये गये रसगोंको हमने बहुत कम देखा है, किन्तु उतने ही अवकाशमें शरत्चन्द्रने इस चरित्रको कुशलता और दृढ़ योजनाकी मददसे पक्का व्यंग्य-चित्र किया है। नारीकी सभी महिमा पूर्णरूपसे थोड़ी-सी बात पर उसका मन कितना निर्मम कितना कुत्सित हो सकता है, इसका व्यंग्यचित्र शरत्चन्द्रने रासी बाम्हनी, मोक्षदा और कामिनी

काशीनाथके चरित्रमें अंकित किया है। किन्तु उनकी प्रतिभाका श्रेष्ठ विकास इस क्षेत्रपर नहीं हुआ है। मानवी जीवनके छिपे हुए माधुर्यको उन्होंने गहरी सहानुभूतिके साथ समझ लेनेकी जो चेष्टा की है, उसीमें उनकी विशेषता है। रस-रचनामें वह सिद्धहस्त हैं; किन्तु इसका भी विकास उनकी सहज सरल गहरी अनुभूतिमें—स्वार्थबुद्धिहीन दुनियाको भूले हुए चरित्रोंको अंकित करनेमें हुआ है। जो जिठानीजी देवरके लड़के बालकको अनेक प्रकारसे पीड़ित या परेशान करती थीं, उन्होंने उसी स्वर्णमंजरी (जिठानी) को विद्रूप किया है। किन्तु उनकी प्रतिभाका विशेष विकास उस जिठानीका चरित्र अंकित करनेमें हुआ है, जिन्हें इस चिन्तासे रातको नींद नहीं आई कि उनके देवरके लड़केको उनके पाससे दूर किये जानेपर कपड़ा-लत्ता मिला होगा या नहीं और जिन्होंने यह हास्यकर प्रस्ताव गम्भीर भावसे उठाया था कि वह मुकदमा करके उन बच्चोंको उनकी माके पाससे ले आयेगी। अन्तर्जगत्के भावमें जीवनकी जो महिमा छिपी हुई है, उसे शरत्चन्द्रने ढूँढ़ निकाला है और निष्ठुरताके नीचे मनुष्यत्वकी जो छिपी हुई धारा निरन्तर बहती रहती है, उसे उन्होंने ठीक प्रकारसे मुखरित कर दिया है।

१२–गठन कौशल

शरत्चन्द्रकी रचना-रीतिकी आलोचना करते समय पहले ही कहानीके गठन-कौशलपर दृष्टि पड़ेगी। नाटक या उपन्यासके चरित्र और कहानीमें कौन प्रधान है, इस प्रश्नको उठाकर समालोचकोंने बड़ी बहस की है। ट्रेजेडीकी आलोचनामें अरिस्टोटल (अरस्तू) ने कहा है कि प्लाट चरित्रसृष्टिकी अपेक्षा मुख्य है। उनके इस मतको अनेक लोग नहीं मानते। यहाँतक कि ग्रीक ट्रेजेडीके सम्बन्धमें भी यह मत ग्रहण करने योग्य नहीं जान पड़ता। वर्तमान कालके समालोचक कहानीकी अपेक्षा चरित्रकी सृष्टिको ही प्रधान बतलाते हैं। इस विषयमें कोई सर्वसम्मत निर्णय देना कठिन है। कहानीका उद्देश्य मानव-मनके निगूढ़ रहस्यको अभिव्यक्त करना है, और मानव-मनका निगूढ़ रहस्य कहानीके माध्यमसे ही प्रकाशित होता है। श्रेष्ठ आर्ट इन दोनों उपादानोंके समन्वयकी चेष्टा करता है।

शरत्चन्द्रके उपन्यासोंकी गहरी आलोचना करनेपर जान पड़ता है कि उनका प्रधान लक्ष्य चरित्रकी सृष्टि है। आख्यायिका परिस्थितिके वाहनके रूपमें ही उद्भावित हुई है। मानव-मनकी परम आश्चर्यमय विचित्रता देखकर उनकी प्रतिभा स्फुरित हुई है और उस प्रकार करनेके लिए ही उन्होंने कहानीके सूत्रको गूँथा है। केवल 'परिणीता' में ही हम देखते हैं कि कहानीके रहस्यने चरित्रकी विशेषताको दबा लिया है। लेखककी भूल ही इस उपन्यासकी प्रथम और प्रधान बात है। इसको छोड़कर अन्य सब कहानियोंमें चरित्रके रहस्यने प्रधानता प्राप्त की है। इसी कारण, शरत्चन्द्रकी अपेक्षाकृत कच्ची रचनाकी शिल्पपद्धतिको विचारकर देखनेसे पाया जायगा कि उसमें चरित्र-सृष्टिके लिए उपयुक्त कहानी उद्भावित नहीं हुई, और उसका यह दोष अविश्वसनीय घटना या मानवकी प्रवि-

कलात्मकतासे परिपूर्ण सम्पूर्णतासे भरना पड़ा है। 'देवदास' उपन्यासकी चन्द्रमुखीसे सम्बन्ध रखनेवाली कहानी, 'स्वामी', और 'विराजबहू' का प्रथम अंश, 'बड़ी दीदी' का उपसंहार और 'विप्रदास' इसी कलात्मक परिचय देते हैं*। शरत्चन्द्रके अन्य उपन्यासोंमें हम देखते हैं कि चरित्र और कहानीका बहुत सुन्दर सामंजस्य हुआ है। कहीं आवश्यकतासे अधिक बातचीतों या कथोपकथन नहीं है; कहानी स्वाभाविक स्वच्छन्द गतिसे आगे बढ़ती गई है—वह नायक या नायिकाके हृदयकी अभिव्यक्तिके लिए कहींपर रुकती नहीं। अथ च चरित्रका प्रत्येक अणु-परमाणु छोटेसे छोटा अंश—कहानीके भीतरसे प्रकाशित हुआ है, जैसे नायक-नायिकाके हृदयका गूढ़ रहस्य प्रकट करनेके लिए कहानी पहलेसे ही रचाई हुई थी। 'गृहदाह' शरत्चन्द्रका श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें नारी हृदयके गहरेसे गहरे रहस्यकी अपूर्व अभिव्यक्ति और पुंखानुपुंख विश्लेषण किया हुआ है। गठन-कौशलकी दृष्टिसे भी यह उपन्यास अद्वितीय है। कहानीके आरंभ, परिणति और परिसमाप्तिके बीच अतिसुन्दर सामंजस्य है, कहींपर कोई घटना अनावश्यक रूपसे बड़ी नहीं हो उठी या कोई अंश एकाएक संकुचित नहीं हो गया। प्रत्येक ही खंड-चित्र निर्दोष बन पड़ा है, और सभी खंड-चित्र एक सुन्दर ऐक्यके अंगमात्र हैं।

शरत्चन्द्रके उपन्यासोंमें आख्यायिका अनेक उपायोंसे गठित हुई है। कुछ उपन्यासोंमें केवल एक ही कहानी है, कोई अप्रासंगिक घटना नहीं है। प्रारंभमें नायक नायिकाकी अवस्थाका वर्णन हुआ है और क्या करके मतभेदका सूत्रपात हो सकता है इसकी सूचना भी उपन्यासके प्रथम भागमें ही दी है। इसके बाद बीचके हिस्सेमें आख्यायिकामें अनेक जटिलताएँ और संघर्ष आकर

* शरत्चन्द्रकी अधिकांश कहानियोंमें एक चरित्र रहता है जिसकी शक्ति असाधारण होती है और अनेक बाधाओंके भीतरसे वह शक्ति कैसे प्रकाशित होती है—यही उनके उपन्यासका प्रधान लक्ष्य बन बैठता है। जहाँ चरित्रकी क्षमता असाधारण नहीं है, वहाँ कहानी भी प्राणहीन हो गई है। 'शुभदा'का इतिहास विस्मयकारक है, किन्तु वह सम्पूर्ण सजीव नहीं है। एक विधान उपन्यास इस तरहकी आयासहीनताका सबसे बड़ा नमूना है। जान पड़ता है, उपन्यासका कोई भी चरित्र सजीव मनुष्य नहीं है। चरित्र बनाने कुछ बातें विशेषोंमें शुरू कर दी है और वे एक निश्चित मार्गपर चल रहे हैं। यहाँ कहानीके कठपुतली चरित्र नहीं खिलने पाये।

उपस्थित होते हैं और एक घटनासे वह जटिलता चरम (क्लाइमेक्स) को पहुँच जाती है। यही उपन्यासकी सबसे बढ़कर संकटमय स्थिति होती है। फिर इसके बाद उपन्यास परिसमाप्तिकी ओर जाता है। साधारणतः दो विस्मयजनक अप्रत्याशित घटनाएँ उपन्यासमें रहती हैं। एक मध्य भागमें, जहाँ कहानी चरममें पहुँचती है और एक परिसमाप्तिमें। मध्यभागमें जिस जटिलता या उलझनकी सृष्टि होती है, वह यहींपर सुलझा दी जाती है। 'दत्ता', 'पण्डितजी, देवदास 'बैकुण्ठका दानपत्र 'गृहदाह आदि इस श्रेणीके उपन्यास हैं। इन सब उपन्यासोंमें शरत्चन्द्रने किसी अवान्तर घटनाका समावेश नहीं किया; अथ च उनके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें कहानीकी तन्मयता या दीनता भी नहीं है। 'दत्ता' की कहानी विशेषरूपसे नरेन्द्र-विजया-विलास-बिहारीकी कहानी है। इनके पिताओंके बाल्यजीवनके इतिहासका सूत्र है; किन्तु उस इतिहासमेंसे जो अंश उपन्यासके लिए प्रासंगिक हैं केवल उन्हींका उल्लेख किया गया है। उपन्यासके अन्तिम भागमें नलिनी प्रधानता प्राप्त कर रही थी; किन्तु बहुत जल्दी ही हमें मालूम हो गया कि नलिनीका मन अन्यत्र बँधा हुआ है, और इसीलिए उसे लाया गया है कि विजयाके हृदयमें मिथ्या ईर्ष्याका संचार हो और उसके मनमें छिपी हुई सत्य बात प्रकट हो जाय। 'गृहदाह' उपन्यासमें भी हम देखते हैं कि मृणाल, पचवी, राम बाबूने अपनी निजस्व कहानीके द्वारा उपन्यासको जटिल नहीं बनाया। महिम-अचला-सुरेशकी कहानीमें इन लोगोंका जितना प्रयोजन है, उतना ही स्थान इन्होंने पाया है। उससे अधिक जगह नहीं ली।

और भी एक कौशल ध्यान देनेके योग्य है। 'गृहदाह' और 'दत्ता' के मध्य भागमें जिस जटिलताकी सृष्टि हुई है, वह समाप्त न होनेवाली जान पड़ती है; किस तरह उसका अन्त होगा, इस बारेमें प्रायः अन्ततक अनिश्चितताका रहस्य बना ही रहता है। जब यह जान पड़ता है कि प्रबल बाधा-विपत्तिके रहते भी विजया नरेन्द्रको ही ग्रहण करेगी, तभी हम देखते हैं कि रासबिहारीने सब ठीक कर डाला है और विजया भी समझती है कि उसका छुटकारा नहीं है। लेकिन फिर उसके बाद ही देखते हैं कि धूमकेतुकी तरह उपस्थित होकर नरेन्द्र सब मामला उलट पलट देता है। इस कहानीमें उत्थान-पतन अनेक बार हुआ

है, जब कोई लहर जोरसे ऊँची उठी है, तब उसके बाद ही उसने आवर्त (भँवर) की रचना की है। ब्याहका दिन ठीक हो गया है। कन्याको आशीर्वाद देनेकी रस्म तक पूरी हो चुकी है। एकाएक नरेन्द्रनाथने विजयाके पिताकी चिट्ठीकी बात कहकर उसके चित्तको उद्भ्रान्त कर दिया और दूसरी ओर भी रासबिहारीके साथ विजयाकी तुलना अस्पष्ट हो गई। इसके बाद ही दयालके घर जाकर, नरेन्द्र और नलिनीका संभ्रम देखकर विजया विलास-बिहारीके प्रति अनुकूल हो पड़ी और घर लौटकर बिना आपत्तिके ब्याह-निबाहके इकरारनामेपर उसने हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद नरेन्द्रनाथने फिर उपस्थित होकर सब उलट-पलट दिया। इसी तरह यह कहानी बाधें-बाधें उछलती हुई तिरछी चालसे चली गई है।

गृहदाह' उपन्यासका गठन और भी सुन्दर है। घटनाओंको इस तरह सजाया गया है कि सुरेश और महिमके बीच किसी एक जनके साथ अचला स्थिर होकर नहीं रह सकी। जब जान पड़ा है कि वह एकान्त भावसे महिमपर अनुरक्त है, तभी हम देखते हैं कि उसका प्रतिवेश (आस-पासकी स्थिति) इस तरह रचित हुआ है अथवा अकस्मात् ऐसी कोई घटना घटित हुई है कि वह उसके पाससे हटकर सुरेशके साथ आ मिली है। फिर सुरेशके साथ मिलनेके बाद ही हम देखते हैं कि वह अभिशाप वेगसे विपरीत दिशामें संचालित हुई है। गँवईगाँवकी विरसता, मृणालके सम्बन्धमें ईर्ष्या और महिमकी नीरस उदासीनतासे जब अचलाका मन वितृष्णासे भर रहा था, ठीक इसी समय बाहरसे सुरेशने जोरसे पुकारा—"महिम! कहाँ हो जी!" इसके बाद कई दिनकी खींच-तानके बाद अचला अकस्मात् विद्रोह करके सुरेशके साथ चली आई। किन्तु इसके बाद ही महिम बहुत बीमार हो गया और जिस पतिके विरुद्ध विद्रोह करके अचला उससे अलग हो गई थी, उसीको उसने सेवाके द्वारा फिर प्राप्त कर लिया। किन्तु उसने पतिको पाकर भी नहीं पाया। सुरेशने आकर गड़बड़ मचा दी। जब कठिन संघर्षके बाद उसने सुरेशको आत्मसमर्पण किया है, सुरेशके पास बैठकर पश्चिमकी ओर डिहरीका मार्ग तय कर राम बाबूके घरमें उपस्थित हुई है, तब उसने देखा कि वहाँ महिम मौजूद है। इस प्रकार एकके बाद एक घटना सजाई गई है—कहीं भी अपूर्णता नहीं है, कहीं भी आलस्य नहीं है, कहीं भी विराम नहीं है।

कहानीके गठन-कौशलपर विचार करते समय और भी एक बात याद रखनी होगी। शरत्-चन्द्रने स्वयं एक जगह कहा है कि केवल बाहरकी घटना लगाकर भीतरकी माप नहीं की जा सकती। श्रेष्ठ साहित्यकी रचनामें देखा जाता है कि गोपनतम रहस्यके साथ बाहरकी घटनाका भी बहुत घनिष्ठ योग है। महिमको छोड़कर सुरेश और अचलाका मुगलसराय स्टेशनपर उतरकर डिहरी चले जाना 'गृहदाह' उपन्यासकी सबसे बड़ी आकस्मिक और अद्भुत घटना है। केवल बाहरसे विचार करने पर यह असंभव जान पड़ती है। किन्तु सुरेश शराब पीकर झुमाया हुआ और चंचल है, वह दुःसाहसी और दुर्दमनीय प्रकृतिका मनुष्य है। इसके सिवा उसके इस कुकर्ममें अचलाकी अन्तरतम आत्माका समर्थन भी था। सुरेशने आप ही कहा है—"पतिके घरमें रहते होकर उसके मुँहपर ही तुमने कहा था कि तुम एक पर-पुरुषको प्यार करती हो—इसे क्या तुम भूल गई? जिस आदमीने घरमें आग लगाकर तुम्हारे स्वामीको जला डालना चाहा था—ऐसा तुम्हारा विश्वास है, उसीके साथ तुमने चले आना चाहा था और चली भी आई। याद आता है ?" अचलाके हृदयके अन्तस्तलमें सुरेशके लिए जो समवेदना छिपी हुई थी, वह इस घटनाके बीच प्रकट हुई है। किन्तु आगेकी कहानीमें इस बातका प्रमाण मौजूद है कि यही उसके हृदयकी अन्तिम बात नहीं है। जिस रातको असीम दुर्योगमें अचलाने सती धर्मको तिलांजलि दी थी उस दिनके आचरणमें भी बाहरकी घटना और भीतरके अनुरागके सामंजस्यका परिचय मिलता है। अचला सुरेशको घृणा करनेकी चेष्टा करती थी किन्तु यह भी वह समझती थी कि सुरेशने उसीके लिए अपना सर्वस्व खोया है, उसे आनन्द और आराममें रखनेके लिए उसके मनमें अनन्त व्याकुलता है। इसी कारण जब सुरेश बाहरसे भीगकर आया तब अचला उसके लिए उद्वेग प्रकट किया। उसकी जो अन्तरात्मा सुरेशके प्रति अनुकूल थी वह जाग उठी है और राम बाबूके आग्रहपूर्ण आवेदन और पुनःपुनः अनुरोधने उसे दिशा दिया है। अचलाने अपने मनको समझाया था कि राम बाबूके दबाव तथा मिथ्या सम्मान और अज्ञात भयने ही उसे इस असीम अन्धकारकी राहमें ठेल दिया था। वह नहीं जानती थी कि बाहरकी इस भैरवकी आड़में उसके अपने ही हृदयकी गोपन आकांक्षा और अनुराग मौजूद था। 'दत्ता' में भी यह सामंजस्य खूब विद्यमान है। वनमाली बाबूने विजया

नरेन्द्रनाथको ही दी थी। इसका प्रथम आभास उपन्यासके आरम्भमें ही दिया हुआ होनेपर भी, विजयाने इस विषयके सम्पूर्ण तथ्यको तभी जाना जब मन ही मन उसने नरेन्द्रको पसन्द कर अपना लिया था। रासबिहारीने बाहरसे दबाव डालकर विजयाको बाँध लेना चाहा था लेकिन विजया उसी दिन अपनेको सम्पूर्ण रूपसे उसके हाथमें सौंपनेके लिए प्रस्तुत हुई, जिस दिन उसे निःसंशय रूपसे यह विश्वास हो गया कि विलासबिहारीका अपराध ही सबसे कम है।

इस श्रेणीके जिन अन्यान्य उपन्यासोंका उल्लेख किया गया है वे 'गृहदाह' और 'दत्ता'के समान सुगठित नहीं हैं किन्तु जिस मात्रा-बोध और सामञ्जस्यके ज्ञानने इन दोनों उपन्यासोंके गठन-कौशलको निर्दोष बनाया है, उसका न्यूनाधिक परिचय उनके सभी उपन्यासोंमें मिलता है। केवल 'देना-पावना'में थोड़ी-सी शिथिलता देखी जाती है। 'देना पावना' में बाहरी घटनाके साथ-साथ हृदयकी आसक्ति-विरक्तिका समन्वय अवश्य साधा गया है, किन्तु उसके गठनकी रीति अन्यान्य उपन्यासोंकी अपेक्षा भिन्न प्रकारकी है। कहानीकी चरम संकटमय घड़ी (क्लाइमेक्स) उपन्यासके मध्य भागमें नहीं, प्रारंभमें ही उपस्थित हो गई है, जहाँ षोडशीने जीवानन्दकी शय्या स्पर्श करके नारीत्वका अनुभव किया, उसका पता पाया। इसके बाद वह फिर किसी तरह भैरवीके काममें मन नहीं लगा पाई। कोई कहानी आरंभमें ही चरम (क्लाइमेक्स) पर पहुँच जाय तो उसे परिसमाप्ति तक खींच ले जाना कठिन या बहुत कठिन होता है। इसलिए शरत्चन्द्रने एक उपाय खोज निकाला है। वह है निर्मल चन्द्र और हैमवतीके उपाख्यानकी अवतारणा। जीवानन्दके संस्पर्शमें आकर षोडशीकी जो सोई हुई चेतना झँकार उठकर जाग उठी थी वह निर्मल और हैमकी शान्त तथा स्वच्छन्द जीवन-यात्रा देखकर उद्वेलित हो उठी। जीवानन्द और षोडशीके बीच जो व्यवधान था, वह इन दोनोंकी सहायतासे सम्पूर्ण रूपसे मिट गया। षोडशीने स्वच्छन्दतासे आनन्दके साथ भैरवीकी गद्दी छोड़कर अपने आरंभ किए हुए अधूरे कामका भार जीवानन्दके हाथमें सौंप दिया। जीवानन्दने जो सम्पूर्ण रूपसे षोडशीको आत्मसमर्पण करना चाहा था, उसकी प्रेरणा अवश्य उसके अपने हृदयसे ही आई थी, किन्तु निर्मलके विरुद्ध इन्होंने भी इस प्रेरणाको पुष्ट बना दिया था। उपन्यासके उपसंहारमें हम देखते हैं

कि जीवानन्द अपना काम छोड़कर, षोडशीका हाथ पकड़कर चला गया। पति और पत्नीके इस सम्मिलनमें हैमका उपकार करनेकी इच्छा मौजूद है।

'देना पावना' में दो कहानियाँ हैं। एक जीवानन्द और षोडशीकी और दूसरी निर्मल तथा हैमवतीकी। दूसरी कहानी गौण है और पहली या मुख्य कहानीका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए ही उसकी अवतारणा की गई है। किन्तु शरत्चन्द्रके कई उपन्यासोंमें एकसे अधिक कहानियाँ इकट्ठी हो गई हैं। उपन्यास या नाटकमें एकसे अधिक कहानी एकत्र करनेसे आख्यायिकामें तरह तरहकी जटिलता आ जाती है। समालोचकको देखना होगा कि इन सब कहानियोंमें ऐक्य बनाये रखा गया है कि नहीं। एकसे अधिक कहानीकी अवतारणा करनेसे निःसन्देह आख्यायिका विस्तृत हो जाती है, किन्तु बिखरी हुई असम्बद्ध घटनाओंके बीच एक संयोग-सूत्र स्थापित न कर पानेसे वह कुछ कहानियोंका संग्रहमात्र बनकर रह जाती है। और उन विभिन्न विच्छिन्न कहानियोंकी क्या परिणति होगी इस विषयमें पाठकको कोई आग्रह नहीं रहता। 'चरित्रहीन' 'बामनकी बेटी' और शेष प्रश्न—इन तीन उपन्यासोंमेंसे प्रत्येकमें शरत्चन्द्रने दो-दो कहानियोंकी अवतारणा की है। अरुण और सन्ध्याके प्रणय और विवाहका प्रस्ताव बामन-की बेटी की प्रधान कहानी है। ज्ञानदाकी वेदनामयी आख्यायिकाका स्थान गौण है, किन्तु वह भी एक सर्वांगपूर्ण कहानी है। इसके साथ अरुण और सन्ध्याके विवाह प्रस्तावका कोई लगाव नहीं है। 'शेष प्रश्न' उपन्यासका आरम्भ शिवनाथ और कमलका ब्याह होनेके बाद हुआ है और कुछ ही समयके बाद अजित और मनोरमाके विवाह-प्रस्तावका उल्लेख किया गया है। किन्तु उपन्यासके आगे पढ़ते-न-पढ़ते ही हम देखते हैं कि शिवनाथ और कमलका शैवमतसे हुआ विवाह टूट गया है—सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। शिवनाथ मनोरमाके ऊपर आसक्त हो गया है और अजित कमलको पानेके लिए प्रलुब्ध हो उठा है। यानी दोनों कहानियाँ जैसे विच्छिन्न हो गई हैं—एक कमल और अजितकी कहानी और दूसरी शिवनाथ और मनोरमाकी कहानी। 'चरित्रहीन' उपन्यासमें इस प्रकारकी विच्छिन्नता और भी अधिक स्पष्ट है। पहले हम देख पाते हैं कि सतीश और सावित्रीकी आख्यायिकामें उपेन्द्रका स्थान नहीं है। इसके बाद उपन्यासके दो प्रधान नारीचरित्र—किरणमयी और

सम्बन्धी—एकदम निःसम्पर्क हैं, एकका दूसरेसे कोई लगाव नहीं है। उपन्यासकी विच्छिन्न घटनाओंको भिन्न दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—भेदीपद किया जा सकता है, उन दोनोंके बीच संयोगका सूत्र कहाँ है?

शरत्चन्द्रने विभिन्न कहानियोंको एकत्र करनेमें अद्भुत निपुणताका परिचय दिया है। उन्होंने दो कहानियोंको एकत्र करनेके लिए किसी तरहकी जबर्दस्ती नहीं की है। कहानियाँ अपनी सहज स्वाधीन राहमें स्वाभाविक गतिसे चलती गई हैं। जान पड़ता है, अलक्षित भावसे स्वतः उनमें ऐक्य आ गया है। यह ऐक्य कृत्रिम नहीं है, अनायास प्राप्त हुआ है। इसका मूल घटनाके समावेशमें नहीं है—एक चरित्रके सहज विस्तारमें है। 'बामनकी बेटी' का प्रधान विषय अरुण और सन्ध्याके विवाहका प्रस्ताव नहीं, प्रियनाथ डाक्टरका चरित्र है। वह हास्य-पेशा, किन्तु स्वस्थबुद्धि डाक्टर सारे उपन्यासमें व्याप्त हुए हैं, और उनकी बिखरी हुई घटनाओंमें ऐक्य लाये हैं। सन्ध्याके वह पिता हैं। उनके चरित्रकी दुर्बलता और महत्त्व कहाँपर है, वह सन्ध्या जानती है। और ज्ञानदाकी रक्षा उन्होंने ही की है। सन्ध्याकी ट्रेजेडीके साथ ज्ञानदाकी ट्रेजेडीका सम्पर्क नहीं है किन्तु उपन्यासके अन्तमें दोनों ही मिलित हुई हैं। कारण, दोनों ही प्रियनाथकी संगिनी हैं। 'शेष प्रश्न' उपन्यासमें यह ऐक्य कमल और आशु बाबूके चरित्रकी विशिष्टतासे आया है। पिछले किसी परिच्छेदमें दिखाया गया है कि कमलके चरित्रके दो पहलू हैं। एक शिवनाथके साथ सम्पर्क-विच्छेदमें और दूसरा अजितके साथ उसके मिलनमें अभिव्यक्त हुआ है। आशु बाबूकी सहज उदारता प्रकाश और हवाकी तरह उपन्यासके ऊपर छाए हुए हैं। कोई उनके प्रभावसे दूर नहीं जा सका। वह कमलको पहचानते हैं, कमलके हृदयमें पैठ गये हैं। उपन्यासकी आख्यायिकामें उन्हें कुछ करनेका नहीं है किन्तु जान पड़ता है, वह अपने सम्भ्रान्त शरीर और उससे भी अधिक विशाल अपार उदार हृदयको लेकर उपस्थित न रहते तो सभी कुछ फीका हो जाता।

'चरित्रहीन' उपन्यासकी कहानी 'शेष प्रश्न' और 'बामनकी बेटी' की कहानियोंकी अपेक्षा अधिक उलझी हुई है—इसकी घटनाएँ बहुत अधिक अलग अलग और बिखरी हुई हैं। सतीश जब संथाल परगनामें जाकर आश्रय

देता है, तब पाठक भी कुछ देरके लिए उपेन्द्र सावित्री किरणमयी आदिको भूल जानेके लिए बाध्य होता है। दिवाकर और किरणमयीके भागनेका और प्रवासका चित्र खींचते समय ग्रन्थकारने अन्य सब चरित्रोंकी जीवन-यात्राके ऊपर पर्दा खींच दिया है। किन्तु आख्यानोंकी अधिकता रहने पर भी इस उपन्यासमें एकताका अभाव नहीं हुआ। इस उपन्यासका नायक चरित्र-हीन सतीश है, किन्तु ग्रन्थके केन्द्रमें स्थित चरित्र है, चरित्रवान् उपेन्द्र। उनके साथ सभीका सम्बन्ध है और उनके चरित्रके परिवर्तनको उपन्यासका केन्द्र मान लें तो इसके संयोगका पता पाना सहज हो जाता है। पहले हम देखते हैं, सावित्रीके साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं है यहाँ तक कि मेसके रसोइया बाबूने सावित्रीके साथ सतीशके कुभावका उल्लेख करके उपेन्द्र बाबूको जो चिट्ठी लिखी थी, उसपर उन्हें विश्वास नहीं हुआ और उसे उन्होंने दबा दिया। उनके मनमें कभी यह सन्देह नहीं हुआ कि उनके सहोदर भाईके तुल्य सतीश कभी ऐसे नीच संसर्गमें आ सकता है। सावित्रीके सम्बन्धमें उनकी विमुखता उस दिन परम अवस्थामें पहुँच गई (चरित्रहीन चौदहवाँ परिच्छेद) जिस दिन कुछ न कहकर वह सुरबालाको लेकर सतीशके डेरेसे चले गये। उपन्यासका पूर्वार्द्ध यहीं समाप्त हो गया। उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्धकी अपेक्षा छोटा है। उसकी समाप्तिमें वह पश्चात्तापके साथ सावित्रीसे कहते हैं—'उस रातको अगर तुम बहन, अपनेको जाहिर करके मुझे चैन्न ले जातीं तो शायद मेरा शेष जीवन इतने दुःखमें न कटता।" फिर इसी सावित्रीके हाथमें अपना अस्यमास काम सौंपकर वह इस संसारसे विदा हो गये। उपन्यासकी दोनों नायिकाएँ—सावित्री और किरणमयी—परस्पर एक दूसरेसे विच्छिन्न हैं, किन्तु इनके बीचमें उपेन्द्र मौजूद हैं। कहानीके प्रारम्भमें हम देखते हैं कि वह किरणमयीके परम आत्मीय हैं; किन्तु सावित्रीके साथ उनका कोई लगाव नहीं है। उपसंहारमें देखते हैं कि सावित्री उनके बहुत निकट आ गई है; किन्तु किरणमयी बहुत दूर हट गई है। यह असम्भव परिवर्तन ही इस विराट् उपन्यासका सूत्र है और उपेन्द्रकी मृत्युशय्याके पास इन दोनों परम अद्भुत रमणियोंने एकत्र होकर कहानीके ऐक्यके प्रति हमारी दृष्टिको आकर्षित किया है।

ऊपर जिन तीनों उपन्यासोंकी आलोचना की गई है, उनके प्रत्येकमें दो दो कहानियाँ मिल गई हैं। 'ग्रामीण-समाज' और 'श्रीकान्त'—इन दोनों उपन्यासोंकी कहानी भी बहुत जटिल और विस्तृत है। इन दोनों उपन्यासोंमें बहुत-से नर-नारी एकत्र हुए हैं। इनका आपसी सम्बन्ध कहीं-कहीं भी गहरा नहीं है। बहुत स्थानोंपर यही जान पड़ता है कि कोई लगाव ही नहीं है। यह अभाव 'श्रीकान्त' उपन्यासमें ही अधिक प्रकट हुआ है। यह मानो एक भ्रमण-वृत्तान्तके ढंगसे रचा गया था। किन्तु थोड़ा विचार करके देखनेसे ही देख पड़ेगा कि वस्तुतः दोनों उपन्यासोंके भीतर भी प्राणका थोड़ा-बहुत ऐक्य है और श्रीकान्तके भ्रमण-वृत्तान्तमें विस्तार और विचित्रता चाहे जितनी हो, उनकी बिखरी हुई घटनाएँ बिलकुल ही असम्बद्ध नहीं हैं। 'ग्रामीण-समाज' में रमा और रमेशके प्रणयने और 'श्रीकान्त' में श्रीकान्त तथा राजलक्ष्मीकी अद्भुत सुन्दर कहानीने अन्य सब घटनाओंको एकत्र कर दिया है। बेनी घोषाल, गोविन्द, भैरव—समाजके इन सब क्रूर अथवा कुटिल-चरित्र लोगोंका चित्र इनमें खूब सजीव हो उठा है। किन्तु ग्रन्थकारने यह भी दिखाया है कि ये (यहाँतक कि बेनी घोषाल तक) उपन्यासोंमें अपना कोई दावा लेकर नहीं आ सके हैं। रमा और रमेशके बीच जो दुरधिगम्य और जटिल सम्बन्ध देख पड़ता है, उसे इन्होंने और भी जटिल कर दिया है। उपन्यासमें यही इनका स्थान और यही इनका दावा है। विश्वेश्वरी भारतवर्षकी रहनेवाली हैं—उपन्यासमें इनका चरित्र या चित्र सम्पूर्ण रूपसे वास्तव नहीं हो पाया लेकिन तो भी यह उसी जगह सबसे अधिक सजीव हो उठी हैं, जहाँ वह रमा और रमेशके सम्बन्धको समझ पाई हैं। रमेशके जीवनकी एक ऐसी दिशा है जिसके साथ रमाका लगाव कम है। यह है उसकी ग्राम-सुधारकी चेष्टा। उपन्यासकी केन्द्रीय या मुख्य कहानीके साथ इसका योग-सूत्र खूब स्पष्ट और सहज न होनेके कारण रमेशके जीवनका यह पहलू खूब प्रत्यक्ष और स्पष्ट नहीं हो सका।

'श्रीकान्त' की कहानीमें असाधारण विचित्रता है और उसमें अगणित नर-नारी भीड़ किये खड़े हैं। ये अपने अपने प्रयोजनसे उपन्यासमें आये हैं और चले गये हैं। किसीके साथ किसीका लगाव नहीं है। वर्तमान कालमें जो ढंग उपन्यास लिखनेका रिवाज चल पड़ा है। रोमाँ रोलाँके जॉन क्रिस्टोफर, दास्तयफके

युडेन हुस्स और दि मैजिक माउंटेन तथा रेमेंडके पीसेंग्ट आदिका समान सभी पाठकोंको भायेगा। केवल कलेवर अथवा घेरेके विस्तारकी दृष्टिसे विचार करने पर भी 'श्रीकान्त' की तुलनामें ठहरनेवाले उपन्यास विरले ही हैं। अब च, जो विस्मयकी बात यह है कि इस विचित्रतामें भी ग्रंथकार अपना मूल सूत्र नहीं खो बैठे—कोई एक क्षुद्र उपाख्यान या कोई एक विच्छिन्न चरित्र अपनी सीमाके बाहर नहीं गया। केवल इन्द्रनाथ और अन्नदा दीदी ही अपने जीवनकी परिसमाप्तिका पता न दे गये हों—यह बात नहीं है, अन्यान्य छोटेसे छोटे चरित्रोंने भी इस संयमका परिचय दिया है। मोती सिपाहीकी कन्या अपने पिताके घर जा पाई कि नहीं 'नये दादा' विपुदी हुए हैं कि नहीं, जो भाग्यकर्मोसंबंधिनी स्त्री निष्ठुर बंगाली युवकके द्वारा ठगी गई वह किस तरह इस निष्ठुर व्यवहारको सहन करेगी विमल जीवनकी तरह नन्द मिस्त्री भी प्यारेके पाससे सिंगल पा सका कि नहीं—इन सब बातोंको ग्रन्थकारने सम्पूर्ण रूपसे कम देना नहीं चाहा।

श्रीकान्त-राजलक्ष्मीके प्रणयके इतिहासने आदिसे अन्त तक अपनी प्रधानताको बनाये रखा है और अन्यान्य छोटे आख्यानोंने इसी कहानीको परिपुष्ट किया है। राजलक्ष्मीने अभया दीदी और अभयाको नहीं देखा, किन्तु उनकी कहानीके साथ अपनी समस्याका समाधान देखा है। मन्त्र पढ़कर पाये गये पतिके प्रति उसकी जो भक्ति थी, उसे अन्नदा दीदीकी कहानीने और भी अधिक जोरदार कर दिया है, अभयाने विद्रोहके स्वरका संचार किया है, सुनन्दाने धर्म-निष्ठाका आग्रह दिया है, और शिशु पण्डितका मन्त्र सुनकर राजलक्ष्मीके मनमें मन्त्रकी सजीवता या सार्थकताके संबंधमें सन्देह उत्पन्न हो गया है। श्रीमान् बंकूने राजलक्ष्मीके अक्षुण्ण मातृत्वको खुराक पहुँचाई है। किन्तु बादमें यह देखा गया कि इन बच्चोंको पालनेके मिथ्या मातृत्वके मिथ्याडंबरसे राजलक्ष्मीका काम नहीं चला—उसकी मातृत्वकी भूख नहीं मिटी—वैसे ही बंकू गौण हो गया। इसी तरह प्रायः प्रत्येक कहानीके साथ श्रीकान्त और राजलक्ष्मीका संयोग स्थापित हुआ है। इस ग्रन्थका चौथा पर्व बहुत नीरस है। इसका प्रधान कारण यह है कि मूल कहानीके साथ इसके छोटे-छोटे आख्यानोंका सम्बन्ध सहज नहीं है। पुँटूका

लेकर जो कहानी तैयार हुई है वह असंलग्न नहीं है। कारण, इसमें जिन्हें एक बार अलग कर दिया था, वे श्रीकान्तके विवाहके प्रस्तावमें ही फिर मिलित हुए थे (श्रीकान्त, द्वितीय पर्व पञ्चम परिच्छेद) और सुनन्दा तथा गुरुजनने जो आग लगाई थी, वह पुँछकर मालस हट गई। यह आख्यायिका असंलग्न न होने पर भी इसमें पुनरुक्ति दोष आ गया है। कमललताकी आख्यायिकाके साथ मूल कहानीका अपेक्षा बहुत ही अल्पसी है। कमललताके विरुद्ध राजलक्ष्मीको कोई सचमुच ईर्ष्या नहीं है। कारण, राजलक्ष्मी वैवाहिक अन्तस बनी हुई है। अतएव वह जानती है कि अब चाहकर आगे गए भी ही श्रीकान्तको उसके पाससे दूर हटा ले जा सकती है। यह सन्देह कभी स्वप्नमें भी राजलक्ष्मीके मनमें आ नहीं सकता कि श्रीकान्त किसी और स्त्रीपर आसक्त होगा। अगर ऐसा होता तो इन वार्तोंके अध्यक्षका प्रेम और विभिन्न इतिहास मिथ्या हो जाता। वास्तवमें भी देखा जाता है कि राजलक्ष्मी और कमललताके बीच थोड़ेमें ही मेल हो गया और संगीतके विषयमें जो प्रतियोगिताका आभास है, उसमें हम राजलक्ष्मीको नहीं पाते जो 'पियारीबाई' बिलकुल मर गई थी, वही फिर जैसे जीकर जाग उठी है, ऐसा जान पड़ता है। कहानीके उपसंहारमें यह पुनरुज्जीवन अनुपयोगी और आकर्षणहीन हो गया है। कमललताके साथ राजलक्ष्मीका कोई खास सम्बन्ध नहीं है उसके संस्पर्शमें आकर उसने अपनी समस्याके बारेमें किसी नवीन प्रकाशका पता नहीं पाया। इसीलिए यह आख्यायिका अप्रासंगिक है।

पहलेके तीन पर्वोंमें वर्णित प्रायः प्रत्येक आख्यानके साथ मूल-कहानीका लगाव है किन्तु ऐसी दो-एक कहानी या घटनाएँ हैं जिनके साथ श्रीकान्तका लगाव रहनेपर भी राजलक्ष्मीका कोई लगाव नहीं है। केवल शिल्पकी ओरसे विचार करनेपर इन घटनाओंकी सार्थकता क्या है, यह प्रश्न आप ही मनमें उठता। श्रीकान्त कमजोर महामानव नहीं है। वह राजलक्ष्मीकी अपेक्षा दुर्बल है। राजलक्ष्मी उसे अपने साथ खींचती जाती है। वह उसमें बाधा नहीं दे सका। वह राजलक्ष्मीको अपनी इच्छा या प्रयासके अनुसार नियममें नहीं ला सका। किन्तु श्रीकान्त और राजलक्ष्मीकी कहानी जिस तरह चली है, उसमें श्रीकान्तका दान है। श्रीकान्तने किसी दिन जोर नहीं लगाया, तथापि वह

निःस्व होकर पकड़में नहीं आता। उसकी इस मुक्ततामें ही उसके महत्त्वका बीज छुपा हुआ है। श्रीकान्तको जो राजलक्ष्मीने पाया था, उसका एक प्रधान कारण श्रीकान्तके चरित्रका प्रशस्त और उन्मुक्त होना था। यह चरित्रकी प्रशस्तता उसकी विविध अभिज्ञताओंसे आई थी। अतएव इस विचित्र अभिज्ञताके साथ मूल आख्यायिकाका परोक्ष संयोग है। संसारके बहुविध चित्रोंको देखकर श्रीकान्तने खरे और खोटेका अन्तर समझना सीख लिया था—उसमें इतनी समझ आ गई थी कि कौन खरा है और कौन खोटा। इस विस्तृत दृष्टिने ही उसके मनमें सांसारिक लाभ-हानिके बारेमें उदासीनता ला दी थी। राजलक्ष्मी श्रीकान्तको पहचानती थी, इसीसे उसने कहा था—"इस (सुनन्दा) के लड़केको यह आशीर्वाद दिये जाओ कि यह बड़ा होकर तुम्हारा ही जैसा मन पावे। इससे बड़ा आशीर्वाद तो मैं और कोई नहीं जानती।"

श्रीकान्त' उपन्यासके प्रथम तीन पर्वोंकी आलोचना करनेसे देखा जायगा कि धीरे धीरे (शरत्के अनजानमें) इसकी रचना-रीति बदलती गई है। इसी कारण, जो लोग इसका प्रथम पर्व पढ़कर विस्मित विमुग्ध हुए थे, वे तृतीय पर्वकी रचना चातुरीको स्वीकार करके भी उसे अपेक्षाकृत निकृष्ट मानते हैं। वास्तवमें ये दोनों पर्व विभिन्न श्रेणीकी रचनाएँ हैं। प्रथम पर्व भ्रमणवृत्तान्तके हिसाबसे रचा गया था। तृतीय पर्व उपन्यास है। प्रथम पर्वमें पियारीबाईका उपाख्यान बहुत-सी कहानियोंमेंसे एक कहानी मात्र है; किन्तु तृतीय पर्वमें भ्रमण-वृत्तान्तकी बात प्रारम्भमें उल्लिखित होने पर भी, वह विशेष भावसे श्रीकान्त और राजलक्ष्मीके प्रणयका इतिहास है। प्रथम पर्वमें गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए श्रीकान्तने अस्वस्थ होकर राजलक्ष्मीको जो खबर भेजी थी, वह पेश बिलकुल ही एक चलन् ख्याल था। किन्तु तृतीय पर्वमें हम देखते हैं कि श्रीकान्त चाहे जहाँ जाय, उसे राजलक्ष्मीका उपग्रह (सिक्सगुम्रा) बनकर जाना होगा। प्रथम पर्व और द्वितीय पर्वका पूर्वार्द्ध भ्रमण-वृत्तान्त है। यह बहुत तेजीके साथ चलता है, इसमें कितने ही लोग आते और जाते हैं, कोई स्थिर होकर बैठता नहीं है, कोई अवान्तर या अप्रधान नहीं है और कोई अत्यन्त आवश्यक भी नहीं है। तृतीय पर्वमें कहानीकी वह द्रुत गति नहीं है। श्रीकान्त और राजलक्ष्मीके बीच मनका आदान-प्रदान बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है। यह मन्थरगति उपन्यासके लिए गौरवकी बात है; किन्तु भ्रमणवृत्तान्तमें

उपयोगी नहीं है। तृतीय पर्वमें भी घटनाक्रमकी बहुलता है किन्तु अवान्तर कथाओंका वह अपना मोह नहीं है। वज्रानन्द सुनन्दा, कुशारी कि स्त्रीपा महाराज और चक्रवर्तीकी घरवालीने भी श्रीकान्त-राजलक्ष्मीके प्रणयके इतिहासको समृद्धिशाली बनानेके लिए ही उपन्यासके भीतर स्थान पाया है। इनके अपने जीवनमें चाहे जो तात्पर्य क्यों न रहे, यहाँ वे एकदम गौण हैं। ये सब कहानियाँ यद्यपि श्रीकान्तकी अभिरुचिकी विचित्रताका परिचय देती हैं, किन्तु यहाँ उनमें प्रथम पर्वमें वर्णित कहानियोंकी सरसता नहीं है। श्रीकान्त और राजलक्ष्मीके मनका जो विश्लेषण यहाँ दिया गया है, उसकी गहराई और स्वच्छता नष्ट हो गई है। तृतीय पर्व प्रथम पर्वकी अपेक्षा निकृष्ट नहीं है। वह दूसरे ही प्रकारकी—भिन्न जातिकी रचना है।

१३—रचना रीति या शैली

१

शरत्चन्द्रकी रचना-रीति या स्टाइलके माधुर्यकी सर्वत्र उच्च कोटिकी प्रशंसा हुई है। जो लोग शरत्चन्द्रके उपन्यासोंकी कहानी अथवा भावको श्रेष्ठ नहीं स्वीकार करते वे भी उनकी शब्द-सम्पत्ति और रचनासौष्ठवको शिरोधार्य करते हैं। शरत्चन्द्रने नारी-हृदयके गहरेसे गहरे अन्तस्तलमें प्रवेश करके उसकी छिपी कहानीको प्रकट करनेकी चेष्टा की है अतएव उनकी रचनामें भावोंकी भरमार रहना स्वाभाविक है। उनकी अपेक्षाकृत कच्ची रचनाओंमें उच्छ्वासकी अधिकता है; किन्तु उनकी श्रेष्ठ रचनाओंमें जो माधुर्य है वह संयमका माधुर्य है। जान पड़ता है, हृदयके रहस्यने अपनेको प्रकट किया है; किन्तु अपनेको खाली नहीं कर डाला। शरत्चन्द्रकी नीति संयम-विरोधी नीति है; उनकी भाषा संयत और शान्त है। उनकी श्रेष्ठ रचनाओंमें विशुद्ध मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, अद्भुत इंगित है, विश्व-प्रकृतिके साथ गहरी सहानुभूति है; किन्तु जो उच्छ्वास अपनी असमर्थ अभिव्यक्ति ही अपनेको निःशेष कर डालता है, उसका परिचय नहीं है।

'देवदास' उपन्यास शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका श्रेष्ठ निदर्शन नहीं है। इसमें भाव-प्रवणताका यथेष्ट परिचय है। किन्तु इसके भीतर भी शरत्चन्द्रकी प्रतिभाकी विशेषता झलकती है। ७वें परिच्छेदमें हम देख पाते हैं कि पार्वती रातके एक बजे देवदासके शयन-कक्षमें प्रवेश करती है। कुमारी अपने सारे संकोचको धता बताकर अपने प्रेम-पात्रसे अपने मनकी बात कहनेके लिए आई है। उसके व्यवहारमें उच्छ्वास, आतिशय्य और निर्लज्जताकी ही प्रत्याशा की जा सकती है।

किन्तु उसकी सबसे अधिक वेदनासे भरी मूर्तिमें असीम संयम और अन्तःस्पर्शी गम्भीरता पाई जाती है। देवदासने उससे प्रश्न किया—' इस क्या तुम समझाने भर न आओगी ?" पार्वतीने बिना किसी संकोचके उत्तर दिया — मन अवश्य जाता, अगर मैं निश्चित रूपसे यह न जानती कि मेरी सारी बातोंपर तुम परदा डाल दोगे।" इस भर बात पर जब निरादरकी सम्भावना स्पष्ट हो गई तब उसने कहा— देव दादा, नदीमें कितना पानी है ! इतने पानीमें भी क्या मेरा कलंक न दब जायगा ?" पार्वती आवेगके भावनाका मूल इस है अथवा आपके बाहर बाहर हो गई है किन्तु उस आवेगको उसने धीर स्थिर संयत भावसे प्रकट किया है।

'विराज बहू' और एक अपरिचित उपन्यास है। इसमें इने-गिने उपन्यासोंकी तरह नहीं है। किन्तु इस उपन्यासकी कुछ पंक्तियोंमें नारीके मनका असाधारण परिचय मिलता है। विराज कहीं लापता हो गई है, अनेक लोग तरह तरहकी बातें करते हैं, नीलाम्बर दुःख और पश्चात्तापसे भीतर-ही-भीतर जल रहा है। उस सबसे अधिक पीड़ा अपनी छोटी बहन पूँटीके अभियोगसे पहुँचती है। किन्तु उसका आवेग शान्त, आडम्बर-हीन भाषामें इस प्रकार प्रकट हुआ है— "ना अब और न कह। वह बड़ी गुरुजन है।—केवल नातेमें ही नहीं पूँटी उसने मुझे माँकी तरह पाला-पोसा है और माताके समान हो गई है। दूसरे जो जीमें आवे, कहें, किन्तु तेरे मुँहसे ऐसी बात निकलनेसे घोर अपराध होता है।" इसके बाद विराज लौट आती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। विराजकी अंतिम घड़ीमें पूँटी और मोहिनी (विराजकी देवरानी) शोकसे विह्वल और विकल हो उठती हैं, किन्तु विरह-व्यथित नीलू (विराज) मृत्युके पहलेकी घड़ी तक निर्विकार रहता है। पूँटीकी समझ उसपर पड़नेपर विराज कह उठी — "तुम बड़ेहो, बिना नहीं।" यह प्यार और स्नेहकी किरणें, यह पुराना मंगलमय, यह क्षणिक झाप—इसीके भीतर विराजका अतीत जीवन मैंके सरलताकी तरह सामनेसे गुजर गया—वह अतीत, जिसमें दारिद्र्य नहीं था, मातृत्वमें विरोध न था, पश्चात्ताप न था। ये थोड़ेसे शब्द जो विराजके मुँहसे निकले, बहुत ही साधारण हैं, किन्तु अद्भुत इंगितसे परिपूर्ण हैं।

शरत्चन्द्रकी श्रेष्ठ रचनाओंमें यह संयम और भी अधिक स्पष्ट और कलात्मकताका परिचायक हुआ है। 'दत्ता' की नायिका विजया मनकी गुप्त बात संकोचकी बाधाके कारण प्रकट नहीं कर पाती। उसका यह संकोच प्रेमिकाके स्वभाव-सिद्ध संयमका परिचय देता है। इस प्रेमकी कल्पना बहुत गहरी या व्यापक नहीं है; किन्तु इसका आर्ट खूब ऊँचे दर्जेका है। विजयाके हृदयका आवेग अनेक बाधाओंके भीतरसे प्रकाशित हुआ है, इसीसे इसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त मनोहर हुई है। राजलक्ष्मी श्रीकान्तको सम्पूर्ण भावसे आत्मसमर्पण नहीं कर पाती। कभी कभी उसके हृदयकी प्रवृत्ति दुर्बल हो गयी है, किन्तु तब भी लेखकने संयमकी सीमाका अतिक्रमण नहीं किया। वह कभी विशेष प्रकृतिके मौन सत्यके प्रति संकेत करके थम गये हैं, कभी राजलक्ष्मीकी अत्यन्त गहरी प्रणयकी भावनाओंको अति तुच्छ कार्यके द्वारा प्रकट कर गये हैं, और जब कभी बातचीतहीके द्वारा उसके उमड़ते हुए हृदयका रहस्य प्रकाशित हुआ है तब भी वह अभिव्यक्ति बहु उच्छ्वासकी कृत्रिमतासे बहुत ऊपर रही है। तब भी राजलक्ष्मीने हरएक बात बहुत सोच-विचारकर कही है। हमेशा यह जान पड़ा है कि बातकी आड़में बहुत कुछ बतानेको रह गया है जो बातसे कहीं बड़ा है। कमरानी चक्रवर्तीके घरसे श्रीकान्तके लौट आनेके बाद रातको उसके साथ राजलक्ष्मीकी जो बातचीत हुई थी और पूँटीके साथ ब्याहके प्रस्तावकी खबर पाकर श्रीकान्तको उसने जो पत्र लिखा था—यही राजलक्ष्मीकी प्रकाश-चातुर्यका प्रकृष्टतम निदर्शन है। किन्तु गंगामाटी गाँवमें राजलक्ष्मीने श्रीकान्तके आगे अपने मनकी बात जिस तरह खोलकर कही है, उससे हम देख पाते हैं कि वह केवल प्रकट अनुभूतिके आगे आत्मसमर्पण नहीं करती। श्रीकान्तके उद्देश्य-हीन कर्महीन जीवनकी दीनताके सम्बन्धमें वह पूरे तौरसे सजग है। वह अपनेको कर्तव्यके साथ सूक्ष्म दृष्टिसे रत्ती-रत्ती विचार करके देखना चाहती है। अनुभूतिको वह बुद्धिके द्वारा ग्रहण करना चाहती है, और जब हृदयके उद्दाम आवेगको किसी तरह छिपा रखनेमें असमर्थ होती है, तब वह आवेग शान्त, संयत भाषामें प्रकट होता है। यथा—'तीर्थयात्रा मैंने की थी, किन्तु देवताको नहीं देख पाया। उनके बदले केवल तुम्हारा म्लान-सूखा निरानन्द मुख ही दिन-रात नजर आया है। मेरे लिए तुममें बहुत कुछ सोचना

पड़ा है; किन्तु अब और नहीं सोचा था, तुम्हारे ही लिए यह बात तुमको नहीं बताऊँगी; मगर आज मुझसे कहे बिना नहीं रहा गया।" राजलक्ष्मीने श्रीकान्तको जो चिट्ठी लिखी है, उसमें अलंकारोंकी अधिकता है, किन्तु उच्छ्वासका आधिक्य नहीं है। जान पड़ता है कल्पनाके ऐश्वर्य और भाषाके अलंकारने राजलक्ष्मीके हृदयको गौरवान्वित किया है।

शरत्चन्द्रके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें 'चरित्रहीन' चिन्तनकी प्रखरतामें और कल्पनाकी सात्त्विकतामें असाधारण है किन्तु रचना-सौष्ठवमें यह अपेक्षाकृत निकृष्ट है। कारण, इसमें भाषाकी संक्षिप्तता और संयम नहीं है। सतीश किरणमयी [illegible] और उपेन्द्र, यहाँ तक कि सावित्री भी अधिकांश समयमें सरल, सहज, संयत भाषासे अपने मनकी बात प्रकट नहीं कर सकती। 'गृहदाह' का शिल्पकौशल निर्दोष है। सुरेश दुर्दमनीय प्रकृतिका आदमी है, किन्तु अचला और महिम शान्त और संयत हैं। अचला अनेक बार मुसीबतोंमें पड़ी है, किन्तु उसके हृदयके भावको बाहर प्रकट करनेमें कहीं सीमाका अतिक्रमण नहीं किया गया—कहींपर भाषाके संयमका बन्धन शिथिल या नष्ट नहीं हुआ। सुरेश और केदार बाबू जब महिमके आचरणकी गोपनीयताको लेकर आलोचना कर रहे थे, उस समय अचलाने एक शब्द भी नहीं कहा किन्तु बादको देखा गया कि महिमके देश और पारिवारिक अवस्थाके सम्बन्धमें, यहाँतक कि सुरेशके साथ उसके सम्बन्धकी सभी बातें वह कम बोलनेवाली रमणी अच्छी तरह जानती है। सुरेशको अपने जामाताके पदपर वरण करके केदार बाबू बहुत उल्लसित थे और सुरेश भी अचलाके हृदयको जीतनेकी प्राणपणसे चेष्टा कर रहा था। अचलाने सुरेशको अपनी इच्छा बताई है; किन्तु कुछ समयके बाद ही देखा गया कि सुरेश और केदार बाबूके आनन्द उत्सवके बीच तरुणी अचला केवल महिमकी ही प्रतीक्षामें एक-एक करके दिन गिन रही है। महिमके हाथमें अँगूठी पहनाते वक्त उसने थोड़ा-सा अति नाटकीय व्यवहार किया था; किन्तु उसका वह आचरण असहाय नारीका एकमात्र सहारा था। और उसने केवल अँगूठी ही पहना दी है; बहुत बोलकर अपनेको हल्का नहीं किया। सुरेशके प्रति उसका जो अनुराग या आकर्षण था, वह भी प्रकट हुआ है अलक्षित भावसे, छोटी बात या साधारण व्यवहारमें, कण्ठस्वरकी अप्रत्याशित स्निग्धतामें, गम्भीर

बैठनेके ढंगमें अथवा कातर अनुनयमें या जिज्ञासामें। शरत्चन्द्रकी श्रेष्ठ कहानी 'महेश' में रचना-संयमका श्रेष्ठ परिचय मिलता है। इस कहानीकी ट्रेजेडी महेशकी मौन वेदना और गफूरकी मौन सहनशीलताके बीच प्रकाशित हुई है। महेशकी मृत्युके बाद गफूरने अपने मनकी बात प्रकट की है, किन्तु उसके अभिशापकी व्याख्या वक्तव्यसे नष्ट नहीं हो गई है।

शरत्चन्द्रकी विविध रचना-रीतिका परिचय रमणीके रूपका वर्णन करनेमें मिलता है। उनके उपन्यासोंकी अधिकांश नायिकाएँ रूपवती हैं। किन्तु शरत् बाबूने उनके रूपका लम्बा-चौड़ा वर्णन नहीं किया। पहले तो उन्होंने दो-एक वाक्योंमें ही उनके रूपका सहज सरस वर्णन किया है, बादको तरह तरहकी *अवस्थाओंमें तरह तरहके लोगोंके ऊपर उसी रूपके प्रभावके प्रति इशारा* करके उसे सजीव बना दिया है। कमला दीदीका वर्णन उन्होंने केवल दो वाक्योंमें किया है—"जैसे राखसे ढकी हुई आग हो। जैसे युगयुगान्तरव्यापी कठोर तपस्या पूरी करके वह अभी आसनसे उठकर आई है।" भारतीका वर्णन बहुत ही संक्षिप्त है। "काली दुबली है, गला बहुत मीठा है और गाना जानती है।" इसके बाद धीरे धीरे उसके रूपकी विशेषता प्रकट होती गई है। शरत् बाबूके वाक्योंसे फूटकर निकलनेवाली चाँदनीके समान निर्मल हास्यसे उसके कानोंके येरन (इयर रिंग) तक उद्भासित हो उठते हैं। उसके श्याम घनकुन्तल भरे केशोंपर अस्त होने जा रहे सूर्यकी स्वर्ण आभा पड़नेसे अपूर्व शोभा फैलती है और उसके चमकते हुए गोरे गालोंपर बही हुई आँसुओंकी धारा ढलकर फूलकी तरह खिल उठती है।

अक्सर शरत्चन्द्र रमणीके रूपका सीधे सीधे वर्णन न करके दूसरेके ऊपर उसका प्रभाव दिखाकर रूप-माधुरीकी ओर हमारी दृष्टि आकर्षित करते हैं। विजया सुन्दरी है। उसकी सुन्दरता इतनी मनोहर है कि नरेन्द्र मुग्ध होकर कह उठा—"मैं निश्चयसे कह सकता हूँ कि जो चित्र बनाना जानता है उसीका मन आपका चित्र खींचनेके लिए व्याकुल हो उठेगा।" यह खुशामदकी बात नहीं है—यह सौन्दर्यके चरणोंमें एक निष्कपट मनका स्वार्थ-गन्ध-हीन निष्कलुष स्तोत्र है। किरणमयीका रूप देखनेका रूप कैसा है—वह मुग्ध भी करता है और विकृत करनेकी आकांक्षाका ईंधन भी बन जाता है। नहीं जानते,

शरत्चन्द्रने महाकवि होमरका अनुसरण किया है कि नहीं; किन्तु किरणके रूपका वर्णन बहुत संक्षिप्त है—अधिक नहीं है, यही कहना ठीक होगा। जो कोई उस रूपको देखता है वही कमसे कम क्षण भरके लिए विभ्रान्त किञ्चित् हुए बिना नहीं रहता। और हारान बाबू जैसे निष्ठावान् ब्राह्म ([illegible]) थे, यह हम तभी स्पष्ट समझ पाते हैं जब सोचते हैं कि इस परमसुन्दरी स्त्रीके साथ वह गुरु और शिष्याके सम्बन्धको छोड़कर और किसी तरहके सम्बन्धकी कल्पना नहीं कर सके। अवश्य असाधारण सुन्दरी नहीं है किन्तु तीसरे पहर जब सूर्यकी स्वर्णाभ किरणें पश्चिमकी खिड़कीसे होकर घर भरमें बिखर गईं, तब इस तरुणीका कुछ छरहरा कृश शरीर उस प्रकाशसे उद्भासित हो उठा और उसस मुग्ध मुग्ध हो गया।

शरत्चन्द्रके अनेक उपन्यासोंमें एक नीतिका सहारा लिया गया है। साधारणतः नायक-नायिकाका (विशेषरूपसे नायिकाका) पहलेका एक इतिहास रहता है, जिसके साथ उपन्यासमें वर्णित कहानीका सम्बन्ध रहता है। उस पहलेकी कहानीका विस्तृत वर्णन देकर पाठकके धैर्यकी परीक्षा नहीं ली जाती। पियारी बाईजीके भीतर राजलक्ष्मी किस तरह छिपे-छिपे अपनेको बचाये हुए थी; ठीक किस अवस्थामें श्रीकान्तकी 'दादा' अन्नदाका ब्याह हुआ था और किस तरह मिर्जाके भीतर ढकी गई अन्नदा शेष हुई थी; मसने दासीका काम करनेके पहले जातियोंने क्या किया था—इन सब बातोंका विस्तृत विवरण देकर शरत्चन्द्रने अपने उपन्यासोंको भाराक्रान्त नहीं किया। उपन्यासमें पाठकका कौतूहल बना है और उस कौतूहलको उन्होंने आभासमें इंगितसे, दो-एक संक्षिप्त संवादोंकी सहायतासे परितृप्त किया है किन्तु सम्पूर्ण रूपमें निवृत्त नहीं किया, नायिकाका जीवनका पूर्व-इतिहास रहस्यमय ही रह गया है। हम उसकी गुप्त महिमाका अनुभव कर सकते हैं; किन्तु स्पष्ट करके नहीं देख पाते। 'श्रीकान्त' के प्रथम पर्वमें शरत्चन्द्रके शिल्पका यह संक्षिप्तता और संयम नष्ट हो गया है। वहाँ हम देखते हैं, श्रीकान्तसे होड़ करके राजलक्ष्मी अपने विगत जीवनका वृत्तान्त ब्योरेके साथ कहती है और यह भी देख पाते हैं कि राजलक्ष्मी केवल सुन्दर सुकण्ठ बाईजी ही नहीं है, वह एक पक्की व्यापारी औरत

थी है। श्रीकान्तको इस कहानीके सुननेका आग्रह नहीं था और हम लोगोंके मनमें भी वह केवल कौतुक ही उत्पन्न करता है।

शरत्चन्द्रकी रचना-रीतिका एक प्रधान गुण यथार्थ-चित्रण है। शरत्चन्द्रकी अनुभूतिके साथ रोमांटिक कविकी अनुभूतिका सादृश्य है; किन्तु उनका विश्लेषण भिन्न-भिन्न रूपके विश्लेषण और अणु परमाणु तक पर्यवेक्षण करनेकी शक्तिने उन्हें रियलिस्ट या वस्तु-तान्त्रिक साहित्यिक पदका अधिकारी बना दिया है। उनकी भाषामें इस विशेषताकी छाप मौजूद है। बंगलाका प्रथम उल्लेख-योग्य उपन्यास 'आलालेर घरेर दुलाल' बोलचालकी चलती भाषामें लिखा गया था। किन्तु यह उपन्यास ग्राम्यविशेषोंसे भरा हुआ है। इसके लिए साधु भाषा उपयोगी न होती। बंकिमचन्द्रकी भाषा सहज, सरल, स्वच्छन्द है। उसमें अनावश्यक गाम्भीर्य नहीं है। किन्तु वह भी संस्कृत-शब्द-बहुल अवश्य है। वह दैनंदिन जीवन-यात्राके चित्रके लिए उपयोगी नहीं है। इस भाषामें भ्रमर, सूर्यमुखी आदि आदर्श-लोक-वासिनी नारियोंका चरित्र अभिव्यक्त हो सकता है; किन्तु साधारण जीवनकी कोई कहानी अगर इस भाषामें लिखी जाय तो उस कहानीका साधारणपन नष्ट हो जायगा। रवीन्द्रनाथने बोलचालकी ठेठ भाषाका समर्थन किया है; किन्तु उनका गद्य एक कविका गद्य है। अतएव उनकी भाषा उपन्यासमें तभी सुन्दर हुई है, जब वर्णनपर कल्पनाका रंग चढ़ा है अथवा कथोपकथन तीव्र बुद्धिके प्रकाशसे उज्ज्वल हो उठा है। शरत्चन्द्रके गद्यमें प्रचलित भाषाने सबसे पहले अपना न्यायोचित आसन पाया है, पर न उसने अपने निर्दिष्ट क्षेत्रके बाहर पैर नहीं रखा। उनकी भाषा रोजमर्राकी बोलचालकी भाषा है। उनके चित्र रूप-बाहुल्यके कारण कहीं भी अपने सहज स्वरूपको नहीं खो बैठे। भाषा भाव-प्रकाशका वाहन अवश्य है; किन्तु अनेक समय वह मुख्य बनकर भावके प्रकट होनेमें बाधा डालने लगती है। शरत्चन्द्रने कहीं भी अलंकारोंकी बहुलताके कारण अपने वर्णनको भाराक्रान्त नहीं किया। जान पड़ता है कि जो घटना जिस तरह घटित हुई है, वह ठीक उसी तरह शरत्चन्द्रके उपन्यासमें रूपान्तरित हुई है, भाषाका ऐश्वर्य उसमें कोई विघ्न नहीं डाल सका। इसका प्रधान कारण यह है कि शरत्चन्द्रकी भाषा स्पष्ट, आडम्बरहीन, दैनन्दिन

जीवनके रससे परिपूर्ण है। इसमें प्रचलित भाषाकी स्वच्छन्दता और स्वच्छता रहने पर भी उस (बोलचालकी भाषा) का हल्कापन और तुच्छता नहीं है। शरत्चन्द्रने अनुभव किया है कि हरएक मनुष्यके जीवनमें ऐसी कुछ घड़ियाँ आती हैं जो अनन्यसाधारण ऐश्वर्यसे मण्डित होती हैं और शरत्चन्द्रने उनके वर्णनमें संस्कृत-बहुल और अलंकारमण्डित भाषाका व्यवहार करके अपनी गहरी यथार्थ-प्रियता ही प्रमाणित की है। वास्तवमें शरत्चन्द्रके स्टाइलका प्रधान गुण यही है कि उसमें यथासम्भव साधु-भाषा और प्रचलित भाषाका समन्वय हुआ है। प्रचलित भाषाकी स्वच्छता और प्रवाह तथा साधु भाषाकी समृद्धिमें उन्होंने सामंजस्य स्थापित किया है।

पहलेके पैराग्राफमें शरत्चन्द्रकी रचनाकी यथार्थतापर ध्यान दिलाया गया है। इस यथार्थताका प्रधान उपकरण अतिसूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति है। दो-एक दृष्टान्त देनेसे ही शरत्चन्द्रका कला-कौशल समझमें आ जायगा। डाक्टर श्रीकुमार बनर्जीने कहा है—"हमारे साहित्यमें नौका-यात्राके वर्णनका अभाव नहीं है। बंकिमचन्द्रके उपन्यासों और रवीन्द्रनाथकी छोटी कहानियोंमें इस विषयके अनेक कवित्वपूर्ण, सूक्ष्म अनुभूतिसे परिपूर्ण विवरण हैं। किन्तु शरत्चन्द्रका इस विषयका वर्णन बिल्कुल दूसरे ही प्रकारका है। उसमें कवित्वका अभाव नहीं है किन्तु कवित्व प्रधान नहीं है। उसमें जो अकुण्ठित यथार्थता है जो प्रत्यक्ष अभिज्ञताका गुण पाया जाता है, वह कवित्वको लाँघकर बहुत ऊँचा उठ गया है।" शरत्चन्द्रका वर्णन जो इतना प्रत्यक्ष और इतना यथार्थ हुआ है, उसका कारण यह है कि उन्होंने तिल-तिल करके इस नौका-अभियानका चित्र खींचा है—प्रथम नाव खोलनेसे लेकर प्रातःकाल पर स्टेशन तक नैसर्गिक और काल्पनिक जितने प्रकारकी अभिज्ञता हुई है, उसमेंसे कुछ भी नहीं छूटा। फलस्वरूप पाठकको सम्पूर्ण चित्र बिल्कुल आँखोंके आगे दिखाई देने लगता है। छिन्नम या श्रीनाथ बहुरूपियेकी कहानी, मँझले दादाका अत्याचार, नये दादाका पाप और उसका प्रायश्चित, प्यारी बाई—इन सबका वर्णन शरत् बाबूकी प्रतिभाका श्रेष्ठ निदर्शन है। शरत्चन्द्रकी सूक्ष्म और तीव्र पर्यवेक्षण शक्तिने इनमेंसे हर एकको सजीव और वास्तव बना दिया है।

शरत्चन्द्रकी वास्तव-प्रियता 'अरक्षणीया' में चरम कोटिको पहुँच गई है।

यहाँ वह सम्पूर्ण रूपसे अन्धकार-वर्जित होकर तीव्र और कठोर हो गई है। ज्ञानदा सब झेलती है। उसकी अनुभूतिके प्रकाशमें शरत्चन्द्रने असमान्तिक संयमका परिचय दिया है। किन्तु उसके प्रतिवेशका वर्णन बिल्कुल और पुंखानुपुंख हुआ है। दारिद्र्यने उसको पीड़ित किया है, मलेरियाने उसके स्वास्थ्यको शोषण कर लिया है, स्वर्णमंजरीने उसका तिरस्कार किया है, उसके प्रेमपात्र अतुलने उसे वंचित किया है और माताका स्नेह भी मृत्यु, शोक और कुसंस्कारसे विराक्त हो गया है। "किन्तु ज्ञानदाका सबकी अपेक्षा असह्य अपमान हुआ उसके अपने हाथसे ही उपस्थित हुआ है, विवाहके बाजारमें अपनेको बचनेके लिए अपने हाथसे की गई व्यर्थ सजावट ही उसकी वह परम लांछना थी।" इस चरम लांछनाके वर्णनमें शरत्चन्द्रने कोई छोटीसे छोटी बात भी नहीं छोड़ी; कहीं इसे हल्का नहीं होने दिया। किस तरह वह अवांछित सम्बन्ध था और बेटीके लिए माताकामी वस्तु बना, कौन-कौन लड़कीको देखने आये, ज्ञानदाने क्या-क्या अद्भुत साज-सज्जा की, मोहल्लेके लड़केने क्या कहा, आसपासकी औरतें किस तरह उपहास करने लगीं, स्वर्णमंजरीने क्या कठोर बात कही, पड़ोसियोंने क्या पूछा, अतुलने क्या सोचा, इन सब बातोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। और इस शुभ्यापालमें जो आदमी चुप था—वह स्वयं ज्ञानदा थी।

अनेक समय दो-एक तुच्छ विषयोंके ऊपर रोशनी डालकर शरत्चन्द्रने चित्रको परिपूर्ण रूपसे वास्तविक बना दिया है। जो बंगाली युवक धर्मदासी एक स्त्रीको ठगकर उसके रुपये और अंगूठी लेकर भाग खड़ा हुआ वह बड़ा ही निष्ठुर और विश्वासघातक था, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु उसका पता मात्र और भी अधिक नीचाशय और हृदयहीन है। इस मनुष्यके चरित्रकी संकीर्णता केवल कुछ शब्दोंमें ही प्रस्फुटित हो उठी है। उसने श्रीकान्तसे गंभीर भावसे कहा—" मर जाना ठहरा, परदेशमें पराई जगह आकर अस्पतालमें दोसे न हो एक चौक पर ही डाला, तो क्या इसीसे हमेशा इसी तरह मारे-मार फिरना होगा! अपने कस्बा पर जाकर चार आदमियोंमें एक आदमी न बनेगा! महाशय यह कौन बड़ी बात है! कभी उमरमें कितने ही आदमी होस्टलोंमें जाकर मुर्गी तक खा जाते हैं..." इस तुच्छताके भीतरसे इस आदमीकी

नीचता और विकृत मनोवृत्तिका जो परिचय प्रकट हुआ है वह एक लम्बा लेख लिखने पर भी इतना सहज और तीव्र न होता।

शरत्चन्द्रके शब्दोंके चुनावमें, उपमाओं और रूपकोंकी उद्भावनामें भी इस यथार्थताकी छाप मौजूद है। उन्होंने नर-नारीके सम्बन्धका गोपन रहस्यको प्रकट करनेकी चेष्टा की है। इसके लिए उन्होंने स्पष्ट, इन्द्रिय-ग्राह्य चित्र खींचनेकी चेष्टा की है। कारण, इसके द्वारा अव्यक्त रहस्य बहुत सहजमें प्रकट हो सकता है। नरेन्द्रनाथके लिए विजयाकी आकांक्षा प्यासकी तरह जागती रहती है। विगत यौवनकी तरह नष्ट सिद्धी भी एक दिन द्वारके पाससे खिसक जा सकता है। अभयाका पति जब श्रीकान्तके पास उपस्थित हुआ, तब उसके मनमें आया, जैसे बर्माके किसी घने जंगलसे एक जंगली भैंसा अकस्मात् बाहर निकल आया है। प्रत्येक कथन संक्षिप्त है, किन्तु बहुत ही यथार्थ है। कारण, वह अभिप्राय प्रत्यक्ष है। बर्मासे लौटकर श्रीकान्त राजलक्ष्मीमें एक उदासीनताका भाव देखकर पीड़ित हुआ, किन्तु डेरेपर जाकर उसके घरकी सजावट देखकर ही उसने राजलक्ष्मीके बहुत गहरे प्रेमका परिचय पाया। उसको जान पड़ा जैसे "मानो नदीमें किसके आरक्त कलंक उच्छ्वासका शब्द मोहानेके पास सुनाई दे रहा है।" इस तरहके अनेक दृष्टान्त यत्र-तत्र भरे पड़े हैं। रूपक और उपमा अलंकारोंकी सहायतासे निगूढ़ रहस्यको स्पष्ट करनेकी शक्ति 'गृहदाह' उपन्यासमें हद तक पहुँच गई है। उसके प्रत्येक चित्रमें संक्षिप्तता और सुस्पष्टताकी पराकाष्ठा देख पड़ती है। सहसा सुरेशकी मृत्युके बाद अचलाका जो वर्णन किया गया है, उसका ध्यान आ जाता है। भय नहीं है, भावना नहीं है, कामना नहीं है, कल्पना नहीं है—जहाँ तक देखा जाता है, भविष्यका आकाश केवल शून्यतासे भरा पड़ा है। उसमें कोई रंग नहीं है मूर्ति नहीं है, गति नहीं है, प्रकृति नहीं है, एकदम निर्विकार, एकदम बिलकुल शून्य है।

शरत्चन्द्रकी रचनाकी यथार्थता सर्वजनविदित है किन्तु यथार्थ-प्रियताके साथ जो कवि-महिमा जमी हुई है, उसपर सबकी दृष्टि नहीं पड़ती। श्रीकान्तने कहा है कि उसे भगवान्ने कल्पना और कवित्वका लेश भी नहीं दिया। किन्तु यह बात सच नहीं है—श्रीकान्तके सम्बन्धमें भी नहीं और उसकी सृष्टि करने-

वालेके सम्बन्धमें भी नहीं। विश्व-प्रकृतिकी महिमाके ऊपर शरत्चन्द्रकी दृष्टि हमेशा लगी रही है। इस दृष्टिमें रवीन्द्रनाथकी दृष्टिकी तरह विराट् विस्तार नहीं है; किन्तु असाधारण तीक्ष्णता है। उन्होंने विश्व-प्रकृतिके भीतर मानव-हृदयकी बहुत गहरी वेदनाका प्रतिबिम्ब देख पाया है और उसीने विश्व-प्रकृतिको सजीव कर दिया है। अन्धकारसे ढकी हुई रातने पियारी बाईजीका हृदय-विदारक रुदन देखकर शायद परितृप्ति प्राप्त की थी; किन्तु चरम निराशाके बोझसे दबे हुए हृदयको लेकर विजया जब रासबिहारीके घरसे बाहर निकली, तब वह बाह्य प्रकृतिमें अपने हृदयका प्रतिरूप ही देखने लगी। उसे जान पड़ने लगा कि उसके पैरोंके नीचेकी दूबसे लेकर पास या दूर जो कुछ देखा जाता है — आकाश, मैदान, दूसरे गाँवकी अस्पष्ट वनरेखा तक, सब सभी कुछ जैसे चुपचाप चाँदनीमें खड़े-होकर अवसन्नसे हो रहे हैं। किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है, परिचय नहीं है। कोई जैसे उनको सोते समय स्वतन्त्र जगत्‌से उखाड़ लाकर इधर उधर डाल गया है—अब तन्द्रा टूटनेपर वे परस्पर एक दूसरेके अनजाने मुखकी ओर अवाक् होकर ताक रहे हैं।” फिर विजयाके सुखके दिनमें विवाह मण्डपमें उसके लज्जित मुखके ऊपर दक्षिण पवन और आकाशकी चाँदनी एक ही साथ उसके सर्वांगपर माता-पिताके आशीर्वादकी तरह आ पड़ी। अभागेके जीवनकी ट्रेजेडीके साथ अन्धकार रात्रिके उन्मत्त दुर्योगका निकट सम्बन्ध है। गफूर जब अपनी प्रार्थना और अभिशाप सुनाकर जन्मभूमिसे विदा हुआ तब जान पड़ता है, इस अलौकिक किसानके प्रति सहानुभूति जतानेके लिए ही आकाश नक्षत्रखचित होकर भी अन्धकारसे ढका हुआ था।

विश्व प्रकृतिके साथ मानव-हृदयका गहरासे गहरा प्रेम हम 'श्रीकान्त' के तृतीय पर्वमें देख पाते हैं। राजलक्ष्मीके अवहेलना करनेपर श्रीकान्तके उद्देश्यहीन, कर्महीन दिन जैसे कटना ही नहीं चाहते थे। “अदूरवर्ती कई छोटे-छोटे बबूलके पत्तोंपर बैठे घुग्घू बोल रहे थे और उस आवाजके साथ मिलकर मैदानकी तपी हुई हवामें कहीं पास ही दोमोंहा बाँसका ताल ऐसा एक ही तरहका शब्द, जो मसानमें दीप-मालाके समान जान पड़ता था, हुआ करता था, जिसमें बीच बीचमें यह धोखा होता था कि यह शब्द शायद मेरे अपने हृदयके भीतरसे ही निकल रहा है।” गंगामाटी ग्रामके

कारावासमें बाहरकी हवा ही एक मात्र बन्धु थी। कारण, वह दूरकी खबर लेकर आई है और छुटकारेका आनन्द देती है। "जान पड़ता है, जैसे मैं कितने ही बागोंके अनाका स्पर्श और कितने ही अपरिचित लोगोंकी गरम साँसका भाग पाता हूँ। हो सकता है मेरा वह बचपनका मित्र इन्द्रनाथ आज भी जीवित हो और वह गर्म हवा शायद अभी अभी उसके शरीरको छूकर आई है। कभी जान पड़ता है कि इसी कोनेकी दिशामें तो अभया देश है। हवाके लिए तो कोई बाधा नहीं है। कौन कहेगा कि यह हवा समुद्र पार करके अभयाके शरीरका स्पर्श मेरे पास नहीं ले आ रही है।"

मानव हृदयके साथ सम्पर्क जिसका न हो ऐसा कोरा प्रकृतिवर्णन शरत् बाबूके साहित्यमें नहीं है। जो दो-एक जगह ऐसा वर्णन है, वहाँ भी शरत्चन्द्रकी रचनाके ढंगकी विशेषता देख पड़ती है। रात्रिके रूपका जो वर्णन उन्होंने दिया है वह असाधारण है। भयावना अन्धकार उनको दूरसे दूर नहीं ले गया। उन्होंने उसके दुरधिगम्य रहस्यको स्पष्ट मूर्तिमान और निकट करना चाहा है। अपार सागर, गहन वन और श्रीराधाके दोनों नयनोंमें भरकर जिस रूपने प्रेमकी वर्षा कर दी—इन सबके साथ तुलना की जानेसे रूपहीन मृत्यु भी अद्भुत रूपसे सजाई गई है, और कविने उसकी बह रही पद-ध्वनियाँ, उसकी सब दुःख और अभावको हरनेवाली अनन्त सुन्दर मूर्तिकी कल्पना की है। जो रहस्यमय है, दुर्ज्ञेय है, दूरस्थित है, वह भी निकट आकर सहज और प्रत्यक्ष हो गया है। यही शरत्चन्द्रके प्रकृति-वर्णनकी विशेषता है। इसमें विस्तारका अभाव रह सकता है, किन्तु इसकी तीव्रता और स्पष्टताको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'श्रीकान्त'के द्वितीय पर्वमें और 'चरित्रहीन'में क्षुब्ध समुद्रका जो वर्णन है उसमें ऊपर किसी वर्णनकी महिमा नहीं है, किन्तु ये दोनों ही वर्णन शरत्चन्द्रकी कवि-प्रतिभाकी गवाही देते हैं। शरत्चन्द्रने समुद्री लहरोंके चमकीले नाच रूपको स्पष्ट प्रत्यक्ष किया है। समुद्रकी सीमाहीनताके बारेमें वे अचेतन नहीं हैं किन्तु समुद्रकी बड़ी बड़ी लहरोंकी सुन्दर विराट् मूर्तिने उन्हें अधिक मुग्ध किया है—' जहाजके ऊपर उद्दाम प्रचण्ड लहरें शुभ्र श्वेत फेनका किरीट मस्तक पर पहने उन्मत्तकी तरह दौड़ पड़ती हैं, टकराती हैं, चूर-चूर

होकर न जाने कहाँ लय हो जाती है—बार-बार उठकर दौड़ी आकर फिर गायब हो जाती है।" (चरित्रहीन)

एक चीज़की बहुत बड़ी ऊँचाई और उससे अधिक विस्तार देखकर ही कुछ यह भाव मनमें नहीं आता क्योंकि ऐसा होता तो इसके लिए हिमालयका कोई भी अंग-प्रत्यंग यथेष्ट होता। किन्तु यह जो विराट् व्यापार सोता-जागता-सा होता आ रहा है, उसकी अपरिमेय शक्तिकी अनुभूतिने ही मुझे अभिभूत कर दिया था।"

"किन्तु समुद्र जलमें धक्का देनेपर जो प्रकाश बार बार चमक उठती है वह अनेक प्रकारसे विचित्र रेखाओंमें इसके सिरके ऊपर अगर लौटती न रहती तो इस गहरी काली जल-राशिकी असीमताको इस अंधकारमें मैं शायद इस तरह देख न पाता। इस समय जितनी दूर तक दृष्टि जाती है उतनी दूर तक इस प्रकाश-माल्य (नक्षत्रपुंज) ने जैसे छोटे-छोटे दीपक जलाकर इस भयंकर सौन्दर्यका मुख जैसे मेरी आँखोंके सामने खोल दिया।" (श्रीकान्त—द्वितीय पर्व)

शरत्‌बाबूकी रचनामें चित्रकल्पनाका जो परिचय पाया जाता है, उसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। उनका गद्य केवल कल्पनासे भरा-पूरा ही नहीं है उसकी गति भी छन्दोबद्ध वाक्यकी गतिके समान सुमधुर है। पहली बात तो यह है कि एक वाक्यके विभिन्न अंशोंमें ऐसा एक सुन्दर सामंजस्य है—तारतम्य है कि पाठक श्रुति-माधुर्य अर्थात् कानोंको मधुर मालूम होनेके गुणसे विमोहित हुए बिना नहीं रह सकता। इस सामंजस्यकी रीतिका एक सरल उदाहरण हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"किन्तु यह न रहना कैसा न रहना है, यह जाना कैसा जाना है इसे स्त्रीजन अधिक कौन जानता है! छात्रिनीसे अधिक किसने देखा है! साथियोंसे अधिक किसने सुना है!"

इस तरहका सामंजस्य शरत् बाबूकी रचनाओंमें बहुत दुर्लभ नहीं है और यह कोशिश करके लाया गया जान पड़ता है - अनायास आया हुआ नहीं। किन्तु उनकी श्रेष्ठ रचनाओंमें यह जो विभिन्न अंशोंमें सामंजस्य स्पष्ट है, वह अतिशय कला-कौशलसे पूर्ण होनेपर भी ऐसा स्वाभाविक सहज है कि जान पड़ता है मानो आप

ही साथ छन्दोबद्ध होकर नाचने लगी है। नीचे दिया गया अनुच्छेद शरत्चन्द्रके रचना-सौष्ठवका एक श्रेष्ठ नमूना है—

'बाहरकी उन्मत्त रात्रि वैसे ही निरन्तर हुई द्वन्द्व मचाने लगी, आकाशमें बिजली वैसे ही बार बार अन्धकारको चीरकर टुकड़े टुकड़े कर डालने लगी, उच्छृंखल आँधी-पानी वैसे ही सारी प्रकृतिको अस्तव्यस्त कर देने लगा- किन्तु इन दोनों अभिशप्त नर-नारियोंके अंधकारमय हृदयतलमें जो प्रश्न गरजता फिरने लगा, उसके आगे यह सब एकदम तुच्छ अकिंचित्कर होकर बाहर ही पड़ा रहा।"

इस वर्णनमें प्रकृतिके साथ मनुष्यके हृदयकी जो तुलना है, वह कवि-प्रतिभाका परिचय देती है। इसकी शब्द-सम्पत्ति प्रशंसनीय है, किन्तु उससे भी अधिक अनुपम है विभिन्न अंशोंका सामञ्जस्य। प्रत्येक वाक्यांशके शब्द भी छन्दोबद्ध वाक्यकी तरह रखे गये हैं। किसी भी अंशका विश्लेषण करनेसे यह माधुर्य अच्छी तरह अनुभव किया जा सकेगा।

आकाशकी बिजली वैसे ही बार-बार अन्धकारको चीरकर। टुकड़े-टुकड़े कर डालने लगी।

इन दोनों। अभिशप्त नर-नारियोंके। अन्धकारमय हृदयतलमें। जो प्रश्न। गरजता फिरने लगा।

शरत्चन्द्रके गद्य-छन्दकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म आलोचना करनेसे देखा जायगा कि इसमें एक और प्रधान उपकरण विशेषणोंका सुष्ठु प्रयोग है। विशेषण विशेष्यके साथ मिलकर पद्यके चरणकी तरह सुविभक्त हो पड़ते हैं। यथा—

"विह्वल यौवनके। स्वप्नमय वसन्त-दिनमें।"

"निन्दित जीवनकी। संचित कालिमा।"

"वह अपरूप अद्भुत नारी-रूप ही। आज। पोशाकीके लज्जाहीन बिखरे केशोंमें। उसके निपीड़ित यौवनके रूखेपनमें। उसकी उन्मादित आँखोंकी शुष्कतामें प्रत्यक्ष।"

"इस मत्त यौवनकी। निर्लज्ज चेष्टाओंकी। उसका छिन्न ग्रंथियों।"

"उस अन्धकारमय नदी-तट। समस्त नीरव मानुषकी। पर। सम्पूर्ण उपेक्षा करके। स्वामिनीकी तरह। ठिठ गयी बात।"

२

शरत्चन्द्रकी स्वतन्त्र अपनी रचना-रीतिकी माधुरीको सब प्रशंसा प्राप्त होने पर भी उनकी रचनामें बहुत-से दोष भी हैं। 'किन्तु' की भरमार है, 'अन्तर्यामी' शब्द जहाँ देखो वहीं बार बार आया है। 'ऐसा होता है,' ऐसा ही है आदिकी पुनरुक्ति भी कम नहीं है। इन बातोंकी ओर सभी लोगोंकी दृष्टि आकृष्ट होगी। अवश्य ही इस तरहके किसी शब्द या पदकी भरमार लेखकका मुद्रादोष (मान्नेरी ?) है। अतएव इस दोषको रचनाकी मौलिक त्रुटि मान लेना ठीक न होगा; क्योंकि यह गौण लक्षणको प्रधानता देना होगा। कोई कोई समझते हैं कि शरत्बाबू संस्कृत-रचना-रीतिसे परिचित नहीं थे अतएव उनकी रचनामें व्याकरणके और दूसरे दोषोंका भी अभाव नहीं है।

किन्तु बँगला-साहित्यके ऊपर संस्कृत-व्याकरणके नियमोंका प्रयोग करनेवालेके पहले कमसे कम एक बात हमें याद रखनी चाहिए। प्रत्येक साहित्य अपनी ही गतिसे चलता है और श्रेष्ठ लेखकका प्रयोग ही इस गतिका नियामक होता है। यौरपका प्रत्येक साहित्य ग्रीक और लैटिन भाषाका ऋणी है; किन्तु योरपके साहित्यिकोंने इस ऋणका प्रयोग या उपयोग अपनी भाषा और साहित्यकी रीतिके अनुसार किया है। पण्डित-वागीश लोगोंने इन सब अपप्रयोगोंपर आपत्ति उठाई है; किन्तु साहित्यने उनकी इस आपत्तिको नहीं माना। बँगला-साहित्यके सम्बन्धमें भी यह बात लागू होती है। 'सज्जन और 'इतिपूर्वे' (संस्कृत व्याकरणके अनुसार सर्जन' और 'इतःपूर्वे) आदि प्रयोग अब ठीक और शुद्ध प्रयोग ही मान लिए गये हैं। शरत्चन्द्रने संवाद' को सम्वाद,' 'बारंबार' को 'बारम्बार' लिखा है। उनका 'किंवा' 'किम्वा' हो गया है। उनका 'संवरण' 'सम्वरण' बन गया है। इस प्रकार उन्होंने संस्कृतके पंचम वर्णके नियमका उल्लंघन किया है। ये सब अपप्रयोग कानोंको उतना न खटकने पर भी पढ़नेमें आँखोंको बुरे लगते हैं। कौन जाने, भविष्यमें ये सब अपप्रयोग मान्य होंगे कि नहीं। इनका समर्थन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। सिर्फ एक बात याद रखनी होगी।

यह मत कि इस प्रकारके प्रयोग नियमविरुद्ध होने पर भी मारात्मक नहीं हैं, और रवीन्द्रनाथ तथा शरत्चन्द्र जैसे लेखकोंकी रचना-रीतिकी आलोचना करनेमें मौलिक गुण और दोषोंपर ही ध्यान देना होगा। कोई एक पद संस्कृत व्याकरणके अनुकूल है कि नहीं, इसकी आलोचना मुख्य नहीं है। प्रचलित रीतिका खण्डन करनेका अधिकार उन्हीं सब लेखकोंको है, जो नई सृष्टिके द्वारा साहित्यकी सम्पत्तिको बढ़ा देते हैं जो नियमका व्यतिक्रम करके ही भाषाको समृद्ध करते हैं। ये सब बड़े लेखकोंके व्यतिक्रम ही अन्य लोगोंके लिए रीति बन जाते हैं। अवश्य ही इन सब प्रतिभाशाली लेखकोंके सभी प्रयोग स्वीकार करने योग्य नहीं हैं और इनकी रचना त्रुटि शून्य है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

शरत्चन्द्रकी रचनाका प्रधान गुण उसकी सुन्दरता और यथार्थप्रियता है। उन्होंने कभी कभी किसी भाव को प्रत्यक्ष कराते समय उसे आवश्यकतासे अधिक प्रधानता दे दी है अथवा किसी चित्रको वास्तविक बनानेमें उसे अश्लील-सा बना डाला है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित वाक्योंका उल्लेख किया जा सकता है—

“ मेरा सारा मन उन्मत्त उच्छ्वासमें उसकी ओर दौड़ा है।”

उच्छ्वासकी उन्मत्तता एक नया कल्पना ही है। ‘श्रीकान्त’ के प्रथम पर्वमें राजलक्ष्मीके मातृ-हृदयका जो वर्णन है उसका ओज और माधुर्य असाधारण है। किन्तु इस जगह भी अनावश्यक ‘किन्तु’, ‘ही’, ‘और’, ‘तो’ आदिकी अधिकता है।

यह बात चाहे जो हो, किन्तु इस अस्नेहमें माताका सम्मान तो अब इस घना ही होगा! उसकी अशेष कामना, उसकी सम्पूर्ण प्रवृत्ति इस चाहे कितना नीचेकी ओर उतरना चाहे, किन्तु यह बात भी तो वह भूल नहीं सकती कि वह एक लड़केकी मा है। और उस सन्तानकी भक्तिसे झुके हुए दृष्टिके सामने उसकी माताको तो वह किसी तरह अपमानित नहीं कर सकती।”

प्रत्येक वाक्य आश्चर्यका चिह्न देकर समाप्त किया गया है। किन्तु यह दो बार प्रयोग हुआ है, यद्यपि इसकी जरूरत नहीं थी। ‘तो’ ‘ही’ और का बाहुल्य पीड़ादायक है।

अन्यत्र देख पाते हैं—

"उसका बाहरमें न रहनेवाला हृदय और जागी हुई धर्म-बुद्धि ये दो प्रतिकूल-गामी प्रचण्ड प्रवाह किस तरह किस संगममें सम्मिलित होकर उसके इस दुःखके जीवनमें तीर्थकी तरह सुपवित्र हो उठेंगे ।" (श्रीकान्त—तृतीय पर्व)

यह वाक्य भाव और भाषामें अत्यन्त मधुर है, किन्तु प्रथम 'उसका' अनावश्यक है और द्वितीय 'उसके' कर्णकटु है।

इस तरहके अनावश्यक शब्दोंके प्रयोगसे और भी दो-एक वाक्योंका माधुर्य नष्ट हो गया है—मजा किरकिरा हो गया है।

' यह सौन्दर्यके चरणोंमें निष्कपट भक्तका स्वार्थलेशहीन निष्कलुष स्तोत्र अनजानमें ही उच्छ्वसित हुआ है ।" (दत्ता)

स्तोत्र उच्छ्वसित हुआ है, यह कोई मुहावरा नहीं है। यह केवल अनावश्यक नहीं है, इसका अन्वय करना भी असम्भव है।

शरत्चन्द्रकी रचनामें उपमाका असाधारण ऐश्वर्य है । अनेक वर्णनोंमें एकसे अधिक उपमाएँ एकके बाद एक रखी गई हैं किसीने किसीकी जगह नहीं घेरी है। किन्तु किसी-किसी जगह दो विभिन्न उपमाएँ एक ही वाक्यमें मिल गई हैं। इससे रचनाके प्रसाद गुणको हानि पहुँची है। दो-एक वाक्योंमें मिश्र उपमा भी है। यथा—

"इस चोरीके प्रच्छन्न इंगितने तीव्र तड़ित्-रेखाकी तरह उसके संशयके बादलको इस सिरेसे उस सिरे तक चमककर हृदयके अन्तस्तल तक उद्भासित कर दिया।" (अन्धकारमें आलोक)

इस वर्णनमें एक चित्र खिल उठा है—बिजलीकी रेखाकी क्षिप्र गति और तीव्र प्रकाश, जिसकी सहायतासे क्षण भरके लिए बदली चमचमा उठती है। 'बादल' शब्द अनावश्यक है। यह कोई नया चित्र सामने नहीं उपस्थित कर सकता। इसे ठीक मिश्र उपमा नहीं कहा जा सकता। किन्तु नीचेका वाक्य इस दोषसे दूषित है।—

"जब देखता हूँ, एक निमिषमें समस्त मन चमत्कारसे तरंगित हो उठता है स्मृतिके आलोड़नसे।" (श्रीकान्त—चतुर्थ पर्व)

इन सब अपप्रयोगोंकी वजह है रचनाको बोझली और कुरूप बनानेकी चेष्टा। इस प्रकारकी चेष्टा ही अभिप्रायको अस्पष्ट कर गई है। अनावश्यक छन्द, विभिन्न शब्दोंके माध्यमसे एक ही भावकी पुनरुक्ति, विशेषणोंकी बहुलता—इन सब दोषोंने कुछ कथनोंके माधुर्यको नष्ट कर डाला है। पहले कहा जा चुका है कि व्यक्तित्वमूलक रचना-शैलीका एक प्रधान उपकरण है विशेषणोंका सुसंस्कृत प्रयोग। और विशेषणोंकी अधिकताने ही अनेक वाक्योंकी स्वच्छन्द स्वाभाविक गतिको रोक दिया है। अन्तिम समयकी रचनाओंमें यह दोष अधिक दिखाई पड़ता है।

"याद पड़ता है, इस जीवनमें जितनी रातें आई-गई हैं उनके साथ आजकी इस अनागत रात्रिकी अपरिज्ञात मूर्ति जैसे अश्रु-पूर्ण नारीके अवगुण्ठित मुखकी तरह ही रहस्यमय है।"—(श्रीकान्त—तृतीय पर्व)

कल्पनाके ऐश्वर्य और अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे यह वर्णन असाधारण है। किन्तु 'अनागत' 'अपरिज्ञात' 'अश्रु-पूर्ण' और 'अवगुण्ठित'—इतने भारी भारी विशेषणोंसे वाक्य अनावश्यक रूपसे बोझिल हो गया है।

'शेष प्रश्न' उपन्यासमें इस तरहके शब्द-बाहुल्यके बहुतसे दृष्टान्त भरे पड़े हैं। दो-एकका यहाँ उल्लेख किया जाता है—

"वर्तमान उनके लिए तुच्छ, अनावश्यक, अनागत और अर्थहीन है।"

इन विशेषणोंमें परस्पर-विरुद्धता और पुनरुक्ति, दोनों दोष देख पड़ते हैं।

"कुछ भी न जानकर एक दिन इस रहस्यमयी रमणीके प्रति अजितका हृदय अनास्वादित विस्मयसे भर उठा था। किन्तु जिस दिन कमलने आधी रातके समय अपने निर्जन घर-कक्षमें इस अपरिचित पुरुषके सामने अपने विगत नारी जीवनका अनावृत (बेपर्द) इतिहास बहुत ही निस्संकोच भावसे उद्घाटित कर दिया, उसी दिनसे अजितकी पुञ्जीभूत विरक्ति और वितृष्णाकी जैसे कोई सीमा नहीं थी।"

तनिक सूक्ष्म भावसे विचार करने पर देखा जायगा कि 'अनावृत और निस्संकोच भावसे उद्घाटित' से एक ही भाव प्रकट होता है। किन्तु इस बातको जाने दिया जाय तो भी प्रत्येक पाठक यह प्रश्न करेगा कि आवश्यकतासे

अधिक विशेषणोंके प्रयोगसे इस कथनकी सहज गतिमें बाधा पहुँची है, और यही इन कई पत्रोंकी प्रधान त्रुटि है।

इस प्रकारका शब्द-बाहुल्य 'शेष-प्रश्न', 'श्रीकान्त' (चतुर्थ पर्व) आदि ग्रन्थोंमें स्पष्ट पाया जाता है। यह बात नहीं है कि सर्वत्र ही यह दोष हो। मगर हाँ, शरत्चन्द्रकी प्रथम युगकी रचनाओंमें जो सरलता है, वह इन ग्रन्थोंमें नहीं मिलती। इस प्रकारकी रचनाओंमें जो सौन्दर्य है, वह सहज सुरुचिका सौन्दर्य नहीं है। 'श्रीकान्त' के प्रथम पर्वमें अन्नदा दीदीकी एक चिट्ठी है। चतुर्थ पर्व निकृष्ट होने पर भी उसमें राजलक्ष्मीका जो पत्र है, उसके माधुर्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु इन दोनों चिट्ठियोंमें बात कहनेका ढंग कितना भिन्न है—दोनोंकी प्रकाशभंगीमें कितना अन्तर है।* दोनों ही स्त्रियोंने गहरे आवेगकी प्रेरणासे चिट्ठी लिखी है। अन्नदा दीदीकी बात सरल सहज शब्दों द्वारा प्रकट हुई है। वे अपनी कहानी प्रकट करनेहीमें व्यस्त हैं, उसे अलंकृत करना नहीं चाहतीं। उनके आडम्बरहीन जीवनके साथ उनकी भाषाकी सादगीने सामंजस्य बनाये रखा है। पर राजलक्ष्मीके पत्रमें इस निराभरण ऐश्वर्यका परिचय नहीं है। राजलक्ष्मी मन ही मन जानती है कि अनुमतिके बिना श्रीकान्त उसका परित्याग नहीं कर सकता। अतएव श्रीकान्तके संबंधमें आशंका भी अब उसके लिए ऐश्वर्यकी तरह है। वह अपने मनकी बातको बढ़ाकर सँवारकर अलंकारोंसे समृद्ध करके प्रकट करती है। राजलक्ष्मीके पत्रका प्रधान लक्षण भाषाकी चोखी मति और रसिकतामिश्रित निपुणता है। शरत्चन्द्रकी रचनाका यह एक परमसुन्दर निदर्शन है; किन्तु प्रथम युगकी रचनामें जो सहज सारल्य मात्र था, वह इसमें नहीं है।

यह प्रभेद और एक दृष्टान्तसे और भी अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा। उपन्यासमें राजलक्ष्मीने संगीतके माध्यमसे श्रीकान्तको अपनी संगीत-निपुणताका प्रथम परिचय दिया—वह भी पाषाण-प्रतिमाको प्रसन्न करनेके लिए उसका

---

* शायद यह बात मालूम होगी कि अन्नदा दीदीने चाहकर श्रीकान्तको पत्र लिखा था और राजलक्ष्मीने अपने प्रेमी श्रीकान्तको पत्र लिखा है। यह होने पर भी दोनों पत्रोंकी रचनाका वैषम्य ध्यान देनेके योग्य है।

नहीं, बल्कि 'दुर्वासा मुनि' को रिझानेके उद्देश्यसे। प्रथम पद्यमें श्रीकान्त लिखता है —

“ गहरी रात तक वैसे केवल मेरे लिए ही अपनी सारी शिक्षा, सारे सौन्दर्य और गलेकी सारी मिठाससे मेरे चारों ओरकी सारी कदर्य मदोन्मत्तता डुबाकर अन्तमें वह स्तब्ध हो गयी। ”

यह वर्णन संक्षिप्त, अथ च संकेतमय है। बाईजीकी शिक्षा और सौन्दर्यने गलेकी मिठासके साथ मिलकर एक अद्भुत सुन्दर कल्पलोककी सृष्टि कर दी है, जहाँ पृथ्वीकी कोई भी कदर्यता प्रवेश नहीं कर सकती। यहाँ बाईजीने केवल समझदार श्रोताको मुग्ध करनेके लिए नहीं गाया है उसका इस गानेका लक्ष्य बहुत समयके बिछुड़े प्रणयीसे संभाषण करना भी है। इसीसे उसकी यह सफलता केवल गायिकाका विक्रम नहीं है। प्रणयिनी अपनी सारी शिक्षा और सौन्दर्य अर्पण करके चुप हो गई है। थोड़ा-सा गौर करनेसे ही देखा जायगा कि इस वर्णनका प्रधान लक्षण इसकी संक्षिप्तता है उसके लिए बाईजीका रूप, गुण, चारों ओरकी मदोन्मत्तता और अन्तमें सर्वव्यापी स्तब्धता, सब एक दूसरेसे मिल गये हैं, और एक लक्षण यह है कि जिन सब शब्दोंका व्यवहार किया गया है, खास करके 'कदर्य', 'मदोन्मत्तता', 'डुबाकर', 'स्तब्ध' उनका बहुत तरहसे एक-एक इन्द्रियग्राह्य चित्र हमारी आँखोंके आगे खिंच जाता है। चतुर्थ पद्यका वर्णन इस प्रकार है—

'गाना शुरू हुआ। संकोचकी दुविधा कहीं भी नहीं है।—निःसंशय कण्ठ अबाध जल-स्रोतकी तरह बह चला। मैं जानता हूँ, इस विद्यामें वह सुशिक्षित है यह उसकी जीविका थी। लेकिन मैंने यह नहीं सोचा था कि संगीतके नियम संगठनकी इस धाराको उसने यत्न करके सीखा है और उसमेंसे कमाल हासिल कर लिया है। प्राचीन और आधुनिक वैष्णव कवियोंकी पदावली उसे कण्ठस्थ है, यह कौन जानता था। केवल सुर ताल और लयसे ही नहीं, वाक्यकी विशुद्धतासे, उच्चारणकी स्पष्टतासे, प्रकाशभंगीकी मधुरतासे उसने जिस विस्मयकी सृष्टि की, उसका कयास भी मैं नहीं कर सकता था। ”

इस वर्णनमें कवि-कल्पनाका परिचय नहीं है। यह समालोचकका पुङ्खानुपुङ्ख विश्लेषण है। यह सच्चा है, भय न इसमें सुस्पष्ट इन्द्रियग्राह्य चित्र केवल एक ही है। अधिकांश शब्द गुणवाचक हैं। 'संगीतकी सुविधा', 'प्रकाश-संगीतकी मसृणता' आदि पदोंमें एकाधिक गुणवाचक विशेष्य एकत्र हुए हैं। वाक्यकी विशुद्धता' का तात्पर्य ग्रहण करना ही कठिन है। पूर्ववर्ती वाक्यमें ही कहा गया है कि उसने प्राचीन और आधुनिक कवियोंकी पदावली कण्ठस्थ कर ली है। तो क्या राजलक्ष्मी केवल गायिका नहीं है, पदावलीके 'पाठ' के सम्बन्धमें भी अभिज्ञ है? अगर यह बात नहीं हो तो 'वाक्यकी विशुद्धता' और 'उच्चारणकी स्पष्टता'—इन दोनोंमें बहुत अन्तर नहीं रह जाता। इस प्रकारके निर्जीव वर्णनके विषयमें ये सब प्रश्न आप ही उठते हैं। सबसे बढ़कर त्रुटि यह है कि गुणवाचक विशेष्योंके बाहुल्यसे गायिका आप ही अस्पष्ट हो गई है।

१४—साहित्यिक विचार

१

शरत्चन्द्रने बहुत बार कहा है कि वह उपन्यास-लेखक हैं, उसके विचारक नहीं। तथापि अनेक साहित्य-सभाओंमें उन्होंने भाषण किये हैं और साहित्यके सम्बन्धमें दो एक लेख भी लिखे हैं। इन सब भाषणों और लेखोंमें उनका मत प्रकाशित हुआ है। लेख और भाषण विभिन्न समयोंमें रचित होनेपर भी उनके बीच एक सुस्पष्ट संयोग-सूत्रका परिचय प्राप्त होता है। यह योग-सूत्र शरत्चन्द्रका साहित्यिक मतवाद गिना जा सकता है और इसकी खोजकी जा सके तो शरत्चन्द्रके साहित्यका स्वरूप भी अधिक स्पष्ट होगा।

शरत्चन्द्रने बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंकी श्रेष्ठता स्वीकार करके भी यह दावा किया है कि आधुनिक साहित्य बंकिमचन्द्रके दिखाये मार्गको छोड़कर आगे बढ़ रहा है। उन्होंने कहा है—‘ बंकिमचन्द्रके प्रति भक्ति और श्रद्धा हम लोगोंको किसीसे कम नहीं है, और उसी श्रद्धाके जोरसे हमें उनकी भाषा और भावको छोड़कर आगे चलनेमें दुविधा नहीं जान पड़ी*।” शरत् बाबूने, अपने ऊपर रवीन्द्रनाथका ऋण स्वीकार किया है, किन्तु रवीन्द्रनाथके ‘साहित्य-धर्म’ शीर्षक लेखके उत्तरमें साहित्यके सम्बन्धमें एक बड़ा-सा लेख (साहित्यकी रीति और नीति) भी लिखा है। सरसरी नजरसे देखनेपर जान पड़ेगा कि इस लेखका उद्देश्य केवल व्यंग्य और मजाक उड़ाना

* इस आलोचनामें शरत्चन्द्रके जिन सब लेखोंसे उद्धरण लिये गये हैं, वे उनके 'स्वदेश और साहित्य' ग्रन्थमें प्रकाशित हैं। हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरद्वारा प्रकाशित शरत् निबन्धावलीमें भी उक्त लेख अनूदित हैं।

है किन्तु तनिक ध्यान देकर पढ़नेसे ही देख सकेगा कि साहित्य धर्मके सम्बन्धमें उनके और रवीन्द्रनाथके मतमें मौलिक अन्तर है। साहित्यके सम्बन्धमें शरत्चन्द्रका विशिष्ट मत क्या है और इस बारेमें बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथसे उनका मतभेद कहाँतक है यह आलोचना करके देखना होगा। बंकिमचन्द्रने विश्वके काम-कलापके बीच एक अनिर्वचनीय ऐक्य देख पाया था। वह उसकी अभिव्यक्तिको ही साहित्यका प्रधान कार्य मानते थे। कभी वह ऐक्य उन्हें नियतिका रूप रखकर प्रतीत हुआ है और कभी इसे उन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्तिके समन्वय रूपमें वरण किया है। किन्तु उन्होंने सभी समय ऐक्यकी अनुभूतिको ही साहित्यका उपजीव्य या आश्रय मानकर ग्रहण किया है। रवीन्द्रनाथने साहित्यमें परिपूर्णताको खोजा है। जिस शक्तिने प्रतिदिनके प्रयोजनसे अपनेको खण्डित नहीं किया, उस उन्होंने सौन्दर्यका उत्स कहकर स्वीकार किया है। इन दोनों प्रकारकी खोजोंमें अव्यवधान रहने पर भी इनके बीच साहश्य भी है। बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ मूलमें आदर्शवादी हैं। एक विराट् आदर्शने—उसका नाम चाहे जो रख लिया जाय—उनकी साहित्य-सम्बन्धी जिज्ञासाको जगाया है।

शरत्चन्द्र इस मार्गके पथिक नहीं हैं। साहित्यमें वह मुक्तिवादी हैं। उन्होंने केवल राजनैतिक या सामाजिक विद्रोहकी बातें ही नहीं लिखी हैं। उन्होंने कहा है—"भावमें, कर्ममें, चिन्तनमें स्वच्छता ला देना—किसी प्रकारका बन्धन न रहने देना ही तो साहित्यका काम है।" इस पुरस्कारके सम्बन्धमें उनकी धारणा खूब व्यापक है। वह मानते हैं कि साहित्य किसी विशेष आदर्शका वाहन न होना चाहिए। 'गुरु-शिष्य-संवाद' नामका व्यंग्य लेख उन्होंने रवीन्द्रनाथको लक्ष्य करके लिखा है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। किन्तु उसमें भूमाकी जो व्याख्या की गई है, उसीसे समझा जाता है कि उनका मतवाद रवीन्द्रनाथके मतवादसे कितना भिन्न है। शरत् बाबूने लिखा है—"पदार्थ ही भूमा है। उसके आनन्दका नाम ही भूमानन्द है। भूमा अन्तर्विशिष्ट अनन्त है, आकारविशिष्ट निराकार है—अर्थात् निराकार, किन्तु साकार है, जैसे काव्य किन्तु तारा,—समझे!" इस व्यंग्योक्तिमें प्रत्यक्ष भावसे साहित्यका उल्लेख न रहनेपर भी साहित्यकी ओर इसका इशारा खूब है। शरत्चन्द्रकी नायिका रमाके सम्बन्धमें

एक आलोचकने कुछ कठोर बात कही थी, जिसके उत्तरमें उन्होंने कहा है—'यह विचार आर्टका नहीं है, यह विचार समाजका है, यह विचार नीतिका अनुशासन है। इनका मानदण्ड एक नहीं है। अक्षर-अक्षर पंक्ति पंक्ति एक करनेके प्रयासमें ही सारी गड़बड़ सारे विरोधकी उत्पत्ति है।" एक दूसरे प्रसंगमें उन्होंने कहा है— "कई वर्ष पहले मैं कांठालपाड़ा ग्रामकी साहित्य-सभामें उपस्थित हुआ था। देखा बंकिम बाबूकी मृत्युके दिनको स्मरण करके बहुतसे मनीषी बहुतसे पण्डित, बहुतसे साहित्यरसिक बहुतसे स्थानोंसे सभामें आकर इकट्ठे हुए हैं। वक्ताके बाद वक्ता खड़े होते हैं—सभीके मुँहसे वही एक बात सुनाई पड़ती है कि बंकिमचन्द्र 'वन्दे मातरम्' मन्त्रके ऋषि हैं, बंकिमचन्द्र मुक्ति-यज्ञके प्रथम पुरोहित हैं। सबकी समवेत श्रद्धांजलि जाकर 'आनन्दमठ' के ऊपर ही पड़ी किन्तु किसीने 'विषवृक्ष' का नाम नहीं लिया, किसीने एक बार 'कृष्णकान्तेर विल' को याद नहीं किया।" और 'कृष्णकान्तेर विल' में नीतिका आदर्श अक्षुण्ण रखनेके लिए बंकिमचन्द्रने रोहिणीके साथ जो अन्याय अविचार किया है, उसकी निन्दा शरत्चन्द्रने एकसे अधिक बार की है।

शरत्चन्द्रके मतसे साहित्य मानवात्माकी बन्धन-हीन अभिव्यक्ति है। बाहरसे कोई आदर्श, कोई दार्शनिक मतवाद उसे बाँध नहीं सकता—किसी तरहके बन्धनसे काम नहीं चलेगा। उन्होंने स्वयं ही कहा है—"बुरेको अच्छा करनेके लिए कोई भी साहित्यिक कभी किसी दिन साहित्यकी महफिलमें खड़ा नहीं होता किन्तु बढ़ाकर नीतिकी शिक्षा देना भी वह अपना कर्तव्य नहीं मानता। थोड़ा गहरे पैठकर देखनेसे उसकी सारी साहित्यिक धुनोंके मूलमें धसकर एक ही चेष्टा हाथ लगेगी वह यही कि वह मनुष्यको मनुष्य ही सिद्ध करना चाहता है।" यही शरत्चन्द्रका साहित्य-धर्म है। मनुष्य भूमाका उपासक नहीं है, परिपूर्णताकी प्रतिच्छवि मात्र नहीं है, उसका जीवन नीतिकी बातोंका उदाहरण मात्र नहीं है। वह मनुष्य है और किसी आदर्शके द्वारा किञ्चिन्मात्र नियन्त्रित न होकर मनुष्यको मनुष्य सिद्ध करना ही साहित्यका काम है। हृदयकी सच्ची अनुभूति, आनन्द और वेदनाके आलोड़न-मंथनको ही शरत्चन्द्रने साहित्यका एकमात्र विषय निर्देश किया है।

यहाँपर प्रश्न होगा कि शरत्चन्द्र आदर्शवादी हैं या यथार्थवादी— आयडियलिस्ट हैं या रियलिस्ट ? इन दोनों श्रेणियोंकी उपाधियोंमेंसे कौन उनके नामके साथ जोड़ी जा सकती है, इस बातको लेकर शरत्चन्द्रके जीवित कालमें ही बहुत आलोचना हो चुकी है। शरत् बाबूने स्वयं इस बहसका उल्लेख करके, इसके समाधानकी ओर अंगुलिनिर्देश किया है। आयडियलिस्ट और रियलिस्टके बीच कोई सुस्पष्ट सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती। आदर्श कोई आसमानकी चीज नहीं है उसे इस पृथ्वीके जीवनमें ही मनुष्यके आंशिक अनुभवसे रूप लेना होगा। वही आदर्श है, जिसका हम अनुसरण करते हैं अथवा जिसका अनुसरण करना उचित मानते हैं। यथार्थवादी लोग सारे या खण्डित यथार्थको लेकर व्यस्त नहीं रह सकते। वे भी मूल्यका विचार करते हैं। हमारा कोई आदर्श न रहने पर किसी पदार्थका कोई मूल्य ही नहीं रहता हमारे लिए। यथार्थवादी लोग कहते हैं—ये सब घटनाएँ हुई हैं अथवा होती रहती हैं। साहित्यकारको इनका ही वर्णन देना चाहिए। पर औचित्य-बोध वास्तव घटनामें नहीं है। यह यथार्थवादीका अन्-यथार्थ आदर्श है। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है— 'दो शब्द आजकल प्रायः सुने जाते हैं Idealistic and Realistic (आदर्शवादी और यथार्थवादी)। मुझे लोग दूसरे सम्प्रदायका अर्थात् यथार्थवादी कहते हैं। अब पर यह मुझे नहीं मालूम कि इन दोनोंको किस तरह अलग करके लिखा जाता है या लिखा जा सकता है जो कुछ घटित होता है, उसके हूबहू चित्रको जैसे मैं साहित्य-वस्तु नहीं कहता, वैसे ही जो घटित नहीं होता, अथ च समाज या प्रचलित नीतिकी दृष्टिसे जो हो तो अच्छा हो, इस कल्पनाके माध्यमसे उसकी उच्छृंखल गतिमें भी साहित्यकी बहुत अधिक विडम्बना होती है।"

आदर्शवाद और यथार्थवाद, इन दोनोंको बिल्कुल अलग न रख पाने पर भी, सभी साहित्यिक इन दोनों उपकरणोंका समान मात्रामें प्रयोग नहीं करते। कोई-कोई साहित्यिक चरित्रकी पारिपार्श्विक अवस्थाका पुंखानुपुंख वर्णन देना चाहते हैं। वे चरित्रके विश्लेषण और बाहरके परिवेशनके साथ उसके संयोगपर विशेष ध्यान रखते हैं। इन्हें हम Realist (यथार्थवादी) कह सकते हैं। एक श्रेणीके और साहित्यिक हैं, जिनकी साहित्यिक प्रेरणा किसी विशेष अभिप्रायसे नहीं आती; मानव-जीवन और मानव-चरित्रके सम्बन्धमें उनकी कुछ धारणाएँ और

आदर्श है। वे अभिज्ञताके भीतरसे उन्हीं धारणाओंको खींच कर रख कर लेना चाहते हैं। इन्हें आदर्शवादी साहित्यिक कहा जा सकता है। शरत्चन्द्रने इन दोनों सम्प्रदायोंसे दूर रहना चाहा है। उनके मतमें उन सब उपन्यासोंमें आदर्शवादी अवैज्ञानिक मनोवृत्तिकी परिणति देखी जाती है, जिनमें मरा हुआ बालक संन्यासीके मन्त्र-बलसे जी उठता है और सच्चरित्र गरीब कामेका मस्त नायक स्वप्नमें आदेश पाकर उसके जोरसे सात घड़े सोनेकी मोहरें पेड़के तलेसे खोदकर पाता और बड़ा आदमी बन जाता है। वैज्ञानिक मनोवृत्तिसे सम्पन्न लोगोंको भी उन्होंने यह कहकर सावधान किया है कि "संसारमें जो कुछ होता है—और अनेक गन्दी या भद्दी बातें ही होती हैं—वह किसी तरह साहित्यकी सामग्री नहीं है। प्रकृति या समाजकी हूबहू नकल करना फोटोग्राफी हो सकता है; किन्तु वह क्या एक चित्र होगा?' शरत्चन्द्रने स्वच्छ मोह-मुक्त दृष्टि और बन्धन-मुक्त मन लेकर मानव-जीवनको समझना चाहा है। उन्होंने नैतिक या कल्पित किसी आदर्श या आदर्शवादके द्वारा अपनेको भाराक्रान्त नहीं करना चाहा। इस हिसाबसे वह यथार्थवादी या Realist हैं। किन्तु पूर्वकल्पित आदर्शके द्वारा दबे न होनेपर भी, उन्होंने वास्तव अभिज्ञताको केवल बाहरकी घटनाके हिसाबसे नहीं देखा। उनका प्रधान उद्देश्य चरित्रकी सृष्टि, घटनाके भीतर अनुभूतिकी खोज, है। अनुभूतिको देख पाना कठिन है और घटनाके भीतर उसका जो प्रकाश होता है वह अस्पष्ट और अस्फुट रहता है। इसलिए जो साहित्यिक आनन्द और वेदनाके आलोचनको ही साहित्यका मौलिक उपकरण मानकर ग्रहण करते हैं वे आदर्शके द्वारा परिचालित न होनेपर भी बाहरकी घटनाको प्रधानता नहीं दे पाते। वेदना-बोधकी प्रचुरता इन्हें उत्प्रेरित करती है, और इस हिसाबसे वह रोमांटिक और भाववादी सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। कारण, अनुभूतिको ही केन्द्र बनानेसे बाहरी घटनाकी प्रधानता कम हो जायगी। बाहरकी घटना, केवल अनुभूतिके वाहनके हिसाबसे ही ग्रहण की जाती है। अन्तर्लीन अनुभूति अनिवार्य है, और आदर्शकी तरह ही वह वास्तव चित्रका नियन्त्रण करती है। शरत्चन्द्रने अपनी साहित्य-सृष्टिके सम्बन्धमें कहा है—"मैं तो जानता हूँ कि किस तरह मेरे चित्र बनकर धीरे-धीरे सम्पूर्ण होते हैं। वास्तव अभिज्ञताकी मैं उपेक्षा नहीं करता; किन्तु वास्तव और अवास्तवके

सम्मिश्रणसे ये चित्र कितनी व्यथा, कितनी सहानुभूति कितना हृदयका रक्त देकर धीरे धीरे बड़े होकर विकासको प्राप्त होते हैं, इसे और कोई न जाने, मैं तो जानता हूँ। सुनीति और दुर्नीतिका स्थान इसके भीतर है, किन्तु वाद-विवाद करनेकी जगह इसमें नहीं है—यह चीज इनसे बहुत ऊँची है।" अन्यत्र उन्होंने कहा है—"मानवकी सुगम्भीर वासना, नर-नारीकी अत्यन्त गूढ़ वेदनाका विवरण अगर वह न प्रकट करेगा तो कौन करेगा?"* मानवका यह सच्चा परिचय ग्रन्थकारके किसी आदर्शके द्वारा नियन्त्रित न होगा – यही शरत्चन्द्रका मत है। और इस हिसाबसे वह यथार्थवादी या वास्तव-पन्थी हैं। किन्तु 'सुगभीर और निगूढ़' की खोज करनेमें वह वस्तु-तान्त्रिकताकी सीमाको लाँघ गये हैं।

शरत्चन्द्रने साहित्यको आदर्शके बोझसे छुटकारा दिया है और अनुभूतिको प्रधानता दी है। अनुभूति हर घड़ी बदलती रहती है। जो अनुभूति सब समय स्थिर होकर रहती है, वह आदर्शका ही रूपान्तर मात्र है। अनुभूतिको आदर्श और शास्त्रके शासनसे मुक्त करनेके कारण शरत्चन्द्रने साहित्य-सृष्टिमें क्षणिकताकी जयजयकार की है। उन्होंने बार बार कहा है कि साहित्यमें नित्य वस्तु नामकी कोई चीज नहीं है। दाशुरायकी पाँचाली† एक समय लोगोंको बहुत मन भाई थी, किन्तु आज वह बासी मालाकी तरह अनादृत है—उसे कोई नहीं पूछता। शकुन्तला, चण्डीदासकी वैष्णव-पदावलीकी आयुका समय अवश्य ही दाशू रायकी पाँचालीकी आयुसे लम्बा है, किन्तु वे भी अमर नहीं हैं। मनुष्यके मनके परिवर्तनके साथ साथ उनकी मृत्यु भी अवश्य होनेवाली है। आज जो लगातार लाञ्छना और तिरस्कार पा रहे हैं उनके लिए भी लज्जाका कोई कारण नहीं है। अनादरके बीच उनके भी उत्कर्षका दिन छिपा हुआ है। तो कलके बादका पाठक समुदाय हो सकता है कि उनकी सारी कालिमाको धो-पोंछ दे।

---

* केवल साहित्यमें ही नहीं सांसारिक बातोंके विचारमें भी शरत्चन्द्रने निगूढ़को प्रधानता दी है। देशबन्धु चित्तरञ्जन दासके सम्बन्धमें उन्होंने कहा है— लोग कहते हैं कि इतना बड़ा दाता इतना बड़ा त्यागी हमने नहीं देखा। दान हाथ फैलाकर लिया जाता है। त्याग आँखोंसे देखा जाता है, वह दुनियामें लोगोंकी नजरोंसे बच नहीं सकता। किन्तु इसका निगूढ़ वैराग्य?"

† एक प्राचीन ढंगका बंगला काव्य।

शरत्बाबूने साहित्यके क्षेत्रको सीमाबद्ध नहीं करना चाहा— "उसकी गति भविष्यके बीचमें है।" किसी कल्पना कोई आदर्श उसे संहित न कर सकेगा। मनुष्यकी अनुभूतिकी प्रतिच्छवि मनुष्यके मनकी तरह ही चंचल है। अपनी एक पाठिकाको शरत्बाबूने लिखा था— तुमने चित्तरंजन शब्दको लेकर बहुत कुछ लिखा है लेकिन यह एक बार भी सोचकर नहीं देखा कि ये दो शब्द हैं। केवल 'रंजन' नहीं, चित्त नामकी भी एक वस्तु है। यह बीच बसती है।" इस तरफसे कल्पना और उसकी सृष्टि करनेवालेके मनमें सामरस्य है। दोनोंने ही चित्तके स्वतन्त्र होनेकी महिमाका ढिंढोरा पीटा है। साहित्यमें गतिशीलताके ऊपर जोर देनेके कारण, शरत्चन्द्रने किसीको परम सत्य मानकर ग्रहण नहीं किया। (उनकी भाषामें) सत्य केवल उसके पीछे जानेका क्रम मात्र है।" गतिका छन्द अव्याहत रहे उसमें रुकावट न पड़े इतना ही ख्याल शरत्चन्द्रने साहित्य और साहित्यिककी ओरसे रखा है। यहीं पर रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्रके साहित्य-सम्बन्धी मतका प्रभेद सहजमें ही मालूम पड़ जायगा। रवीन्द्रनाथने साहित्यमें सार्वजनीनको, चिरन्तनको खोजा है। उनके मतमें—

To detach the individual Idea from its confinement of everyday facts and to give its soaring wings the freedom of the universal this is the function of poetry —Creation throbs with Eternal passion. Eternal Pain."

शरत्चन्द्रने भी साहित्यको बन्धनहीन करना चाहा है। उन्होंने भी प्रतिदिनकी घटनाओंको परम सत्य मानकर ग्रहण नहीं किया। किन्तु उन्होंने प्रतिदिनकी घटनाओंकी आड़में क्षणिक अनुभूतिको रूप देकर चरित्रकी सृष्टि करनी चाही है। उनके मतमें अन्यान्य बन्धनोंकी तरह वास्तवसे अतीत आदर्श भी साहित्य-सृष्टिकी गतिको अवरुद्ध करता है।

साहित्यमें अभिज्ञतापर विश्वास करनेके कारण शरत्चन्द्र कुछ भी छोड़नेके लिए प्रस्तुत न थे। यहाँ तक कि उनके मतसे आवर्जना (कूड़ा कर्कट) का भी मूल्य है। बहुतसे सड़े-गले पत्तोंसे भूमिकी उर्वरता संचित होनेपर यहीं पर बड़े भारी ऊसरका कम संभवपर होता है। सत्साहित्यकी बहुतायत कभी किसी समय नहीं देखी जाती। उसकी भी सृष्टि बहुत-से कूड़े-कर्कटके बीच ही होती है।

जिस दिन दुःख-कष्ट नहीं रहेगा, उस दिन सत्साहित्य भी नहीं रहेगा। बहुत लोग साहित्यकी सृष्टि करना चाहते हैं, इसी चेष्टामें लगे रहते हैं, इससे कमसे कम यह प्रमाण मिलता है कि देशमें मानसिकताका संचार हो रहा है, और इसीकी प्रेरणासे सत्साहित्यकी सृष्टि संभव होगी। इसी कारण शरत्चन्द्रने आवर्जनाके भीतर भी सार्थकताका आविष्कार किया है। इससे उनके साहित्यिक मतकी उदारताका परिचय मिलता है। उन्होंने कहा है– 'आवर्जना ही सभी साहित्योंकी बुनियाद है। जिन्हें कूड़ा समझा जाता है वे ही साहित्यकी अस्थि-मज्जा हैं – कूड़ा जिस दिन दूर हो जायगा, उस दिन वह भी उसी राहसे अन्तर्धान हो जायगा, जिसे सार-वस्तु कहा जाता है। आवर्जना चिरजीवी होकर नहीं रहती। वह अपना काम करके मर जाती है—यही उसका प्रयोजन है, यही उसकी सार्थकता है।"

२

शरत्चन्द्रने सात्त्विक अनुभूतिकी अभिव्यक्तिको साहित्यका मूल-उपकरण स्वीकार किया है। इससे यह समझा जा सकता है कि वह Art for art's sake (कला कलाके लिए) नीतिमें विश्वास करते हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है। जो अनुभूति साहित्यका प्राण है, वह व्यक्ति 'मरमी' अनुभूति नहीं है। साहित्यका जो अंश केवल अन्तर्दृष्टि या कोरी अभिव्यक्ति है वह शायद ऐसी प्रतिभा है जिसका विश्लेषण नहीं हो सकता; किन्तु वही साहित्यकी प्रधान वस्तु नहीं है। साहित्यके सम्बन्धमें शरत् बाबूने कहा है—' रसनिर्देश करके दूसरेको इसका रूप समझाया नहीं जा सकता। किन्तु साहित्यका और एक पहलू है, वह बुद्धि और विचारकी वस्तु है। वह बुद्धि तर्कके द्वारा किसी दूसरेको समझाई जा सकती है।" यह साहित्यका आदर्श, उसका चिन्तन और मत है। यह अनुभूतिको प्रभावित करता है, उसको रसद पहुँचाता है। यह अभिव्यक्तिका विषय है, और युग-युगमें इसका परिवर्तन होनेके कारण ही साहित्यका स्वरूप भी बदला करता है। साहित्यकी जो चिर-नवीनता और गतिशीलताकी बात उन्होंने कही है, उसमें भी यह शरीक है। साहित्यमें जो अनुभूति प्रकट होती है वह ऐसा पदार्थ नहीं है, जो छुआ न जाय या पकड़के बाहर हो। वह कविके समग्र

मनकी सृष्टि है, उसका एक अंश बुद्धिका दान है। लोगोंकी मति-गति बदल गई है, अतएव आजकलका पाठक प्रतापके आदर्शको चरम मानकर ग्रहण नहीं कर सकता और रोहिणीकी अपमृत्युको भी अकुण्ठित मनसे शिरोधार्य नहीं कर सकता। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है—"शिशुकर्मोंके युगसे आज तक हम कहानी-उपन्याससे कुछ शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। यह प्रायः हमारा संस्कार ही बन गया है।" किन्तु हम जो बात सीखते हैं उसके आदर्शके सम्बन्धमें हमारी धारणा अचल नहीं रहती, इसीसे साहित्यका रूप भी बदलता है। असलमें प्रचारहीन साहित्य प्रचार भी नहीं है, साहित्य भी नहीं है उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। साहित्य अनुभूतिकी अभिव्यक्ति है। प्रत्येक अनुभूतिका ही रूप है। उसे समझनेके लिए उसे और अनुभूतिसे अलग करना होगा। यह काम बुद्धिका है। इस तरह ओतप्रोत भावसे बुद्धि और अनुभूति एकमें गुँथ गई हैं, और इसी कारणसे साहित्यमें प्रचारनीतिका प्रवेश अवश्यंभावी है। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है—"जगत्‌का जो चिर-स्मरणीय काव्य और साहित्य है, उसमें भी किसी-न-किसी रूपमें यह चीज है। रामायणमें है, महाभारतमें है, कालिदासके काव्यग्रन्थोंमें है, आनन्दमठ और देवी चौधरानीमें है, इब्सन-मेटरलिंक-टालस्टायमें है, इमर्सन-होमर-बेकनमें है।" इसीलिए शरत्चन्द्रने साहित्य-रचनामें वैज्ञानिक मनोवृत्तिका दावा स्वीकार कर लिया है। रवीन्द्रनाथके 'साहित्य-धर्म' लेखके उत्तरमें उन्होंने कहा है— विज्ञान तो केवल निष्फल कौतूहल मात्र ही नहीं है, वह कार्य-कारणका विचार है।" "इसीसे विज्ञानको सम्पूर्ण अस्वीकार करके धर्मपुस्तककी रचना की जा सकती है, आध्यात्मिक कविता लिखी जा सकती है, पर कथा-साहित्यकी रचना भी न की जा सकती हो, यह बात भी नहीं है। किन्तु उपन्यास-साहित्यका यह श्रेष्ठ मार्ग नहीं है।"

साहित्य जो अनुभूतिको प्रकट करता है तो वह केवल कल्पनाप्रधान नहीं है, उसमें बुद्धिके लिए भी स्थान है। कविकी प्रतिभाका कितना अंश कल्पना है और कितना अंश बुद्धि है और किस प्रकार इनके सामंजस्यके फलसे साहित्यकी सृष्टि होती है—यह रस-शास्त्रका एक मौलिक प्रश्न है। शरत्चन्द्रने इस प्रश्नका समाधान करनेकी चेष्टा नहीं की। वह रसकी सृष्टि करनेवाले हैं, उसके विचारक नहीं। उनकी आलोचना थोड़ी सीमाबद्ध होती ही। साहित्यिक

विचारमें उनका भेद इतना ही है कि उन्होंने साहित्यको यथार्थका भार मुक्त करना चाहा है। इनके मतसे साहित्य अनुभूतिकी अभिव्यक्ति है। यह अनुभूति 'वास्तव' में जन्म लेती है और बाहरकी घटनाओंके भीतर आत्मिक भावसे प्रकाशित होती है। अतएव वास्तवको बाद देकर साहित्यकी सृष्टि संभवपर न होगी। आदर्शके लिए मनुष्यकी आकांक्षा उसकी अनुभूतिका अंग हो सकती है किन्तु बाहरके किसी आदर्शके मापदण्डसे साहित्यका विचार न होगा। बाहरके आदर्श द्वारा उसे नियन्त्रित करना उसे पंगु बना डालना होगा। फिर जो यथार्थ केवल व्यक्तिगत प्रयोजनमें ही समाप्त हो जाता है, वह एक आदमीके भोगकी वस्तु है; वह विश्व-मानवका ऐश्वर्य नहीं हो सकता। "सच्चा ऐश्वर्य जो है, वह हमेशा मनुष्यके नित्यके प्रयोजनके अतिरिक्त है।" यह ऐश्वर्य अनुभूतिका ऐश्वर्य है। प्रतिदिनके प्रयोजन और यथार्थ घटनाके साथ इसका संयोग रहने पर भी यह उनसे परे है—यह विश्व-मानवकी सम्पत्ति है। शरत्चन्द्रकी रचनामें इन दोनों परस्पर-विरोधी मतधाराओंका समन्वय हुआ है इस लिए शरत्चन्द्र खालिस आदर्शवादी नहीं हैं और कोरे यथार्थवादी भी नहीं हैं। उन्होंने साहित्यको मतमुक्त, बन्धनमुक्त करना चाहा है। रस-तत्त्वके विचारमें यही उनका भेद कृतित्व है। उन्होंने किसी आदर्शके खातिर साहित्यके हाथको बाँधना नहीं चाहा। शरत्चन्द्रने कहा है—"साहित्यके अनेक कामोंमें एक काम मानवका गठन करना, सब ओरसे उसे उन्नत बनाना है।" किन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि साहित्यका चरम मूल्य समाजके हानि-लाभ और राजनीतिक बनाव-बिगाड़के बहुत ऊपर है। साहित्यके विचारमें उन्होंने अपने जिस दूर तक सोचनेके गुणका और मनकी उदारताका परिचय दिया है, उसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ है। केवल रसकी सृष्टिमें नहीं, रसके विचारमें भी वह असाधारण हैं।

१५—शेष परिचय

[शेषेर परिचय (शेष परिचय) उपन्यास समाप्त करनेके पहले ही शरत्चन्द्रका जीवन समाप्त हो गया था। उनकी मृत्युके बाद श्रीयुक्ता राधारानी देवीने इस ग्रन्थको पूरा करके पुस्तकाकार प्रकाशित किया। हम यहाँ श्रीयुक्ता राधारानीकी रचनाके रूपमें इसे स्थान नहीं दे रहे हैं। शरत्चन्द्रके जीवन-कालमें इस उपन्यासका जितना अंश 'भारतवर्ष' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था, केवल उसीकी विवेचनापर विचार किया जा रहा है।]

१

याद आता है, किसी एक प्रसंगपर शरत् बाबूने कहा था कि मैं लगातार अविश्रान्त भावसे नाटकपर नाटक लिख सकता हूँ। कारण, जटिल परिस्थितियोंमें जटिल सब व सजीव नर-नारियोंको रखकर उनके मुखमें भाषा देनेकी क्षमता मुझमें है। क्योंकि शरत् बाबूने मजाकमें ही सही, नाटकोंके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, वह उपन्यासोंके सम्बन्धमें भी कहा जा सकता है। उपन्यास हो चाहे नाटक, उसमें एक जटिल परिस्थितिमें जटिल नर-नारियोंसे इस तरह बातें करानी होती या काम कराना होता कि जिससे ऐसा जान पड़े कि वे जीते जागते मनुष्य हैं। कवि विधाताके समान होता है। वह नित्य नये-नये मनुष्योंकी सृष्टि करता रहता है, जो परिस्थितिके बीच भाषा और कार्यद्वारा अंदरूनी मानसिकताका प्रमाण देते हैं।

शरत्चन्द्रमें ऐसी सृष्टि करनेकी शक्ति असाधारण थी। वह नर-नारी और बालकोंको अनेक घटनाओंके चक्रमें डालकर, उन्हें प्राणवान् करके प्रकट कर सकते थे। जिन्होंने केवल परिस्थितिकी विचित्रतापर नजर जमा रखी है, उन्होंने इसका

ही कहा है कि ये सब घटनाएँ असम्भव हैं; ये विश्वमें घट सकती हैं; किन्तु सच नहीं हैं। कोई नारी अपने पाठशालाके साथीके लिए अपने हृदयमें पवित्र प्रेम संचित कर रखेगी; मझली नौकरानी पतिव्रताका आदर्श होगी; ऐसे मित्रको छोड़कर उसकी पत्नीको लेकर कोई मित्र भाग जायगा ये सब परिस्थितियाँ एकदम अविश्वासके योग्य जान पड़ती हैं। किन्तु इन सब मामलों—घटनाओं—को विच्छिन्न भावसे अर्थात् अलग करके देखनेसे काम न चलेगा। राजलक्ष्मी, सावित्री, सुरेश और अचलाके चरित्रकी विशेषताने ही इन सब असम्भव घटनाओंको विश्वासके योग्य बना दिया है। इन सब चरित्रोंकी असाधारणता इन सब अद्भुत घटनाओंकी सहायताके बिना प्रकाशित नहीं हो सकती थी। 'शेष परिचय' में जो कहानी वर्णन की गई है; वह प्रथम दृष्टिमें अविश्वसनीय मालूम पड़ सकती है। कुलका त्याग करनेवाली स्त्री तेरह वर्ष बाद अपनी परित्यक्त कन्याके विवाहको रोकनेके लिए व्यग्र हो उठी है और अपना इरादा कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए पहलेके अपने आश्रित एक पुरुषसे भेंट करने आई है और वहीं उसका अपने उसी पतिके साथ एकाएक सामना हो गया है, जिसे तेरह वर्षके भीतर उसने कभी नहीं देखा! उसी कन्याकी बीमारीका उपलक्ष्य करके एकाएक वह भी उसी आदमीसे मिलनेके लिए अलग हो गई, जिसका आश्रय लेकर तेरह वर्ष पहले उसने घरका त्याग किया था और उसके तेरह साल तक वह जिसके साथ रही-सही। इस कहानीमें ऐसे ही और भी अविश्वसनीय मामले हैं। ये साधारणतः असंभव ही जान पड़ते हैं; किन्तु शरत्चन्द्र जिस रहस्यकी खोज कर रहे थे, उसके लिए असाधारण चरित्र और विलक्षण परिस्थितिका प्रयोजन था।

२

वह रहस्य क्या है? शरत्चन्द्रने नारी-हृदयके रहस्यको खोलनेकी चेष्टा की है और नारीको न्यायसंगत मर्यादा दी है। उन्होंने दिखाया है कि समाजने जिनको कलंकिनी कहकर घरके बाहर कर दिया है, वे हृदयकी पवित्रता और अनुभूतिके गौरवमें असाधारण भी हो सकती हैं। उन्होंने यह भी दिखाया है कि विधवाके प्रेममें वास्तवमें कोई कलंक नहीं है। रमा रमेशको जो प्यार करती थी

प सार्थक नहीं हो सका, किन्तु उसमें गहराई या पवित्रताका अभाव नहीं था। शरत्चन्द्रने देखा है कि ये सब स्त्रियाँ केवल समाजके द्वारा ही विडम्बनाको नहीं प्राप्त हुई हैं उन्हें सबसे अधिक विडम्बित किया है समाजके दिए हुए संस्कारोंने। राजलक्ष्मी, रमा आदिके हृदयोंमें गहरे प्रेम और अनतिक्रमणीय धर्मबुद्धिका सनि-म संघर्ष चलता रहा है। वे किसी तरह यह नहीं समझ पाईं कि इन दोनोंमें कौन कि अधिक प्रबल है अथवा किसकी मर्यादा अधिक है। अभयाके चरित्रके संघर्षमें शरत्चन्द्रने और भी थोड़ा-सा साहस किया है। इस प्रकार संघर्ष हुआ अनुभूति और बुद्धिके बीच अथवा अनुभूतिके भीतर ही। मानव-जीवनका भेद स यही है कि उसमें जो सब बहुत ही गहरी अनुभूतियाँ हैं उनके बीच अनेक प परस्परविरोधिता रहती है। इसी लिए वे दुर्बोध और अज्ञेय हैं। सब किसी तरह नहीं समझा जाता, उसे दूसरेके आगे स्पष्ट करके प्रकट नहीं किया सकता और इसी कारण उसे अपने काबूमें रखना भी कठिन होता है। स्य समझती थी कि वह महिमको प्यार करती है और सुरेशको पराई स्त्रीके लुब्ध और विश्वासघातक समझकर घृणा करती है। किन्तु अपने अनजानेमें सुरेशकी ओर उसका मन आगे बढ़ता रहा है। सुरेश जो अति नाटकीय और ारशिक उपायसे उसे लेकर भाग गया, यह जैसे उसके अन्तःकरणके भीतर ई हुई मनकी आकांक्षाका ही प्रतीक है। उसके हृदयमें इन परस्परविरोधी भूतियोंने कैसे आश्रय ग्रहण किया था, इस बातको वह न समझ सकी। इस व्यापारको उसने दैवका अभिशाप ही समझा।

'शेष परिचय' में शरत्चन्द्र और भी थोड़ा आगे बढ़े हैं। इस उपन्यासकी नायिका सविता अपने पतिके प्रति अत्यन्त अनुरक्त और भक्ति रखनेवाली थी। किन्तु उसी पतिको त्यागकर वह रमणी बाबू नामके एक दूरके नातेके आदमीके साथ बाहर निकल गई। उसके पीछे घरमें उसकी तीन वर्षकी बच्ची रेणु, उसके सदाशय पति, परदेसिया गोविन्दकी और कुंज-बाबूकी ममता भी रही। बारह साल तक रमणी बाबूकी रखैलके रूपमें रहनेके बाद सवितासे हमारी पहली भेंट होती है। कहानीका आरंभ यहींसे होता है। हम देखते हैं कि बारह साल बाद भी पतिके प्रति अविनाशी भक्ति पहलेहीकी तरह अटल है, कन्याके प्रति उसका प्रेम अम्लान है और रमणी बाबूके प्रति उसकी वितृष्णा (नफरत) की सीमा नहीं है। अगर यह समझा जाय कि रमणी बाबूके साथ

रहनेके फलस्वरूप उसके मनमें यह वितृष्णा उत्पन्न हुई है तो फिर यह प्रश्न अपेक्षाकृत सरल हो जाता, रवीन्द्रबाबूके 'घरे बाहरे' (घर और बाहर) की मोह-मुक्त विमलाके साथ उसकी तुलना की जा सकती। किन्तु देखा जाता है कि उसके चरित्रका रहस्य और भी जटिल, और भी गंभीर है। जिस दिन वह रमणी बाबूके साथ घरसे निकली, उस दिन भी उसने रमणी बाबूको प्यार नहीं किया। अथ च तेरह वर्ष तक उसने रमणी बाबूके ऐश्वर्यका भोग ग्रहण किया और उनकी सहधर्मिणी बनी रही। राजलक्ष्मी या सावित्रीने जो अपने शरीरको पवित्र बनाये रखा, वह भी सविताने नहीं किया। शायद उसने सोचा होगा कि जिस नारीने कुलका त्याग कर दिया, पति और कन्याके बन्धनको काट डाला, उसके लिए देहको अकलंकित रखनेसे लाभ क्या है? किन्तु प्रश्न यह है कि फिर सविताने घरका त्याग क्यों किया? गहरी अशान्तिके समय अपमानकी गठरी सिरपर लादकर घरसे बाहर होते समय उसने कहा था—"तुम कोई इनकी (रमणी बाबूकी) देहमें हाथ न लगाना। मैं मना किये देती हूँ। हम अभी घरसे निकले जाते हैं।" तो क्या उसके घरत्यागका कारण रमणी बाबूके प्रति अनुकम्पा है? उसे अत्याचारसे बचानेकी इच्छा है? किन्तु जिस आदमीको उसने किसी दिन भी प्यार नहीं किया, उसके ऊपर यह अनुकम्पा क्यों होगी? लाचार उसने खुद ऐसी कोई व्याख्या देकर अपने पापको हल्का करनेकी चेष्टा नहीं की। अगर रमणी बाबूके प्रति दयाने ही उसे इसके लिए प्रेरित किया होता, तो किसी-न-किसी समय वह उसका उल्लेख अवश्य करती। इसके अलावा सविताका एकान्त अनुगत स्वभाव इस मामलेमें बाहरके प्रभावके ऊपर कितना ही जोर क्यों न दे, इसमें सन्देह नहीं कि व्रज बाबूके घरमें रहते समय रमणी बाबूके साथ सविताका सम्बन्ध सुपरिचयकी सीमाको लाँघ गया था। किस अवस्थामें निर्जन कमरेमें गहरी रातको इन दोनोंको पाया गया, उसकी व्यंजना ही यथेष्ट है। सविताने स्वयं अपने इस पद-स्खलनको सम्पूर्ण रूपसे मान लिया है। पतिका घर छोड़नेके पहलेके अपने आचरणको उसने कभी अनिन्द्य नहीं माना। अथ च पतिके प्रति एकनिष्ठ भक्तिका अभाव भी उसमें कभी किसी दिन नहीं हुआ। तब फिर क्यों उसका पदस्खलन हुआ था? नारीके हृदय-रहस्यकी ओट पर लिखा शरत्चन्द्रने अपने और किसी उपन्यासमें खोलनेकी चेष्टा नहीं की। अथ च पहलेके उपन्यासोंमें उन्होंने जिन सब समस्याओंकी चर्चा या आलोचना की थी,

उनके साथ इस उपन्यासकी भी समस्याका संयोग है। उन्होंने पद-स्खलिता रमणियोंको अपने उपन्यासोंका केन्द्र बनाया है और अनेक पहलुओंसे उनके चरित्रकी विशिष्टताका विश्लेषण किया है। किन्तु यहाँ उन्होंने उन स्त्रियोंके जीवनके मौलिक प्रश्नकी आलोचना की है। वह प्रश्न यह है कि इनका पद-स्खलन होता क्यों है और यह पद-स्खलन उनके जीवन अथवा चरित्रके ऊपर रेखापात करता है कि नहीं। इस पहलूसे विचार करने पर यह उपन्यास सचमुच ही शरत्चन्द्रका शेष परिचय देता है।

जिस दुर्गमीय कलंकका बोझा लादकर सविता समाजके बाहर निकल गई, उसका कोई कारण ही उसे खोजे नहीं मिला। उसने जोर देकर कहा है कि रमणी बाबूको उसने कभी किसी दिन प्यार नहीं किया किसी दिन श्रद्धा नहीं की अपने स्वामीकी अपेक्षा किसी दिन उसे बड़ा नहीं माना—जिस दिन घर छोड़ा उस दिन भी नहीं। उसने बार बार अपनेसे यही प्रश्न पूछा है किन्तु उत्तर नहीं पाया। उसने अपने स्वामीसे क्षमा चाही किन्तु स्वामीके प्रश्नका वह उत्तर नहीं दे सकी। उसने कहा है कि जिस दिन वह स्वयं इसका उत्तर पायेगी उसी दिन स्वामीको इसका उत्तर बतायेगी। अब व रमणी बाबूको उसने पुराने फटे कपड़ेकी तरह अथवा उससे भी अधिक किसी हेय वस्तुकी तरह त्याग कर दिया। उन दोनोंकी सम्मिलित जीवन गाथाका जो चित्र हम पाते हैं, उससे जान पड़ता है कि कभी किसी दिन इन दोनोंमें हृदयका कोई सम्बन्ध नहीं था। रमणी बाबू हर रोज आये हैं पलंगपर बैठकर पान-तमाखूसे एक गाल आम जैसा फुलाकर बारबार उन्हीं सब अत्यन्त अरुचिकर संभाषणोंसे और हँसी-दिल्लगीसे उन्होंने उसके मनोरंजनका प्रयास किया है। उसने उनकी असभ्य-दीप्त गँवारी नजर, उनकी कल्पनाहीन अति तुच्छ अधीरताको बर्दाश्त किया है। इन कामार्त अति मोटे व्यक्तिके विरुद्ध पर्वताकार घृणा और विद्वेष मनमें रखकर हर रातको वह उसकी शय्याकी साथिन बनी है। तो भी इसी तरह उसका एक युग कट गया है। एक युग कट जाना विचित्र नहीं है, किन्तु इसीके अंतरालमें आकर उसका पद-स्खलन क्यों हुआ था? इसी 'क्यों' का कोई जवाब उसे ढूँढ़े नहीं मिला। बारह सालसे अधिक समय तक सविता इस प्रश्नकी आलोचना करती रही किन्तु उत्तर नहीं पाया। शारदाके प्रश्नके उत्तरमें सविताने कहा है—"पद-स्खलनमें क्या कोई 'क्यों' होती है शारदा? वह एकाएक सम्पूर्ण अकारण निरर्थकतामें हो जाता है।" अपने

हृदयकी गली-गलीमें घूमकर और दूसरोंसे पूछकर भी सविताको इस रहस्यका पता नहीं लगा। कह नहीं सकते कि यही उसके सवालका भी आखिरी जवाब है कि नहीं। शायद शरत्‌चन्द्रने समझा होगा कि स्त्री और पुरुषके बीच जो यौन आकर्षण है, उसके साथ हृदयकी अनुभूतिका सम्पर्क कम है, इसका बुद्धिसे विचार करना या जाँचना असम्भव है। इसके भीतर कोई 'क्यों' नहीं है।

उपन्यास-लेखक चाहे प्रश्न उपस्थित करें और चाहे प्रश्नका उत्तर ही दें, उनकी रचनाकी प्रधान विशेषता यह है कि वह नर-नारीके सम्बन्धका सजीव चित्र खींचेंगे उनके इस चित्रके भीतर हृदयका रहस्य प्रतिबिम्बित होगा; उनकी जिज्ञासा समाधानका संकेत देगी। सविताका चरित्र अगर सम्पूर्ण उतर पाता, तो शायद उसकी किसी अन्तरंग बातके बीच अथवा उसके व्यवहारके द्वारा यह रहस्य अच्छी तरह स्पष्ट हो सकता। किन्तु हम उसका सम्पूर्ण चित्र नहीं पाते। जिस उपन्यासको औपन्यासिक समाप्त नहीं कर पा सके, उसका विस्तृत विश्लेषण और आलोचना सम्भव नहीं है। तो भी एक बात पक्की है : उपन्यासका मूल विषय पदस्खलिता नारीका चरित्र अंकित करना है। अब न उपन्यासका आरम्भ हुआ है पलायनके तेरह वर्ष बाद और कहानीके आगे बढ़ते-न-बढ़ते ही प्रतिनायक रमणी बाबू अन्तर्धान हो गये हैं। कहानीमें दो बातोंने प्रधानता पाई है—सविताने अपने पतिके निकट आश्रय चाहा है और विमल बाबूने सविताके निकट आना चाहा है। पति और कन्याने स्पष्ट करके बता दिया है कि उनके साथ उसका सम्बन्ध या सम्पर्क शेष हो गया है। विमल बाबूसे मित्रता चाही है और उसे पाया है किन्तु नर-नारीका सम्पर्क जिस प्रकार गहरा, घना और रहस्याच्छन्न है वहाँ तक यह मित्रता नहीं पहुँची। अतएव शरत्‌चन्द्र किस घटना और परिस्थितिके भीतरसे सविताके चरित्रको सम्पूर्ण रूपसे प्रकट करते, और उसे वह पूरी तौरसे अभिव्यक्त कर पाते या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। किन्तु यह निश्चित है कि सविताके चरित्रमें उन्होंने एक परम अद्भुत रमणीके चरित्रको अंकित करनेका प्रयास किया है और उसके बीचसे नारी-हृदयके गोपनतम और गम्भीरतम रहस्यके ऊपर रोशनी डाली है। असम्पूर्ण होने पर भी यह उपन्यास उनकी सजीव प्रतिभाका परिचय देता है।